इकाई 1- स्वतन्त्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात भारतीय महिला आन्दोलन

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 स्वतन्त्रता पूर्व महिला आन्दोलन
  1.3.1 पुरुषों द्वारा संचालित महिला अधिकारों वालें संगठन
  1.3.2 महिलाओं द्वारा संचालित महिला आन्दोलन
1.4 स्वतंत्रता पूर्व महिला आन्दोलनों द्वारा उठाए गए विभिन्न विषय
  1.4.1 शिक्षा में भागीदारी
  1.4.2 राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार और हिस्सेदारी
  1.4.3 निजी कानूनों में सुधार
1.5 राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाएं
1.6 श्रम आन्दोलन में महिलाएं
1.7 स्वतन्त्रता उपरान्त का महिला आन्दोलन
  1.7.1 निर्णायक पदों / सत्ता पर निर्णायक भागीदारी
  1.7.2 प्रत्येक सामाजिक,आर्थिक एवं राजनैतिक स्तर पर बराबरी तथा भागीदारी
  1.7.3 आर्थिक शोषण के विरुद्ध आन्दोलन
  1.7.4 उपभोक्ता के हित में आवाज
  1.7.5 सामाजिक बुराइयों एवं शोषण के विरुद्ध एकजुटता
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय महिला आन्दोलन प्रारम्भ से ही सामाजिक , सांस्कृतिक , धार्मिक प्रतिमानों एवं आदर्शों की जटिल बुनियादी संरचना रहा है। प्रत्येक पुरुष-सत्तात्मक समाजों में जिन जटिल परिस्थिति और दुराग्रहों का सामना महिला अधिकारवादियों को करना पड़ता है , वही सब यहाँ भी दिखाई देता है। सत्ता का अपना एक विशेष चरित्र होता है, जिसमें अपने अधिकार का सहजता से बंटवारे को लेकर नकारवादी दृष्टि रहती है। भारतीय लोकतंत्र में भी कमोवेश वही स्थितियां दिखाई देती है। तभी तो आधी आबादी 33 प्रतिशत की हिस्सेदारी तक भी नहीं पहुँच पाई। इतिहास देखें तो मूलतः 19 वीं शताब्दी में संगठित भारतीय महिला आन्दोलन की जड़ें पुरुष सुधारवादियों के कार्य में देखने को मिलती हैं। जिसके अंतर्गत पुरानी परम्पराएं , सती-प्रथा, बालविवाह , देवदासी-प्रथा आदि अंधविश्वास से मुक्ति आदि रहा। इसमें विभिन्न संगठन जैसे आर्य समाज, ब्रह्म समाज,प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस भूमिका को आन्दोलनों , पत्र-पत्रिकाओं और सामाजिक चेतना की सहायता से निभाया गया। इसके साथ ही स्वतंत्र भारत में अलग तरह की समस्याएं महिला आन्दोलन को झेलनी पड़ी। विदेशी दुश्मन और शासन से लड़ना भावनात्मक दृष्टि से अधिक सरल था। अपनों से अपने अधिकार मांगना भीख मांगने वाली सी अनुभूति लेकर आया। जिसने महिलाओं को नैतिक रूप से सशक्त तो किया,किन्तु ये राह कतई आसान नहीं होने वाली थी। आजाद भारत ने बिना भेद के सभी को समान अधिकार दिए किन्तु हकीकत के स्तर में ये स्थिति उतनी समान नही रही। पुरुष सत्तात्मक समाज में अपनी समानता का उपभोग और उपयोग इतना सरल नही होता। गरीब तथा मजदूर महिलाओं की स्थिति में कोई सुधार नही दिखाई दिया। तेभागा आन्दोलन , तेलंगाना आन्दोलन (आंध्रप्रदेश) नक्सली आन्दोलन के शुरूआती दौर की जड में महिलाओं तथा गरीबों का यह क्षेत्रीय असंतोष ही था। जिसमें महिलाओं की सक्रिय भागीदारी दिखाई दी।

1.2 उद्देश्य

1. भारतीय महिला आन्दोलन के इतिहास की समझ विकसित करना।
2. महिला आन्दोलन की सीमाओं में पुरुष सुधारवादियों द्वारा किये कार्य की आधारभूत संरचना समझना।
3. स्वत्रंत रूप से महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य और आंदोलनों का महिला अधिकारों की स्थिति पर प्रभाव जांचना।
4. लैंगिक समझ को क्रियात्मक रूप से समझना।
5. लैंगिक समानता के रास्ते में आने वाली बाधाओं और सीमाओं को जानना।

6. भारतीय समाज के परिपेक्ष्य में महिला आन्दोलन को लेकर एक दृष्टि बनाने में सहायता करना।
7. स्कूल स्तर पर या शिक्षा के परिपेक्ष्य में लैंगिक समानता की जड़ों को समाज की गतिविधियों में देखने की दृष्टि देना।
8. लैंगिक समझ को इतिहास के क्रम में व्यापक आधार प्रदान करना।

1.3 स्वतन्त्रता पूर्व महिला आन्दोलन

परम्पराओं और धर्म की गलत व्याख्या की आड़ में भारत के पुरुष-सत्तात्मक समाज में कई प्रकार की कुरीतियाँ में फैली हुए थीं जिसके आधार पर शोषण करने का अधिकार पाए समाज वाली स्थितियां भी भारतीय समाज की कई बार देखने को मिलती हैं। महिला होने का अर्थ ही दोयम दर्जे की जिंदगी जीना होता था। समान अधिकार तो छोडिये अपने ही जीवन के अधिकार की सोचना भी कुकृत्य समान था। ऐसे में राजा राम मोहन रॉय प्रमुख सुधारक बन कर उभरे , जिन्होंने इस स्थिति के विरुद्ध आवाज़ उठाई । रॉय ने स्त्री-विषयक या केन्द्रित सोच के विचार को पहली बार भारत जैसे परम्परा वादी तथा पुरुषवादी सोच वाले देश में आगे बढ़ाया। रॉय ने सती प्रथा तथा कुलीन वर्ग द्वारा बहुपत्नी प्रथा का विरोध करने के साथ महिलाओं के प्रोपर्टी अधिकार की बात कही। उन्हीं के प्रयासों से 1829 में सती-प्रथा को समाप्त करने के लिए सती-प्रथा निषेध अधिनियम बनाया गया।

इसी के समांतर ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के लिए अभियान चलाया । इन अभियानों का असर यह हुआ कि स्त्री भी सामाजिक-राजनैतिक चिन्तन के मध्य में आ गई। आज के हिसाब से यह बात चाहे कितनी कम मायने रखती हो , लेकिन इन बातों ने ही वह मंजिल तैयार करने में मदद की जिसके आधार पर 19 वीं शताब्दी खत्म होते-होते महिलाओं ने अपने संगठनों के निर्माण पर गौर करना शुरू कर दिया था। यह प्रारंभ में स्थानीय तथा फिर राष्ट्रीय स्वरूप में दिखाई दिया।

स्वतन्त्र पूर्व भारतीय महिला आन्दोलन की विशेषताओं को समझने के लिए उसके चरित्र को समझना होगा। जिससे उसका सही स्वरूप अपने सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में सामने आ सके। नही तो आज के सन्दर्भ में समझने और जानने का प्रयास उसके बुनियादी चरित्र तक पहुंचने से रोक सकता है। जिसे आगे समझने का प्रयास किया जाएगा।

1.3.1 पुरुषों द्वारा संचालित महिला अधिकारों वालें संगठन :

सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक सुधारवादी आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले सुधारकों ने स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय महिलाओं के अधिकारों को लेकर बहस को धार दी। जिनमें ; ब्रह्म समाज के प्रमुख हस्ताक्षर केशब चन्द्र

सेन(बंगाल)का नाम आता है। 1832 में ब्रह्म समाज की स्थापना हुई जिसने इस दिशा में मील के पत्थर का काम किया। ब्रह्म समाज ने निम्न बातों पर बल दिया ;

- महिला-पत्रिका का प्रकाशन
- महिला प्रार्थना सभा का गठन
- महिला-केन्द्रित शैक्षिक कार्यक्रम का विकास
- अंतर्जातीय विवाह का समर्थन

ब्रह्म समाज का कार्य उल्लेखनीय इस दृष्टि से था कि उसने अपने विचारों में ऐसे कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जिससे महिला वर्ग में अपने होने की चेतना अर्थात अस्तित्व को लेकर चेतना आ सके और विचार स्तर पर महिला अभिव्यक्ति फैलाव पा सके। जैसे महिला-पत्रिका के प्रकाशन से लेखन के रूप में एक सशक्त तथा जन माध्यम की स्वीकारोक्ति के साथ साथ समाज के एक वर्ग को अपनी अभिव्यक्ति के लिए रास्ता सुझाया। वहीं दूसरी तरफ अपने स्व में झाँकने तथा समाज के सम-समसामयिक मुद्दों से जोड़ने की पहल की।

समाज से जुड़ने के लिए प्रार्थना के माध्यम से एक वर्ग से जुड़ना भी इसका उद्देश्य था। इसी तरह महिला केन्द्रित कार्यक्रमों का भी व्यापक उद्देश्य अंततः शिक्षा की उपयोगिता का विस्तार ही था। मूलतः सभी कार्यक्रमों का उद्देश्य महिलाओं को घर के अतिरिक्त अपने आप अस्तित्व के रूप में घर से बाहर एक बड़े समाज से जोड़ कर देखना भी रहा।

अंतर्जातीय विवाह का समर्थन इस रूप में अनोखा था कि इसने जाति तथा वर्गों में बंटे इस समाज को एक दूसरे से जुड़ने को प्रेरित किया। भेदों की दुनिया में एकाकार की भावना जो अंततः समानता की और जाती है, इसी से आगे जाकर लैंगिक समानता का रास्ता जुड़ता है।

इसी तरह प्रार्थना समाज जिसकी नींव 1867 में रखी गई थी ,ने महाराष्ट्र और गुजरात में ब्रह्म समाज की भांति लगभग समान तरीके और उद्देश्यों के लिए कार्य किया। माधव गोविन्द रानाडे,नारायण गणेश चंदावरकर और आर।जी। भंडारकर आदि प्रार्थना समाज के माध्यम से स्त्री स्वतंत्रता का समर्थन करते थे। इस समाज से जुड़े चिंतकों ने अन्य बातों के अलावा निम्न बातों पर भी बल दिया :

- बाल विवाह निषेध
- विधवा पुनर्विवाह

- महिला शिक्षा

बाल विवाह एक ऐसी कुरीति थी/है जिसके मूल में स्त्री शोषण के सारे बीज विद्यमान हैं। बाल-विवाह के कारण पढने-लिखने-खेलने की अबोध उम्र में विवाह कर उसे शारीरिक कष्ट से गुजरना पड़ता था। कम उम्र में बच्ची को गर्भ- धारण करने को बाध्य कर दिया जाता था।जिसके कारण उनमें से अधिकतर अपने प्रसव काल में ही इस लोक से विदा हो जाती थीं। अपने बारे में सोचना और आगे बढने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अब इस कुरीति में तो कमी आई है, किन्तु यदि हम उस समय की बात सोचे तो पता चलेगा कि किस तरह का विरोध समाज सेवकों को इस कुरीति के विरोध करने पर झेलना पड़ा। किन किन तर्कों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि स्त्री का कम उम्र में कन्या दान क्यों जरूरी है ? महिलाओं के जीने के अधिकार में बाल-विवाह निषेध ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विधवा-विवाह का समर्थन समाज में विवाह और तथाकथित पवित्रता की सोच पर एक प्रहार था। पुरुष तो बहु-पत्नी रख सकता था, किन्तु स्त्री जन्म-जन्म के लिए सिर्फ एक ही व्यक्ति से बंध कर रहने के लिए मजबूर थी। समाज में विधवाओं को बहुत हीनता से देखा जाता था। सती-प्रथा निषेध के साथ जरूरी था कि विधवा पुनर्विवाह की भी बात सोची जाए। ऐसे में विधवा पुनर्विवाह कई अर्थो में दूरगामी सिद्ध हुआ। जिसने समाज में स्त्री-पुरुष के रिश्ते पर पुनर्विचार करने की ओर कदम बढ़ाया।

यदि देखा जाये तो पुरुष सुधारवादी आन्दोलनकारियों ने महत्वपूर्ण काम किया। जिसकी बुनियाद पर आगे चलकर महिला आन्दोलन खड़ा हो सका। एक दुविधा भी पुरुष सुधारवादियों में दिखाई देती है , अधिकतर स्त्री की प्राथमिकता में घर को केंद्र में रख कर सोचते दिखाई देतें हैं।

1.3.2 महिलाओं द्वारा संचालित महिला आन्दोलन

19 वीं शताब्दी के अंत में कुछ उच्च तथा नामी (कुछ संभ्रांत शब्द का प्रयोग भी करते हैं) परिवार की महिलाओं द्वारा प्रारम्भ में महिला विषयक जागृति संगठन संचालित किए गए। इनमें से एक रविन्द्रनाथ टैगोर की बहन स्वर्नाकुमारी देवी द्वारा 1882 ई0 में स्त्री सोसाइटी का गठन उल्लेखनीय शुरुआत कही जा सकती है। जिसने कुछ महत्त्वपूर्ण स्त्रियों से सम्बन्धित विषयों को छुआ;जैसे

- विधवाओं तथा गरीब महिलाओं के आर्थिक स्वाबलंबन के लिए शिक्षा तथा कौशल का विकास
- महिला केन्द्रित पत्रिका 'भारती' का प्रकाशन

इसके कुछ समय बाद ही रमाबाई सरस्वती ने आर्य महिला समाज की पुणे में स्थापना की। भारत महिला परिषद का बनना भी एक अच्छा कदम सिद्ध हुआ। जिसके केंद्र में –

- बाल विवाह
- विधवाओं की स्थिति
- दहेज़ जैसी कुरीतियाँ, आदि थें।

1910 में सरला देवी चौधुरानी (ध्यातव्य रहे ये स्वर्नाकुमारी देवी की पुत्री थी) ने भारत स्त्री मंडल नाम से संगठन बनाया। इस संगठन ने सही माइने में सोच के व्यापक स्तर को बढ़ाया।इसने महिलाओं से जुड़े मुद्दों और महिलाओं की भागीदारी को सभी महिलाओं तक पहुँचाने का प्रयास किया। इस संगठन का उद्देश्य सभी महिलाओं को जाति,वर्ग,धर्म ,दल आदि के भेद बिना समान हितों के लिए संगठित एवं जागरूक करना था। (see; Bangal, J.C.,1964,"Sarala Devi Chaudhurani",Sahitya Sadhak Charitmala,no.99,Bangiya Sahityya Parishad, Calcutta.) संक्षिप्त समय के फैलाव तक सीमित रहने के बावजूद इस संगठन की नीतियों ने आगे अन्य महिला संगठनों के लिए सोचने के नीतिगत अवसर पैदा किए। इस संगठन को दो विशेषताओं के लिए याद किया जा सकता है :

- पहला,संगठन में सिर्फ महिलाओं को ही शामिल होने की अनुमति थी।
- दूसरा, संगठन पुरुष वर्चस्व से इतर महिलाओं को अपने मुद्दों के लिए स्वयं शिक्षित होने का पक्षधर था। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर जरुरतमन्द महिलाओं के घर जाकर ही शिक्षित किया जाता था।

जिसका प्रभाव यह हुआ कि महिलाओं में अपने बलबूते अपने सगठन बनाने ,समाज को महिला नेतृत्व प्रदान करने तथा उसके लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार होने की भावना आई। जिसे बाद के आंदोलनों में देखा जा सकता है।

1.4 स्वतंत्रता पूर्व महिला आन्दोलनों द्वारा उठाए गए विभिन्न विषय

स्वतंत्रता पूर्व महिला आन्दोलनों द्वारा उठाए गए विभिन्न विषयों पर विचार एवं विस्तृत विश्लेषण करने पर कई तरह के मुद्दे भारतीय महिला आन्दोलन के बीच दिखाई देते हैं। बड़ी संख्या में राजनीतिक व सामाजिक भागीदारी के लिए छटपटाहट के अलावा वर्तमान शैक्षिक स्थिति के प्रति असंतोष तथा बराबरी के अधिकार को पाने की भावना उसके मूल में रही। महिलाओं की वास्तविक भागीदारी 1920 के बाद स्वतंत्रता आन्दोलन,ट्रेड यूनियन आन्दोलन

, जाति विरोधी आन्दोलन, नारी-मुक्ति आन्दोलन के रूप में दिखाई देती है। जिसे विभिन्न आन्दोलनों और संगठनों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली। समग्र रूप से समझने के लिए हम स्वतंत्रता पूर्व के महिला आन्दोलन को अग्रलिखित शीर्षकों में सरलता से समझ सकते है।

- शिक्षा में भागीदारी
- राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार तथा हिस्सेदारी
- सामाजिक सुधार
- निजी कानूनों में सुधार; आदि

1.4.1 शिक्षा में भागीदारी

मूलतः स्वतंत्रता से पूर्व के महिला आन्दोलनों का ध्येय महिलाओं को शिक्षित करना था चाहे घर की चारदीवारी के अंदर हो या बाहर। चाहे राजा राम मोहन रॉय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशब चन्द्र सेन माधव गोविन्द रानाडे,नारायण गणेश चंदावरकर और आर।जी।भंडारकर आदि पुरुष समाज सुधारक हो या स्वर्नाकुमारी देवी, सरला देवी चौधुरानी, रमाबाई सरस्वती आदि जैसे स्त्री समाज सुधारक हों। सभी ने बाकी मुद्दों के साथ और सबसे पहले स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल दिया। महिलाओं के अधिकारों पर तमाम दुविधाओं के बावजूद अधिकतर स्वतंत्रता सेनानी तथा समाज सुधारक स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। शिक्षा में भागीदारी को पढने-लिखने की सीमाओं से आगे बढ़ कर पत्रिकाओं के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करने पर रहा।

1887 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके तीसरे राष्ट्रीय अधिवेशन में भी महिलाओं के शैक्षिक मुद्दों पर बात रखी गई। भारत महिला परिषद (1905) के गठन ने महिलाओं को संगठन बनाने और उसके प्रबंधन की व्यवहारिक शिक्षा की दिशा में एक कदम बढ़ाया। इस तरह के अनुभव ने समाज की हर वर्ग की महिलाओं को संगठन निर्माण और उससे जुड़ने की शिक्षा दी। जिसने हिन्दू ,मुस्लिम, सिख ,पारसी आदि वर्गों की महिलाओं को समाज में अपनी स्थिति के बारे में आगे बढ़ कर अपने विचार व्यक्त करने का साहस भी दिया।

स्वतंत्रता पूर्व के महिला आन्दोलन में महिला शिक्षा के विकास में सावित्री बाई फुले का नाम अग्रणी रूप में याद किया जाता है। सावित्री बाई फुले देश की पहली महिला अध्यापिका व नारी मुक्ति आन्दोलन की पहली नेता थीं जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में ब्राह्मणवाद को सीधी चुनौती देने का साहस किया। उनके पति महान समाज सुधारक ज्योतिबा फुले थे जिन्होंने सती-प्रथा, छुआ-छूत, बाल-विवाह आदि कुरीतियों का विरोध किया तथा महिला शिक्षा और विधवा-विवाह का समर्थन किया।

डॉ0 धोड़ो केशव कर्वे(महर्षि कर्वे) ने महिलाओं की शिक्षा और कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया।1896 में एक 'हिन्दू विधवा होम एसोसिएशन' की स्थापना के साथ 1907 में महिला विद्यालय की शुरुआत भी की।1916 में पुणे में महिलाओं का पहला विश्वविद्यालय स्थापित किया।1917-18 के दौरान प्राथमिक स्कूल शिक्षक और लडकियों के लिए ट्रेनिंग कॉलेज की शरुआत की। महात्मा फुले की तरह कर्वे जी का योगदान महिला आन्दोलन में महिलाओं की शैक्षिक भागीदारी की इच्छा और सपने को बल और पंख दोनों देता है।

महिला आन्दोलन के शुरुआती चरण में अन्य पुरुष सुधारवादियों ने महिला शिक्षा के महत्व को समझा जिनमें स्वामी विवेकानन्द जी रामकृष्ण मिशन ने भारत में शिक्षा की योजना में महिलाओं की भागीदारी की वकालत की। इसी तरह बदरूद्दीन तैयबजी , सैयद इमाम जिन्होंने जनाना मदरसे की स्थापना पर जोर दिया तथा जनाब हैदरी साहब का नाम उल्लेखनीय है। गांधी जी का नाम महिला शिक्षा के सन्दर्भ में लेना मात्र औपचारिकता होगा। गांधीजी स्त्री-शिक्षा के पक्के समर्थक थे। जिसका परिणाम यह रहा कि 'ऑल इण्डिया वीमेन कांफ्रेंस' से बड़ी संख्या में महिलाएं जुड़ीं।

शैक्षिक- भागीदारी का परिणाम यह निकला कि आगे के महिला आन्दोलन में शैक्षिक गम्भीरता भी व्यापक स्तर पर झलकी। जिसकी देन के रूप में समाज को महान विभूतियाँ मिली जैसे- सवित्री बाई फुले,सरला देवी चौधरानी, ताराबाई शिंदे,पंडिता रमाबाई,राजकुमारी अमृत कौर,सुचेता कृपलानी, सिस्टर निवेदिता ,मुथुलक्ष्मी रेड्डी, सुशीला नायर, अरुणा आसफ अली, विजय लक्ष्मी पंडित, सरोजनी नायडू, स्वर्ण कुमारी घोषाल,कमला नेहरु, रोकैया सखावत हुसैन,दीदी सुब्बुलक्ष्मी ,कमला देवी,आदि।

1.4.2 राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार और हिस्सेदारी

जब लार्ड एडविन मोंटागुए,सचिव, स्टेट ऑफ़ इंडिया भारत आए और संवैधानिक सुधारों के लिए लार्ड चेल्म्सफोर्ड ने राजनैतिक सर्वे किया। उस समय भारतीय महिलाओं के लिए अपने राजनैतिक अधिकार पाने का अच्छा अवसर था।1917 में 'वीमेन इंडियन एसोसिएशन' की नींव रखी गई । इस तरह महिलाओं का नेतृत्व अपनी राजनैतिक आजादी के लिए खड़ा हुआ। इसका नेतृत्व किया तीन आयरिस महिलाओं ने- एनी बेसेंट, मार्गरेट कोउसिंस और डोरोथी जिनाराजदासा। उनके साथ मालती पटवर्धन,अम्मू स्वामीनाथन,श्रीमती ददाभोय और श्रीमती अम्बुजम्मल आदि भारतीय महिलाएं भी थीं।

राजनैतिक बराबरी की दिशा में वोट का अधिकार एक बड़ा कदम माना जा सकता है,किन्तु यह भी बिना संघर्ष के नही मिला पुरे देश से २३ महिलाओं ने इसके लिए ज्ञापन मोंतागुए और चेल्म्स्फोर्ड को दिया। जिसमे उन्होंने महिलाओं की भागीदारी के बिना कार्यपालिका को अधुरा बताया। महिलाओं के प्रतिनिधिमंडल ने सरोजनी नायडू के नेतृत्व में जोरदार तरीके से अपनी बात रखी। इसके लिए पुरे देश में महिला संगठनों ने समर्थन दिखाने के लिए प्रमुखता से जोरदार सभाएं रखी। यद्यपि साउथबोरोघ कमेटी (1918) ने कहा था कि अभी भारतीय महिलाएं इसके लिए तैयार नहीं हैं। सरोजनी नायडू और एनी बेसंट दोनों ने महिलाओं का पक्ष सयुंक्त संसदीय समिति के समक्ष रखने के लिए इंग्लेंड गईं। अंततः 'सयुंक्त संसदीय समिति' लेंगिक भेद को मिटाने के लिए तैयार हो गई , किन्तु उन्होंने इसे लागू करने का निर्णय प्रांतीय विधानसभाओं पर छोड़ दिया। इस दिशा में ट्रावन्कोर-कोचीन प्रांतीय राज्य ने पहल कर सबसे पहले 1920 में महिलाओं को वोट का अधिकार दिया। यद्यपि इस अधिकार को सीमाओं के साथ विभिन्न राज्यों ने देना शुरू किया।

1928 में 'साइमन कमीशन' के समक्ष दिए अपने साक्ष्य में डॉ। अम्बेडकर ने बिना भेद-भाव के व्यस्क मताधिकार को जोरदार तरीके से रखा। इसी क्रम में 1942 में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में श्रम सदस्य नियुक्त होने पर पहली बार महिलाओं के प्रसूति अवकाश की व्यवस्था की गई।

राजनैतिक अधिकार को उपयोग करने की दिशा में मद्रास विधानसभा कौंसिल के चुनाव को माना जा सकता है , जिसमें मंगलोर से कमलादेवी चट्टोपाध्याय खड़ी हुईं और बहुत कम अंतराल से वह पराजित हुईं। इसने एक नई राजनैतिक ऊर्जा का संचार राजनैतिक बराबरी के लिए किया। मद्रास सरकार ने डॉ मुथुलक्ष्मी रेड्डी को विधान सभा कौंसिल में महिलाओं के पक्ष के लिए नामांकित किया। महिलाओं को राजनैतिक बराबरी के अधिकार के लिए लम्बा इंतज़ार करना पड़ा, जिसकी परिणिति आज़ाद हिन्दुस्तान में सभी को समान राजनैतिक मताधिकार के रूप में हो पाई।

1.4.3 निजी कानूनों में सुधार

1927 में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' पुणे में हुआ जिसमें बालिकाओं की शिक्षा पर भी चर्चा हुई। इस चर्चा से यह तथ्य निकल कर सामने आया कि लडकियाँ बहुत से कारणों से विद्यालय नही जा पातीं। जिसमें बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सामजिक प्रथाएं मूल रूप से शामिल हैं। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में निजी कानूनों में बदलाव की बात उठी यद्यपि वहाँ भी समान नागरिक कानून को लेकर कुछ विरोध स्थिति रही। लगातार महिलाओं के दवाब के कारण अंततः 1950 में 'हिन्दू कोड बिल' आजादी के बाद पास हुआ। निजी कानूनों के कारण भी महिलाओं

की स्थिति प्रभावित होती है, जिसे समझ महिला संगठनों ने कई बार आन्दोलन किये किन्तु सफलता अभी भी पूरी तरह नही मिली इसलिए इस दिशा में संघर्ष भी जारी है।

1.5 राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाएं

बंगाल में 1905-11 तक 'स्वदेशी आन्दोलन' और 'होम रुल आन्दोलन' में महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी दिखाई। गाँधी जी के राजनैतिक परिदृश्य में आते ही महिलाओं की भागीदारी स्पष्ट बढती दिखाई देती है। भारतीय कांग्रेस के 1930 के कराची अधिवेशन में पारित विधेयक पास हुआ जिसने महिलाओं के समान अवसर की दिशा में एक कदम और बढ़ाया। मार्च 1930 में 240 मील की डांडी यात्रा में महिलाओं की भागीदारी ने देश में महिलाओं को अच्छी राजनैतिक पहचान दिलवाने में मदद की। यह पहचान 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के दुसरे चरण में और अधिक सम्बल हुई।जब अंग्रेज सरकार द्वारा की गई सामानों की नीलामी का महिलाओं ने बहिष्कार दिया।1930 के बाद का समय महिलाओं राजनैतिक पहचान की दिशा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।1930 महिलाओं ने पुलिसिया दमन सहे, जिसमें 1930 में मुंबई में चुनाव-केंद्र पर चुनाव के विरुद्ध धरने में बैठी 400 महिलाओं की एक साथ गिरफ्तारी प्रमुख है। राजनैतिक शिक्षा और नेतृत्व को आगे बढाने की दृष्टि से इसमें विचारपरक संगठनों का निर्माण भी शामिल है।

महिलाओं ने अनेक संगठनों का निर्माण किया जैसे नारी सत्याग्रह समिति,महिला राष्ट्रीय संघ, देश सेविका संघ,स्त्री स्वराज संघ, स्वयं सेविका आदि। इन संगठनों के निर्माण ने महिलाओं में राजनैतिक इच्छा-शक्ति तथा अपनी मांगों को मनमाने की रणनीति के निर्माण को प्रोत्साहित किया। जिसने महिलाओं को संगठन निर्माण के साथ जुलूस, धरने, प्रदर्शन और समय आने पर गिरफ्तारी के लिए भी तैयार रहने की इच्छा शक्ति प्रदान की।1939 में राजनैतिक कैदियों की रिहाई के लिए आन्दोलन में महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। जिसमें भूमिगत वामपंथी दल की महिला सदस्य सक्रिय रहीं। इसी क्रम में 1942 के ऐतिहासिक भारत छोड़ो आन्दोलन में हजारों महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभा के राजनैतिक उपस्थिति भी दर्ज़ करवाई।

1.6 श्रम आन्दोलन में महिलाएं

1917 में अनसूया साराभाई ने अहमदाबाद टेक्सटाइल कर्मचारियों की हडताल का नेतृत्व किया ।1920 में मजूर महाजन नामक यूनियन का गठन किया। आज़ादी से पूर्व कई मजदूर यूनियनों में महिलाओं की अग्रणी भागीदारी ध्यान योग्य है। कई महिला मजदूर नेता इस बीच उभरी जिसमें मणिबेन,उषाबाई दंगे, पारवती भोरे जैसे नाम प्रमुख

हैं। इन सब महिलाओं ने महिला नेतृत्व को एक कुशल आयाम दिया। जिसने साहस ,आगे बढ़ कर निर्णय लेना, मुकाबला करना ,रणनीति बनाना तथा आर्थिक चिन्तन की शुन्यता को खत्म करने का काम किया।

स्वतंत्रता से पूर्व का महिला आन्दोलन भारतीय नारीवादी आन्दोलन का प्रथम सोपान माना जा सकता है। जिसने परम्परागत भारतीय महिला की छवि से बाहर आने का प्रयास किया ।पहली बार भारतीय चेतना में महिलाओं के अधिकार तथा बराबरी जैसे प्रश्न आए। सदियों से चली आई प्रथाएं भी तर्क और बराबरी की मांग करने लगी। सबसे अच्छी बात ये हुई की इस प्रथम लहर का आधार बनाने में पुरुष समाज सुधारक भी पीछे नही थे। किन्तु असली बात महिलाओं द्वारा इस आन्दोलन को गति देने से आई।

1.7 स्वतन्त्रता उपरान्त का महिला आन्दोलन

स्वतंत्र भारत में अलग तरह की समस्याएं महिला आन्दोलन को झेलनी पड़ी। विदेशी दुश्मन और शासन से लड़ना भावनात्मक दृष्टि से अधिक सहज था। अपनों से अपने अधिकार मांगना भीख मांगने वाली सी अनुभूति लेकर आया। जिसने महिलाओं को नैतिक रूप से सशक्त तो किया । किन्तु ये राह कतई आसान नहीं होने वाली थी। आजाद भारत ने बिना भेद के सभी को समान अधिकार दिए। किन्तु हकीकत के स्तर में ये स्थिति उतनी समान नही रही। पुरुष सत्तात्मक समाज में अपनी समानता का उपभोग और उपयोग इतना सरल नही था। गरीब तथा मजदूर महिलाओं की स्थिति में कोई सुधार नही दिखाई दिया। तेभागा आन्दोलन , तेलंगाना आन्दोलन (आंध्रप्रदेश) नक्सली आन्दोलन के शुरूआती दौर की जड में महिलाओं तथा गरीबों का यह क्षेत्रीय असंतोष ही था। जिसमें महिलाओं की सक्रिय भागीदारी दिखाई देती है।

स्वतंत्रता के पश्चात के महिला आन्दोलन को आगे विभिन्न शीर्षकों में समझने का प्रयास किया जाएगा।

1.7.1 निर्णायक पदों / सत्ता पर निर्णायक भागीदारी

भारत में राजनैतिक महिला नेतृत्व उत्साहवर्धक नही कहा जा सकता। अरुणा आसफ अली का दिल्ली में 1958 में प्रथम महापौर चुना जाना भी उल्लेखनीय राजनैतिक घटनाक्रम है, जो स्वतंत्र रूप से राजनैतिक निर्णय लेने की और बढ़ता कदम माना जाना चाहिए।इंदिरा गाँधी के प्रधानमन्त्री बनने के बाद भी राजनीति में महिलाओं के लिए संघर्ष अभी कम नही हुआ है। इसका प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक समाज का होना है।1946 में भारत की सविंधान सभा के निर्माण के समय 14 महिलाओं को सदस्य रूप में शामिल किया गया था। जिसमें अम्मू स्वामीनाथन, द्क्ष्यानी वेलायुद्धं,दुर्गाबाई देशमुख, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, मालती चौधरी,हंसा मेहता,पूर्णिमा बनर्जी,कमला

चौधरी, बेगम अज़ीज रसूल,सरोजनी नायडू, बेगम जहाँ नारा शाह नवाज़, बेगम इकरमुल्लाह और लीला राय जी थीं।

1975 में भारत में महिलाओं की स्थिति समिति रिपोर्ट(CSWI) के प्रकाशन के साथ ही पंचायती निकायों में महिलायों के आरक्षण की मांग उठने लगी। परिणाम स्वरूप संसद ने 1992 में जाकर 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायत निकायों में महिलाओं को 1/3 सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया।1992 का ही 74 वां सविंधान संशोधन अधिनियम नगरपालिका क्षेत्र में वहाँ की कुल जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित करता है। यह कुल सीटों में से 1/3 स्थान महिलाओं ,जिनके अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या सम्मिलित है-के लिए आरक्षित करता है। राजनैतिक दृष्टि से महिलाओं की स्वतन्त्रता पूर्ण उड़ान और उनके बराबरी के आन्दोलन के लिए ये दोनों सविंधान संशोधन बहुत माइने रखते हैं।

अंतर संसदीय यूनियन की रिपोर्ट 2013 के अनुसार, 188 देशों में से भारत का 108 वां स्थान है। इतने संघर्ष के बावजूद पार्टियों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाने के कारण 2014 में जाकर रिकॉर्ड 61 महिला सांसद चुनी गई । ये कुल का मात्र 11।23 प्रतिशत ही रहा। महिलाओं की राजनैतिक राह को सही दिशा देने के अभी 9 मार्च 2010 को राज्यसभा द्वारा पारित विधेयक को लोकसभा से मंजूरी मिलनी जरूरी है। जिसके बाद भारत में लोकसभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देना अनिवार्य हो जायेगा। देश की आधी आबादी के 33 प्रतिशत नाकाफी है, फिर भी यह वर्तमान दयनीय स्थिति को सकारात्मक बनाने के लिए उपयोगी होगा।इस दिशा में महिलाओं को अभी संघर्ष करना जरूरी है।

1.7.2 प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्तर पर बराबरी तथा भागीदारी

आजादी के पूर्व कई समाजिक,आर्थिक एवं राजनैतिक आंदोलनों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रही। इस भागीदारी को उत्कर्ष आजादी के बाद बाद मिला। देश आजादी के कुछ समय बाद ही भूदान आन्दोलन अपना व्यापक प्रभाव दिखाता है।1950 में शुरू हुए भूदान आन्दोलन में महिलाओं की सक्रिय प्रशंसनीय रही।जिसने समाजिक रूप से अपने को सक्रिय करने की प्रेरणा एवं ताकत दी।

विभिन्न आन्दोलन में सक्रियता एवं नेतृत्व महिलाओं की सामाजिक चेतना का प्रतीक के रूप में चिपको आन्दोलन मील का पत्थर साबित हुआ। इस आन्दोलन ने पूरी दुनिया को एक नई राह दिखाई। चमोली जिले के गोपेश्वर कस्बे से शुरू इस आन्दोलन में गांव की महिलायें पेड़ों को बचाने के लिए उनसे चिपक गई। इस तरह महिलाओं ने

पर्यावरण को लेकर वैश्विक जागरूकता पैदा की। इस आन्दोलन से महिला सशक्तिकरण को नई ताक़त और ऊँचाई मिली।1972-1973 में अपने स्वरूप में आए इस आन्दोलन में गौरा देवी को प्रमुख पहचान मिली। जिसने महिला नेतृत्व को बहुत बल दिया।

इला भट्ट 4972 में 'सेवा' संगठन की संस्थापक हैं। महिलाओं के पूर्ण रोजगार और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्यों के प्रति समर्पित सुश्री भट्ट को कई राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया गया। इला भट्ट ने सहकारिता श्रम और महिलाओं के वित्तीय आन्दोलन को प्रोत्साहन किया है।

इसी तरह भारतीय लोकतान्त्रिक महिला संगठन (एडवा) महिला विषयक मुद्दों के प्रति समर्पित संगठन है। यह संगठन महिलाओं की समानता,लोकतंत्र में उचित स्थान तथा हर स्तर पर होने वाले शोषण के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करता है।1981 में राष्ट्रीय स्वरूप लिए यह संगठन लगभग सभी राज्यों में महिलाओं के मुद्दों पर सक्रिय है।

सामजिक पहचान के रूप में नर्मदा आन्दोलन ने मेधा पाटेकर को नई पहचान दी।1985 में शुरू महिलाओं द्वारा चलाये इस आन्दोलन ने पूरी दुनिया को दिखा दिया कि किस तरह से एक गंभीर सामाजिक, पर्यावरण और विस्थापन से जुड़े गम्भीर मुद्दे को आवाज़ दी। तथा पूरी दुनिया का ध्यान विकास की वैकल्पिक अवधारणा की और खींचा। मेधा पाटेकर के कुशल नेतृत्व में नर्मदा नदी के किनारे सरदार सरोवर के विरुद्ध आदिवासी-जनजातीय लोग,किसान, सामजिक संरक्षणवादी, मानव अधिकार के प्रति समर्पित कार्यकर्ता सक्रिय हुए। महिला नेतृत्व की भावना के विकास की दृष्टि से यह एक सफल आन्दोलन रहा। जिसने अन्य महिलाओं को नेतृत्व की नई राह दिखाई।

महिला नेतृत्व की दृष्टि से एक अन्य गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित नाम निर्मला देश पांडे का है। उन्होंने अखिल भारत रचनात्मक समाज, अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ, आदि संगठनों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। निर्मला देशपांडे जी का जीवन वंचितों,आदिवासियों और महिलाओं के विकास के लिए समर्पित रहा।1980 के दशक के आसपास आंतक से ग्रस्त पंजाब और जम्मू-कश्मीर में बड़े पैमाने में लडकियों और महिलाओं को शान्ति स्थापना के लिए प्रेरित किया। 2006 में निर्मला देश पांडे जी के इन्हीं प्रयासों के कारण भारत सरकार ने पद्म विभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

महिला नेतृत्व की दृष्टि से सम्पत पाल के गुलाबी गैंग का नाम भी लिया जा सकता है।1980 में सम्पत पाल तथा उनकी अन्य सहयोगिनी महिलाओं ने महिलाओं के प्रति उनके पतियों द्वारा किये जा रहे शोषण और दुर्व्यवहार के विरुद्ध एक संगठित प्रयास प्रारम्भ किया। अपनी अलग पहचान के लिए इस संगठन से जुडी महिलाएं गुलाबी रंग की साड़ी पहनती हैं। महिलाओं में आत्मबल बढ़ाने के लिए इस समूह से जुडी महिलाओं ने लाठी चलाने का

प्रशिक्षण लिया और अन्य महिलाओं को भी उसके लिए तैयार किया। इस संगठन का प्रभाव विशेष रूप से बुदेलखंड के क्षेत्रों में फैला हुआ है।

1.7.3 आर्थिक शोषण के विरुद्ध आन्दोलन

आजादी के पूर्व ही आर्थिक शोषण में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी की नींव पड़ चुकी थी, जो आजादी के बाद भी लगातार जारी दिखाई देती है। आजादी के तुरंत बाद 1948 में स्वराज्यम,अखला कमला देवी, प्रमिला इलामा आदि महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने तेलंगाना में महिलाओं ने जमींदारी,महाजनों और मार-पीट के शोषण का विरोध किया। इस आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप आंध्र युवती मंडल, आंध्र महिला सभा ,महिला संघम जैसे महिलावादी संगठन सामने आए।

अहमदाबाद में महिला कामगार यूनियन (SEWA)का गठन इला भट्ट जीके द्वारा 1972 हुआ। यह संगठन असंगठित क्षेत्र में गरीब महिला कामगारों की बेहतरी के लिए काम करने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। सेवा महिलाओं को प्रशिक्षण तथा तकनीकी सहायता प्रदान करती है । इस संगठन का आधार गांधीवादी है।

1.7.4 उपभोक्ता के हित में आवाज

महिला नेतृत्व के सन्दर्भ में ही 1973 में मुंबई में मृणाल गोर और अहल्या रंगनेकर द्वारा कीमत बढ़ाने को लेकर संघर्ष किया । जिसमें महिलाओं की बढती महगाई के मुद्दे पर जागरूक किया गया। इस आन्दोलन ने उपभोक्ता अधिकारों को लेकर जन आन्दोलन का रूप धारण किया। इस आन्दोलन ने संघर्ष के तरीके को नया रूप दिया हजारों महिलाएं हाथ से थाली पीटती हुई बढ़ती महंगाई और कीमतों के खिलाफ खड़ी हुई। इसने महिलाओं में अपने अधिकारों के संघर्ष को लेकर अतिरिक्त सजगता भरी। इसी तरह गुजरात में नव निर्माण आन्दोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी बढ़ती राजनैतिक कुशलता का सूचक है।

1970 में महिलाओं ने महाराष्ट्र में मूल्यवृधि के विरुद्ध 'यूनाइटेड विमेंस एंटी प्राइस राइज फ्रंट' की स्थापना की।1973 में मुंबई में मृणाल गौरे,समाजवादी पार्टी और अहिल्या रंगनेकर,सी.पी.आई.(एम.) ने महिला उपभोक्ताओं के लिए जन शिक्षण आन्दोलन के द्वारा किया।

1.7.5 सामाजिक बुराइयों एवं शोषण के विरुद्ध एकजुटता

शराबबंदी के विरुद्ध 1972-73 का महिला आन्दोलन उल्लेखनीय हैं,जिसमें उन्होंने इससे घरेलू हिंसा को जोड़ा। शराब माफिया के विरुद्ध उत्तराखंड, बिहार और गुजरात में महिलाओं के एकजुटता ने अपना असर दिखाया। बिहार में शराबबंदी के पक्ष में एकजुटता के कारण 2016 में पूर्ण शराब बंदी लगु हुई। गुजरात में तो यह पहले से ही लागू है। इसी तरह इस समय उत्तर-प्रदेश और छत्तीसगढ़ में महिलाएं शराबबंदी को लेकर आन्दोलनरत हैं।

1996 में 'द लायर्स कलेक्टिव, विमेंस राईट इनिशिएटिव' ने घरेलू हिंसा के विरुद्ध मुहीम चलाई ।भारत में बहुत जोरदार मांग के बाद 'घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम 2005' में पास हुआ। जिसने महिलाओं को अपने घर में कानूनी सुरक्षा का भरोसा दिलाया।1997 में उच्चतम न्यायालय ने कार्य-क्षेत्र पर होने वाले शोषण पर महत्वपूर्ण फैसला सुनाया। जिसे विशाखा जजमेंट के नाम से जाना जाता है। इसने महिला अधिकारों और महिला आंदोलनों को काफी मजबूती दी ।इन सबके बावजूद अभी लड़ाई काफी बाकी है।16 दिसम्बर 2012 को हुए सामूहिक बलात्कार काण्ड ने हिला कर रख दिया। निर्भया की मौत के बाद न्यायमूर्ति जे।एस। वर्मा समिति का गठन किया गया एक महीने के भीतर इस समिति ने अपनी 600 पृष्ठों की रिपोर्ट में कई महत्वपूर्ण और दूरगामी सिफारिशे की। इन सिफारिशों में महिलाओं के विरुद्ध होने वाली यौन हिंसा, बाल यौन उत्पीडन, हिंसा के बाद होने वाली चिकित्सा जांच, पुलिस जांच आदि में सुधारों की सिफारिश शामिल हैं। इस समिति ने अपनी दृष्टि को व्यापक बनाते हुए शैक्षिक सुधारों और बलात्कार से सम्बन्धित कानूनों में सुधारों की भी वकालत की।

1.8 सारांश

भारतीय महिला आन्दोलन प्रारम्भ से ही सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रतिमानों एवं आदर्शों की जटिल बुनियादी संरचना रहा है।प्रत्येक पुरुष-सत्तात्मक समाजों में जिन जटिल परिस्थिति और दुराग्रहों का सामना महिला अधिकारवादियों को करना पड़ता है। स्वतन्त्रता पूर्व महिला आन्दोलन में सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक सुधारवादी आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले सुधारकों ने महिलाओं के अधिकारों को लेकर बहस को धार दी।इस बहस को ताकत देने के लिए महिला-पत्रिका का प्रकाशन ,महिला प्रार्थना सभा का गठन,महिला-केन्द्रित शैक्षिक कार्यक्रम का विकास,अंतर्जातीय विवाह का समर्थन,बाल विवाह निषेध,विधवा पुनर्विवाह,महिला शिक्षा आदि पर जोर दिया।49 वीं शताब्दी के अंत आते-आते महिलाओं के अधिकार की बात उच्च वर्ग से आम वर्ग के बीच आने लगी। जिससे शिक्षा में भागीदारी की बात 1887 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तीसरे राष्ट्रीय अधिवेशन में भी बात रखी गई। राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार और हिस्सेदारी की दिशा में वोट का अधिकार एक बड़ा कदम माना जा सकता है,किन्तु यह भी बिना संघर्ष के नही मिला। हर धर्म के मानने वालों में निजी कानूनों में सुधार की मांग के सन्दर्भ में समान नागरिक कानून को लेकर कुछ विरोध की स्थिति भी रही। लगातार महिलाओं के दवाब के कारण अंततः 1950 में 'हिन्दू कोड बिल' आजादी के बाद पास हुआ।

इसी क्रम में 1942 के ऐतिहासिक भारत छोड़ो आन्दोलन में हजारों महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभा के राजनैतिक उपस्थिति भी दर्ज़ करवाई। स्वतंत्रता पूर्व का महिला आन्दोलन भारतीय नारीवादी आन्दोलन का प्रथम

सोपान माना जा सकता है। जिसने परम्परागत भारतीय महिला की छवि से बाहर आने का प्रयास किया। स्वतन्त्रता उपरान्त के महिला आन्दोलन को में कुछ मुद्दे तो पूर्व के ही रहे साथ में श्रम आन्दोलन ने महिला नेतृत्व को एक कुशल आयाम दिया। जिसने साहस, आगे बढ़ कर निर्णय लेना, मुकाबला करना, रणनीति बनाना तथा आर्थिक चिन्तन की शुन्यता को खत्म करने का काम किया।इसके साथ ही निर्णायक पदों / सत्ता पर निर्णायक भागीदारी,प्रत्येक सामाजिक,आर्थिक एवं राजनैतिक स्तर पर बराबरी तथा भागीदारी की मांग उठने लगी। इस भागीदारी को उत्कर्ष आजादी के बाद बाद मिला।आर्थिक शोषण के विरुद्ध आन्दोलन में भी महिलावादी सोच रखने वाले संगठनों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सामाजिक बुराइयों एवं शोषण के विरुद्ध एकजुटता,शराब माफिया के विरुद्ध आवाज़ भी महिला आन्दोलन को एक व्यापक स्वीकारोक्ति देती है। कुल मिला कर भारतीय महिला आन्दोलन अपने स्वरूप का लगातार विस्तार कर रहा है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भारतीय महिला आन्दोलन की शुरुआत किस रूप में देखने को मिलती है।
   पुरुष सुधारवादियों के कार्य में भारतीय महिला आन्दोलन की शुरुआत देखने को मिलती है ।जिसके अंतर्गत पुरानी परम्पराएं , सती-प्रथा, बालविवाह , देवदासी-प्रथा आदि अंधविश्वास से मुक्ति आदि रहा। इसमें विभिन्न संगठन जैसे आर्य समाज, ब्रह्म समाज,प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
2. राजा राममोहन रॉय के योगदान को संक्षिप्त रूप से कैसे समझा जा सकता है।
   राजा राममोहन रॉय ने स्त्री-विषयक या केन्द्रित सोच के विचार को पहली बार भारत जैसे परम्परा वादी तथा पुरुषवादी सोच वाले देश में आगे बढ़ाया। रॉय ने सती प्रथा तथा कुलीन वर्ग द्वारा बहुपत्नी प्रथा का विरोध करने के साथ महिलाओं के प्रोपर्टी अधिकार की बात कही। उन्हीं के प्रयासों से 4829 में सती-प्रथा को समाप्त करने के लिए सती-प्रथा निषेध अधिनियम बनाया गया।
3. स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय महिलाओं के अधिकारों को लेकर बहस को धार किसने दी।
   सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक सुधारवादी आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले सुधारकों ने स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय महिलाओं के अधिकारों को लेकर बहस को धार दी।
4. सरला देवी चौधुरानी ने भारत स्त्री मंडल नाम से जो संगठन बनाया था उस संगठन ने कैसे महिला सोच के व्यापक स्तर को बढ़ाया ?

1910 में सरला देवी चौधुरानी ने भारत स्त्री मंडल नाम से संगठन बनाया। इस संगठन ने सही माइने में सोच के व्यापक स्तर को बढ़ाया।इसने महिलाओं से जुड़े मुद्दों और महिलाओं की भागीदारी को सभी महिलाओं तक पहुँचाने का प्रयास किया। इस संगठन का उद्देश्य सभी महिलाओं को जाति,वर्ग,धर्म ,दल आदि के भेद बिना समान हितों के लिए संगठित एवं जागरूक करना था। संक्षिप्त समय के फैलाव तक सीमित रहने के बावजूद इस संगठन की नीतियों ने आगे अन्य महिला संगठनों के लिए सोचने के नीतिगत अवसर पैदा किए। इस संगठन को दो विशेषताओं के लिए याद किया जा सकता है

पहला,संगठन में सिर्फ महिलाओं को ही शामिल होने की अनुमति थी।

दूसरा, संगठन पुरुष वर्चस्व से इतर महिलाओं को अपने मुद्दों के लिए स्वयं शिक्षित होने के पक्षधर था। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर जरुरतमन्द महिलाओं के घर जाकर ही शिक्षित किया जाता था। जिसका प्रभाव यह हुआ कि महिलाओं में अपने बलबूते अपने सगठन बनाने ,समाज को महिला नेतृत्व प्रदान करने तथा उसके लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार होने की भावना आई। जिसे बाद के आंदोलनों में देखा जा सकता है।

5. स्वतन्त्रता पूर्व महिला आन्दोलनों के मूल में क्या विषय थे?

   - स्वतन्त्रता पूर्व महिला आन्दोलनों के मूल में अग्रलिखित विषय रहे-
   - शिक्षा में भागीदारी
   - राजनैतिक अधिकार तथा हिस्सेदारी
   - सामाजिक सुधार
   - निजी कानूनों में सुधार; आदि

6. स्वतंत्रता पूर्व के महिला आन्दोलन में सावित्री बाई फुले और ज्योति बा फुले को किस रूप में याद किया जाता है?

   स्वतंत्रता पूर्व के महिला आन्दोलन में महिला शिक्षा के विकास में सावित्री बाई फुले का नाम अग्रणी रूप में याद किया जाता है। सावित्री बाई फुले देश की पहली महिला अध्यापिका व नारी मुक्ति आन्दोलन की पहली नेता थीं जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में ब्राह्मणवाद को सीधी चुनौती देने का साहस किया। उनके पति महान समाज सुधारक ज्योतिबा फुले थे जिन्होंने सती-प्रथा, छुआ-छूत, बाल-विवाह आदि कुरीतियों का विरोध किया तथा महिला शिक्षा और विधवा-विवाह का समर्थन किया।

7. दिल्ली की प्रथम महिला महापौर कौन चुनी गई?

अरुणा आसफ अली का दिल्ली में 4958 में प्रथम महापौर चुना गया।

8. भारत की प्रथम महिला प्रधानमन्त्री कौन थी?
   स्व.इंदिरा गाँधी भारत की प्रथम महिला प्रधानमन्त्री थीं।
9. भारतीय सविंधान सभा के निर्माण में कितनी और कौन महिलायें चुनी गई?
   1946 में भारत की सविंधान सभा के निर्माण के समय 14 महिलाओं को सदस्य रूप में शामिल किया गया था। जिसमें अम्मू स्वामीनाथन, द्क्ष्यानी वेलायुद्धं,दुर्गाबाई देशमुख, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, मालती चौधरी,हंसामेहता,पूर्णिमाबनर्जी,कमला चौधरी, बेगम अज़ीज रसूल,सरोजनी नायडू, बेगम जहाँ नारा शाह नवाज़, बेगम इकरमुल्लाह और लीला राय जी थीं।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपा जोशी,भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली।
2. उत्पल कुमार, सेक्स और सोशल जस्टिस,शब्द संधान, नई दिल्ली।
3. मधु राठौर, पंचायती राज और महिला विकास,पॉइंटर पब्लिकेशन,जयपुर, राजस्थान,।
4. स्टेटिस्टिक्स ओं वीमेन इन इंडिया 2010, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ पब्लिक कोऑपरेशन एंड चाइल्ड डेवलपमेंट, न्यू दिल्ली।
5. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं, रावत पुब्लिकातियो,जयपुर,
6. शुभ्रा परमार,नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार,ओरियंट ब्लैक्स्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
7. सत्या एम राय(सम्पादक),भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद , हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली।
8. अपर्णा बासु, मृदुला साराभाई:रेबेल विथ अ कॉज,ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
9. मनमोहन कौर, रोल ऑफ़ वीमेन इन द फ्रीडम मूवमेंट, 1857-1947, स्टर्लिंग, नई दिल्ली।

1.11निबंधात्मक प्रश्न

1. आप स्वतंत्रता पूर्व के पुरुष सुधारवादियों के योगदान को भारतीय महिला आन्दोलन में किस रूप में रखते हो?
2. स्वतंत्रता पूर्व के महिला आन्दोलन पर समग्र रूप से अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महिलाओं की उपस्थिति पर आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए

4. स्वतंत्रता उपरान्त महिलाओं की समानता के संघर्ष को आप किस रूप में देखते हो? विस्तार से विचार व्यक्त कीजिए।
5. आज़ादी के बाद के महिला आन्दोलन की बदली प्राथमिकता की समीक्षा कीजिए।
6. भारतीय महिला आन्दोलन की समग्र स्थिति पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
7. स्वतंत्रता पूर्व और उपरान्त के महिला आन्दोलन की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

इकाई 2- समकालीन परिदृश्य : समाज में व्याप्त जेंडर आधारित भेदभाव का सामना; लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा और उनका सर्वांगीण विकास

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संवैधानिक प्रावधान
2.4 लड़कियों की शिक्षा, जेंडर आधारित भेदभाव का सामना और महिलाओं का सर्वांगीण विकास: नीतियाँ, आयोग एवं समितियां
 2.4.1 नीतिगत प्रावधान एवं सुझाव
 2.4.2 आयोग और उनके सुझाव
 2.4.3 समितियाँ और उनके सुझाव
 2.4.4 राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति (1928)
2.5 लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा : योजनाएं एवं कार्यक्रम
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई के तहत समाज में व्याप्त जेंडर आधारित भेदभावों और लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा तथा उनके सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए इस दिशा में किए गए संवैधानिक प्रावधानों, विभिन्न नीतियों, आयोगों और समितियों द्वारा पहचाने गए मुद्दों व सुझाए गए उपायों की चर्चा की जा रही है।

भारतीय समाज में लम्बे समय से जेंडर आधारित भेदभाव रहे हैं और इस कारण लड़कियों की स्थिति निम्न दर्जे की रही है। इसका परिणाम है कि भारतीय संविधान में समानता के सिद्धांत को शामिल किया गया और राज्य व केंद्र सरकारों द्वारा जेंडर विभेदीकरण का सामना करने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम व योजनाएं चलाई जा रही हैं।

समय-समय पर बनी समितियों व आयोगों ने भी विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे जेंडर विभेदीकरण की ओर ध्यान दिलाया व उसके उन्मूलन के लिए सुझाव रखे। इस बात की महत्ता को स्वीकारा जा रहा है कि यदि महिलाओं व लड़कियों की शिक्षा को सही दिशा नहीं मिलेगी और समाज में व्याप्त जेंडर विभेदीकरण का सामना नहीं किया जाएगा तब तक उनका सर्वांगीण विकास नहीं होगा।

यह ध्यान रखना होगा कि जेंडर विभेदीकरण का मुद्दा केवल लड़कियों व महिलाओं से ही सम्बंधित नहीं है। इसमें स्त्री, पुरुष के अलावा अन्य जेंडर भी शामिल हैं। 'जेंडर' लोगों से सम्बंधित मुद्दा है। इस इकाई में अध्ययन का विषय समाज में व्याप्त जेंडर आधारित भेदभावों को लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा के सन्दर्भ में देखना है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

1. लड़कियों महिलाओं की शिक्षा एवं जेंडर आधारित भेदभाव के समकालीन परिदृश्य से परिचित हो सकेंगे।
2. लड़कियों की शिक्षा एवं महिलाओं के प्रति भारतीय संविधान के दृष्टिकोण से अवगत हो सकेंगे।
3. विभिन्न नीतियों, आयोगों एवं समितियों ने जेंडर आधारित भेदभावों का सामना करने एवं लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा हेतु जिन महत्वपूर्ण मुद्दों को पहचाना और सुझाव दिए उन्हें जान सकेंगे।
4. विभिन्न स्तरों पर लड़कियों की शिक्षाएवं महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिए चलाये जा रहे कार्यक्रमों व योजनाओं से परिचित हो सकेंगे।
5. जेंडर आधारित भेदभावों को पहचान पाएंगे और महिलाओं के सर्वांगींण विकास की आवश्यकता के प्रति सजग एवं संवेदनशील हो सकेंगे।

2.3 संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान समानता के सिद्धांत (संविधान की प्रस्तावना और भाग- III में समानता का सिद्धांत) की बात करता है जिसके आधार पर महिलाओं को लिंग (सेक्स) के आधार पर होने वाले किसी भी भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा हासिल है। इस प्रकार संविधान में वर्णित सभी अधिकार और स्वतंत्रताएं जितनी पुरुषों पर लागू होती हैं महिलाओं पर भी होती हैं।

सर्वप्रथम भारतीय संविधान यह सुनिश्चित करता है कि महिला एवं पुरुष दोनों के साथ समान बर्ताव किया जाए। अनुच्छेद 14 – राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता व कानून के तहत समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकता, अनुच्छेद 15 (1) कहता है कि राज्य को किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल,

जाति, लिंग या जन्म के स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। अनुच्छेद 16 (1) एवं (2) - सामान्य तौर पर भेदभाव को रोकता है और व्यवसाय में तथा राज्य के अधीन काम करने वाले लोगों के बीच लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को रोकता है।

दूसरा, संविधान मानता है कि कुछ मामलों में महिलाओं के साथ सही बर्ताव नहीं हुआ है ,उन्हें समान दर्जा नहीं मिला है और उन्हें निम्न दर्जे पर रखा गया। इस अन्याय को समाप्त करने और समानता को सुरक्षित करने के लिए संविधान राज्य को महिलाओं के पक्ष में कुछ विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है जैसा कि अनुच्छेद 15 (3) कहता है कि "राज्य महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।"

इस प्रावधान को ध्यान में रखते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ पदों को महिलाओं के लिए आरक्षित करने को वैध माना है . इसी तरह , महिला कॉलेजों में कुछ पदों पर महिलाओं के लिए प्राथमिकता रखना अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 16 का उल्लंघन नहीं माना जायेगा .

इसी प्रावधान के मद्देनजर अनुच्छेद 243 D और 243 T पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए 33% सीटों को आरक्षित करने की बात करता है।

तीसरा , संविधान राज्य को यह दायित्व देता है कि वह समाज के कमजोर तबके की स्तिथि में सुधार लाने हेतु विशेष प्रयास करे जिसमें महिलाएं भी शामिल होंगी .चौथा, संविधान राज्य को यह भी अनुमति देता है कि वह महिलाओं के शोषण को रोकने के लिए कदम उठा सके .

पहली दो बातें मूलभूत अधिकारों के तहत कही गयी हैं और तीसरी व चौथी बात राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में कही गयी हैं जिन्हें देखने का दायित्व राज्य का है .

अनुच्छेद 21(A)- संविधान के 86 वें संशोधन एक्ट, 2002 के तहत एवं अनुच्छेद 21(A) के अनुसार 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने मूलभूत अधिकार है.

इस प्रकार शिक्षा न केवल किसी एक का प्राधिकार है न ही किसी के द्वारा की जा रही कृपा बल्कि यह एक मूलभूत अधिकार है और प्रत्येक लड़की व महिला भी इसकी हकदार.

मूलभूत अधिकारों के अलावा राज्य के निति निर्देशक सिद्धांतों में भी महिलाओं के लिए कुछ प्रासंगिक प्रावधान किए गए हैं जैसे कि:

अनुच्छेद 39 (डी) - पुरुष और महिला दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन

अनुच्छेद 51 A (e) – देश के नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे किसी भी ऐसे प्रचलित व्यवहार को जो महिलाओं के सम्मान के लिए अपमानजनक हो उसे हतोत्साहित करे, उसकी निंदा करे .

2.4 लड़कियों की शिक्षा, जेंडर आधारित भेदभाव का सामना और महिलाओं का सर्वांगीण विकास: नीतियाँ, आयोग एवं समितियां

समाज में व्याप्त जेंडर आधारित भेदभाव को देखते हुए लड़कियों व महिलाओं के सर्वांगीण विकास में बाधा उत्पन्न न हो और उन्हें भी सामान अवसर मिलें इसके लिए कई नीतियाँ बनाई जाती रही हैं। विभिन्न आयोगों ने अपने प्रतिवेदनों और रिपोर्ट्स में लड़कियों की शिक्षा की बात करते समय जेंडर आधारित भेदभाव को संबोधित किया गया है। इसके साथ ही कई समितियों को भी इन मुद्दों पर कार्य करने के लिए विशेष रूप से गठित किया जाता रहा है जिन्होंने अपनी रिपोर्ट्स में लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा और उनके साथ होने वाले भेदभाव को ध्यान में रखते हुए कई सुझाव रखे हैं। यहाँ इन्हीं नीतियों, आयोगों और समितियों की चर्चा की जा रही है:

2.4.1. नीतिगत प्रावधान एवं सुझाव:

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन (1992) और राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001), लड़कियों की शिक्षा और जेंडर आधारित भेदभावों की बात करने वाले बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज़ कहे जा सकते हैं .

1. **महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा :1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति**

   राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) का कहना था कि "लड़कियों की शिक्षा पर बल केवल सामाजिक न्याय के कारण नहीं बल्कि इसलिए देना होगा क्योंकि यह सामाजिक रूपांतरण को गति प्रदान करता है।"

   इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का बिंदु 4.2 महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा की बात करते हुए कहता है कि शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जायेगा. अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को ख़त्म करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा. राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था ऐसे प्रभावी दखल करेगी जिनसे महिलाएं, जो अब तक अबला समझी जाती रहीं हैं, समर्थ और सशक्त हों. नए मूल्यों की स्थापना के लिए शिक्षण संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से पाठ्यक्रमों तथा पठन-पाठन सामग्री

की पुनर्रचना की जायेगी तथा अध्यापकों व प्रशाश्कों का पुनःप्रशिक्षण किया जाएगा. इस काम को सामाजिक पुनर्रचना का अभिन्न अंग मानते हेइसे पूर्ण कृतसंकल्प होकर किया जाएगा. महिलाओं से सम्बंधित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यचर्याओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जायेगा और शिक्षा संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया जायेगा.

इसी नीति का बिंदु 4.3. महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रुकावटों को दूर करने को जिनके कारण लड़कियां प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जाएगी. इस काम के लिए विशेष व्यवस्थाएं की जाएंगी, समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए जायेंगे और उनके क्रियान्वयन पर कड़ी निगाह रखी जाएगी. विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर ख़ास ज़ोर दिया जाएगा. लड़के और लड़कियों में किसी प्रकार का भेदभाव न बरतने की निति पर पूरा ज़ोर देकर अमल किया जाएगा ताकि तकनिकी तथा व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में पारंपरिक रवैयों के कारण चले आ रहे लिंगमूलक विभाजन (सेक्स स्टीरियोटाइपिंग) को खत्म किया जा सके तथा गैर-परम्परागत आधुनिक काम-धंधों में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ सके. इसी प्रकार मौजूदा और नई प्रोद्योगिकी में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जायेगी.

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति ,1986, पृष्ठ सं. – 4,5)

2. **प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन (1992)**

   प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन (1992) ने महिला सशक्तिकरण के लिए जिन प्रयासों की बात की उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

- महिलाओं का आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास बढ़ाना.
- राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं के योगदानों को पहचान कर उनकी सकारात्मक छवि बनाना.
- आलोचनात्मक नज़रिए का विकास करना.
- निर्णय लेने की क्षमता और एक साथ आकर कार्य करने को बढ़ावा देना.
- शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य विशेषकर प्रजनन सम्बन्धी स्वास्थ्य के क्षेत्र में सचेत होकर विकल्पों को चुनने की क्षमता का विकास.
- विकासात्मक प्रक्रियाओं में महिलाओं की समान भागीदारी को सुनिश्चित करना.

- आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए सूचना, ज्ञान और कौशल प्रदान करना.
- यह ध्यान में रखते हुए कि लड़कियों व महिलाओं की सभी क्षेत्रों में बराबर भागीदारी हो कानूनी साक्षरता तक उनकी पहुँच बनाना, उनके अधिकारों से सम्बंधित सूचना प्राप्त करना तथा समाज में जिन अधिकारों की वे हकदार हैं उन्हें दिलाना.

  (स्रोत: प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन(1992) पृष्ठ सं.-2)

3. **राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति (2001):** लड़कियों की शिक्षा और महिलाओं के सशक्तिकरण की बात राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति (2001) ने भी उठाई. इस नीति का कहना है कि-
   - एक ओर संविधान, विधानों, नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों और सम्बन्ध तंत्रों में प्रतिपादित लक्ष्यों तथा दूसरी ओरभारत में महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में परिस्थितिजन्य वास्तविकता के बीच अभी भी बहुत बड़ाअंतर है। भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रिपोर्ट "समानता की ओर", 1974 में इसका विस्तृत रूप विश्लेषण किया गया है। (बिंदु 1.7)
   - जेंडर सम्बन्धी असमानता कई रूपों में उभरकर सामने आती है, जिसमे से सबसे प्रमुख विगत कुछ दशकों में जनसंख्या में महिलाओं के अनुपात में गिरावट की रुझान है। सामाजिक रुढ़िवादी सोच और घरेलु तथा समाज के स्तर पर हिंसा इसके कुछ अन्य रूप हैं। बालिकाओं, किशोरियों तथा महिलाओं के प्रति भेदभाव भारत के अनेक भागों में जारी है। (बिंदु 1.8)
   - महिलाओं और लड़कियों के लिए शिक्षा तक सामान पहुँच को सुनिश्चित किया जाएगा। भेदभाव मिटाने, शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाने, निरक्षरता को दूर करने, लिंग संवेदी शिक्षा पद्धति बनाने, लड़कियों के नामांकन और अवधारण की दरों में वृद्धि करने तथा महिलाओं द्वारा रोजगार/व्यवसायिक/ तकनिकी कौशलों के साथ-साथ जीवन पर्यंत शिक्षण को सुलभ बनाने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए विशेष उपाय किए जाएंगे। माध्यमिक और उच्च शिक्षा में लिंग भेद को कम करने की ओर ध्यानाकर्षित किया जाएगा। लड़कियों और महिलाओं, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों / अनुसूचित जनजातियों/अन्य पिछड़ा वर्गों/ अल्पसंख्यकों समेत कमजोर वर्गों की लड़कियों और महिलाओं पर विशेष ध्यानाकर्षित करते हुए मौजूदा नीतियों में समय सम्बन्धी सेक्टोरल लक्ष्यों को प्राप्त किया जाएगा । लिंग भेद के मुख्य कारणों में से एक के रूप मेंलैंगिक

रूढ़िबद्धता का समाधान करने के लिए शिक्षा पद्धति के सभी स्तरों पर लिंग संवेदी कार्यक्रम विकसित किए जाएंगे। (महिलाओं का सामाजिक सशक्तीकरण, बिंदु: शिक्षा 6.1)

2.4.2आयोग और उनके सुझाव

स्वतंत्रता के बाद लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए कई आयोगों और समितियों ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया। लड़कियों की शिक्षा के रास्ते में बाधक कारकों को पहचान कर इनके निवारण के लिए कई सुझाव भी दिए। विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग (1948-49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53), श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख कमेटी(1958-59), श्रीमती हंसा मेहता कमेटी(1962), भक्तवत्सलम कमेटी (1963), कोठारी कमीशन/ शिक्षा आयोग (1964-66) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986),आदि ने अपनी संस्तुतियां दीं। यहाँ पहले विभिन्न आयोगों के प्रतिवेदनों व रिपोर्ट्स की चर्चा की जा रही है। इसके बाद कमेटियों की रिपोर्ट्स की चर्चा की जाएगी।

1. **विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49):** डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित इस आयोग ने लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा के महत्व पर जोर दिया। इस आयोग का विचार था कि लोगों की राय ऐसी मालूम होती है कि 13 या 14 वर्ष की आयु से लगभग 18 वर्ष की आयु तक लड़के- लड़कियों के विद्यालय अलग-अलग हों। आयोग ने अनुभव किया कि यह स्पष्ट नहीं होता कि इस विचारधारा का आधार रीति –रिवाज़ हैं या अनुभव। आयोग की सिफारिशों के अनुसार-

- कॉलेज में प्रवेश की आयु लगभग 18 वर्ष हो। अतः कॉलेज में सहशिक्षा हो सकती है जैसा कि आज तक मेडिकल कॉलेज में है। इस स्तर पर अलग कॉलेजों के बनाने में अनावश्यक रूप में व्यय की वृद्धि होगी। .... लड़कियों के अलग कॉलेजों में साधारणतया हीन उपकरण, अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले अध्यापक और
अनुपयुक्त विद्यालय भवन होते हैं। यथासंभव कॉलेज स्तर पर सहशिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाए।
- महिलाओं को पुरुषों के सामान शैक्षिक अवसर प्राप्त होने चाहिए।
- ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि महिलाओं को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा प्राप्त हो ताकि वे अच्छी माता और अच्छी गृहणी बन सकें।
- स्त्रियों की शिक्षा में गृह- अर्थशास्त्र और गृह- प्रबंध का समुचित शिक्षा व्यवस्था में प्रावधान अवश्य हो, उन्हें इन विषयों के लिए अधिक प्रेरित किया जाए।

2. **माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) :** डॉए. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में बने इस कमीशन को मुदालियर कमीशन के नाम से भी जाना जाता है। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में महिलाओं की शिक्षा की बात करते हुए संविधान के अनुच्छेद 16(a) का हवाला दिया और कहा कि- शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में 'सेक्स' के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता इसलिए शिक्षा के सभी क्षेत्रों में लड़कियों की भागीदारी होनी चाहिए। एक लोकतांत्रिक समाज में लड़के और लड़कियों दोनों की शिक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
3. **कोठारी कमीशन/ शिक्षा आयोग (1964-66) :** भारत सरकार द्वारा 14 जुलाई, 1964 को पारित प्रस्ताव के अनुसार एक कमीशन नियुक्त करने की घोषणा की गई और इसलिए शिक्षा आयोग का गठन सभी स्तरों पर तथा सभी पहलुओं पर शिक्षा के विकास के लिए एवं शिक्षा की राष्ट्रीय पद्धति एवं सामान्य सिद्धांतों और नीतियों के निर्धारण से सम्बंधित प्रश्नों पर सरकार को परामर्श देने के लिए किया गया। इसे कोठारी कमीशन के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसके अध्यक्ष प्रो. दौलतसिंह कोठारी थे। इस आयोग ने लड़कियों व स्त्रियों की शिक्षा के लिए जो सिफारिशें कीं वो इस प्रकार हैं:

   आयोग ने इससे पहले की विभिन्न समितियों की सिफारिशों का अनुमोदन इन शब्दों में किया -

स्त्रियों की शिक्षा की समस्या पर हाल के वर्षों में अनेक समितियों ने विचार किया है : श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति ; श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में लड़कों और लड़कियों की पाठ्यचर्याओं के विभेदीकरण के लिए नियुक्त समिति और श्री एम. भक्तवत्सलम की अध्यक्षता में नियुक्त समिति, जिसने कम विकसित लडकियों की शिक्षा वाले छ: राज्यों में समस्या का अध्ययन किया। हम इन समितियों की सिफारिशों का पूर्ण अनुमोदन करते हैं। (बिंदु 6.55.)

इसके बाद आयोग अपने प्रतिवेदन के (बिंदु 6.56.) में कहता है कि- हमारी सम्मति में लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के विकास के लिए दो प्रकार की नीति अपनानी पड़ेगी। पहली यह कि, राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति द्वारा सिफारिश किए गए 'विशेष' कार्यक्रमों पर बल दिया जाए; और दूसरी यह कि सभी स्तरों पर और सभी क्षेत्रों में शिक्षा के सुधार और विस्तार के सामान्य कार्यक्रमों के अभिन्न अंग के रूप में लड़कियों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाए। पहली नीति के बारे में हमारी सिफारिश है कि, जैसा कि राष्ट्रीय समिति ने कहा है, निम्न ढंग से कार्यवाही की जाए:

i. अगले कुछ वर्षों तक स्त्रियों की शिक्षाक को शिक्षा का एक मुख्य कार्यक्रम मन जाए और उसमे आने वाली कठिनाईयों का सामना करने और पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा के बीच के अंतर को यथसंभव कम से ऍम समय में दूर करने के लिए साहस और दृढ़ता के साथ प्रयत्न किया जाए।
ii. इस प्रयोजन के लिए विशेष योजनाएं बनाई जाएं और उनके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था प्राथमिकता के आधार पर की जाए। और
iii. केंद्र और राज्यों, दोनों में, लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा की देखभाल के लिए एक विशेष संगठन स्थापित किया जाए। यह संगठन सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्तियों को स्त्रियों की शिक्षा के कार्यक्रमों के आयोजन और क्रियान्वयन के लिए एक जगह लाए।

(बिंदु 6.57.) घर की चहारदीवारी के बाहर स्त्रियों का कार्य आज देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है और आगामी वर्षों में वह और बड़ा आकार धारण कर लेगा जिसका प्रभाव अधिकतर स्त्रियों पर पड़ने लगेगा। इसलिए यह आवश्यक होगा कि स्त्रियों को प्रशिक्षण और रोजगार देने की समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाए।

i. अंशकालिक रोजगार के अवसर जिनसे स्त्रियाँ अपने घरों की देखभाल भी कर सकें और बाहर जीवन के लिए कोई पेशा भी अपना सकें, बड़े पैमाने पर बढाने होंगें।
ii. साथ ही पूर्णकालिक रोजगार के अवसर भी बढ़ाने पड़ेंगे।

अब उन समितियों की रिपोर्ट्स और संस्तुतियों को देखते हैं जिन्हें लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा और उनके सशक्तीकरण के लिए सुझाव देने के लिए गठित किया गया था।

2.4.3 समितियाँ और उनके सुझाव

1. **राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति (1958) :** भारत सरकार द्वारा स्त्री-शिक्षा पर विचार करने के लिए श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति का कार्य स्त्री-शिक्षा के प्राथमिक और माध्यमिक क्षेत्रों में सुझाव देना था। प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं का काफी अभाव था। सन् 1959 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते वक़्त इस समिति ने निम्नलिखित सुझावों को रखा-

- कुछ समय के लिए लड़कियों की शिक्षा को विशिष्ट समस्या के रूप में स्वीकार किया जाए, आने वाले वर्षों में उचित धन की व्यवस्था की जाए ताकि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए अधिक शिक्षा सुविधाएं प्रदान की जा सकें।
- केन्द्रीय स्तर पर "राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद्" की स्थापना की जाए और सम्बंधित कार्यक्रमों के लिए विशिष्ट इकाईयां बनायीं जाएं।
- प्रत्येक राज्य में " राज्य महिला शिक्षा परिषद् हो" और लड़कियों की शिक्षा के लिए पृथक निदेशालय हो। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर 1959 में राष्ट्रीय महिला परिषद् की स्थापना की गई और शिक्षा मंत्रालय में स्त्री शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए पृथक इकाई भी नियुक्त की गई थी।

2. **हंसा मेहता समिति(1962) :** लड़के-लड़कियों के पृथक पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं संभावना पर विचार करने के लिए श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति ने काफी विचार-विमर्श के पश्चात यह तय किया कि- हम जिस गणतांत्रिक और समाजवादी ढंग के समाज की कल्पना करते हैं उसमे शिक्षा का रूप वैयक्तिक योग्यता, भाव और अभिरूचियों पर निर्भर होगा, जिनका लिंग से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए ऐसे समाज में शिक्षा पाठ्यक्रम में लिंग के आधार पर भेदभाव करना आवश्यक नहीं है। पर इसके साथ ही समिति ने यह भी स्वीकार किया कि इस प्रकार के समाज के निर्माण में अभी काफी देर लगेगी इस संक्रांति-काल में हमें लड़के-लड़कियों के बीच मनोवैज्ञानिक भिन्नताएं और समाज की व्यवहारिक भिन्नता को मानना होगा और इसे ही लड़के-लड़कियों के लिए पाठ्यक्रम बनाने के लिए व्यवहारिक आधार मानना होगा। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए की वे मान्यताएं और भावनाएं उत्पन्न हों, जो आगे आवश्यक हैं और ऐसा कोई भी कार्य न किया जाए जिससे वर्तमान समय के जेंडर भेदभावों में वृद्धि हो। इस समिति का कहना था कि- यदि नए आधार के समाज का निर्माण करना है तो स्त्रियों को वास्तविक और प्रभावपूर्ण ढंग से पुरुषों के सामान अवसर देने होंगें।
3. **भक्तवत्सलम समिति (1963):** राष्ट्रीय स्त्री-शिक्षा परिषद् ने मद्रास राज्य के मुख्यमंत्री श्री भक्तवत्सलम की अध्यक्षता में 1963 में समिति को नियुक्त किया जिसने लड़कियों की शिक्षा के सम्बन्ध में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जनता के सहयोग के अभाव के कारणों की जांच की तथा निम्नलिखित सिफारिशें की:

- विवाहित स्त्रियों को कम से कम पार्ट-टाइम अध्यापिकाओं और स्कूल मदर्स के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देने के लिए तथा लड़कियों की शिक्षा के प्रति विरोध भावना को समाप्त करने के लिए पर्याप्त प्रचार करने में जनता के सहयोग की मांग की।

- प्रचार कार्यक्रमों जैसे कि रेडियो द्वारा वार्तालाप, श्रव्य- दृश्य साधनों और पात्र-पत्रिकाओं के प्रोयग द्वारा राज्य सरकारें स्त्री- शिक्षा के प्रति जनमत बनाएं।
- राज्य सरकारों का यह लक्ष्य होना चाहिए कि सभी प्राथमिक स्कूलों में अध्यापिकाएं नियुक्त की जाएँ और सह-शिक्षा वाले स्कूलों में भी अधिक से अधिक अध्यापिकाएं नियुक्त की जाएं। अधिक अध्यिपकाओं की नियुक्ति से सह-शिक्षा वाले स्क्कूलों में बच्चों को भेजने के लिए अभिभावकों को प्रोत्साहन मिलेगा।

4. **"समानता की ओर": महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति (1971-74) की रिपोर्ट :**इस समिति का कहना है कि देश में होते आर्थिक और सामाजिक बदलावों ने महिला सुधार से जुड़ी नई चुनौतियों/ समस्याओं को पेश किया। भारतीय सरकार को इस कारण महिलाओं के अधिकार एवं हैसियत से जुड़े प्रश्नों की विस्तृत पड़ताल की आवश्यकता हुई जो सामाजिक नीतियां विशेषकर शिक्षा नीतियों में सहायक दिशा- निर्देश दें सकें। इस उद्देश्य के साथ शिक्षा एवं सामाजिक कल्याण मंत्रालय, भारतीय सरकार ने सितम्बर 22,1971 को इस समिति का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट "समानता की ओर" (Towards Equality) शीर्षक से दिसम्बर 1974 में पेश की। समिति के मोटे तौर पर निम्नलिखित तीन आयाम और उद्देश्य इस प्रकार थे:

- महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनकी शिक्षा और रोजगार पर संवैधानिक, कानूनी और प्रशासनिक प्रावधानों के असर की जांच-पड़ताल करना। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में पिछले दो दशकों में महिलाओं की स्थिति के सन्दर्भ में इन प्रावधानों की प्रभाविकता को आँकना जिससे कि और अधिक प्रभावी कार्यक्रम सुझाए जा सकें।
- महिलाओं की स्थिति को बदलते हुए सामाजिक प्रतिरूपों के संदर्भ में देखना।
- क़ानून, शिक्षा, रोजगार, जनसंख्या, नीतियों आदि के क्षेत्र में उन कारकों को निर्धारित करना जो इन क्षेत्रों में महिलाओं की धीमी प्रगति के लिए उत्तरदायी हैं और इन कारकों के निवारण हेतु उपाय सुझाना जिससे कि महिलाएं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अपनी उपुक्त और पूरी भूमिका निभा सकें। (बिंदु : 1.01: पृष्ठ सं.- 1)

समिति ने महिलाओं की शिक्षा व समाज में व्याप्त जेंडर आधारित भेदभावों पर विस्तार से चर्चा की है और उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कई सिफारिशें भी कीं जैसे कि समिति की रिपोर्ट का अध्याय VI शिक्षा पर चर्चा करते हुए शैक्षिक विकास सम्बन्धी सिफारिशों की बात करता है। इन सिफारिशों को मोटे

तौर पर इन दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है: 1) औपचारिक व्यवस्था सम्बन्धी सिफारिशें ; 2) अनौपचारिक व्यवस्था सम्बन्धी सिफारिशें।

औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के तहत जिन मुद्दों पर सिफारिशें की गई उनमे प्रमुख थे: सह-शिक्षा का विकास, लड़के तथा लड़कियों दोनों के लिए सामान पाठ्यचर्या का सुझाव, विद्यालय पूर्व शिक्षा की बात , 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा का सार्वभौमिकरण और मिडिल स्कूल से सेक्स एजुकेशन देने की बात आदि।

अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं की सामाजिक प्रभाविकता को बढ़ाने की बात की है जो कि एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया होगी। इसके तहत उन महिलाओं की शिक्षा को महत्त्व देने की बात की गई है जो अपनी उम्र, सामाजिक जिम्मेदारियों और साक्षरता की कमी के कारण औपचारिक व्यवस्था तक नहीं पहुँच पाई हैं।

कामकाजी महिलाओं की समस्याओं जिसमे रोजगार और पारिश्रमिक दिए जाने के तहत होने वाला भेदभाव भी शामिल है, जैसे मुद्दों पर भी इस रिपोर्ट में चर्चा की गई।

5. **लड़कियों की शिक्षा, समान स्कूल व्यवस्था और विशेष बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा(2005)-**
8 दिसम्बर, 2004 को असम के मुख्यमंत्री श्री तरुण गोगाई की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। एन. सी. ई. आर. टी. के निदेशक प्रो. कृष्ण कुमार समिति के सचिव-सदस्य थे। कुल 15 सदस्यों की इस समिति ने जिन मुद्दों पर काम किया उनमें से एक मुद्दा लड़कियों की शिक्षा भी रही । इस समिति का एक उद्देश्य, लिंग आधारित भेदभाव को कम करने वाली विशेष नीतियों और तात्कालिक प्रावधानों का परीक्षण करना एवं शिक्षा के सभी क्षेत्रों में लड़कियों व महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना था। लड़कियों की शिक्षा के सन्दर्भ में समिति की कुछ महत्वपूर्ण बाते इस प्रकार हैं:

महिलाओं को दी जाने वाली शिक्षा के प्रति अपनाए जाने वाले यांत्रिक दृष्टिकोण का जोरदार तरीके से विरोध करने की जरुरत है जिसके तहत यह समझा जाता है कि जन्मदर को नियंत्रित करने, बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, सेवाओं में होने वाले कम खर्चे तथा गिरती हुई शिशु मृत्युदर आदि के लिए ही महिलाओं को शिक्षित करने की जरुरत है। इस तरह के दृष्टिकोण का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से लड़कियों को दी जाने वाली शिक्षा के स्तर और उसके प्रकार पर असर पड़ रहा है और आज भी लड़कियों की शिक्षा जेंडर आधारित रूढ़िवादिता (gender-stereotyped) से ग्रसित है। अभी भी लड़कियों की शिक्षा के सन्दर्भ में उनके प्रदर्शन और शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी अर्थवान भागीदारी से ज्यादा जोर उनकी साक्षरता और अनौपचारिक-शिक्षा (जो कि प्रायः औसत दर्जे की ही होती है); तथा स्कूलों में उनके नामांकन तक

ही सिमित है। यह जरुरी है कि लड़कियों की शिक्षा के सन्दर्भ में लक्ष्य की प्राप्ति को केवल उनके नामांकन व उनके स्कूलों में रुक पाने (retention) तक ही सिमित करके न देखा जाए बल्कि सभी विषयों और सभी स्तरों पर भी उनकी उपलब्धि एवं प्रदर्शन को देखा जाए। साथ ही इस बात को समझने की सख्त जरुरत है कि लड़कियों के लिए शिक्षा को प्रारंभिक स्तर से ऊपर भी सुनिश्चित किया जाए, इसे समर्थन दिया जाए। समिति ने महसूस किया कि सभी को एक हद तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की संवैधानिक प्रतिबद्धता पर जोर दिए जाने की जरुरत है। इस तरह लड़कियों की शिक्षा के लिए अच्छी गुणवत्तापूर्ण नियमित स्कूलिंग (रेगुलर स्कूलिंग) के स्थान पर वैकल्पिक स्कूलिंग के किसी भी तरह के विकल्प को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

केंद्र व राज्य सरकारें भी समय-समय पर कई योजनाएं व कार्यक्रम लेकर आती हैं जिनके माध्यम से वे लड़कियों व महिलाओं के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास करने का प्रयास करती हैं, यहाँ उनमे से कुछ योजनाओं व कार्यक्रमों का उल्लेख किया जा रहा है।

2.5 लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा : योजनाएं एवं कार्यक्रम

i. **महिला समाख्या -**महिला समाख्या योजना ग्रामीण क्षेत्रों खासकर सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों की महिलाओं की शिक्षा तथा उनके सशक्तिकरण के लिए 1989 में शुरू की गई। राष्ट्रिय शिक्षा नीति, 1986 के उद्देश्यों के अनुरूप लक्ष्य हासिल करने के लिए एक ठोस कार्यक्रम के रूप में इसकी शुरूआत हुई। समानता हासिल करने व महिलाओं को शिक्षित बनाने में इस योजना को महत्वपूर्ण मन जा सकता है। महिला संघ, गांव स्तर पर महिलाओं के मिलने, सवाल करने और अपने विचार रखने तथा अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करने के अलावा अपनी इच्छाओं को जाहिर करने का स्थान मुहैया कराते हैं। महिला संघों ने ग्रामीण महिलाओं के दृष्टिकोण में विभिन्न कार्यक्रमों और जागरूकता अभियानों के माध्यम से बदलाव किया है जिसका प्रभाव अब घर, परिवार में, सामुदायिक तथा ब्लॉक और पंचायत स्तर पर देखा जा सकता है। कार्यक्रम में बच्चों खासकर लड़कियों की शिक्षा की आवश्यकता पर जागरूकता पैदा करने पर भी ध्यान केंद्रित हुआ है जिससे कि लड़कियों को भी बराबर का दर्जा और अवसर मिल सके। इसके परिणाम स्कूलों में लड़कियों के नामांकन में वृद्धि और स्कूल न छोड़ने के रूप में सामने आए हैं।महिला समाख्या योजना आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, झारखंड, कर्नाटक, केरल, गुजरात, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ आदि कई राज्यों में चल रही है।

उत्तराखंड में महिला समाख्या कार्यक्रम ने अपने परियोजना क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से महिलाओं को जुटाया है। महिला संघ यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं कि लड़कियों को उनकी पात्रता मिले और शिक्षा में सामान रूप से उनकी भागीदारी हो।

ii. **कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना:** भारत सरकार द्वारा 2004 में अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के लिए सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का शुभारंभ किया गया था। कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत प्रथम दो वर्ष तक एक अलग योजना के रूप में सर्व शिक्षा अभियान, बालिकाओं के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दिलाने का राष्ट्रीय कार्यक्रम व महिला समाख्या योजना के साथ सामंजस्य बैठाते हुए शुरू की गई थी, लेकिन 1 अप्रैल, 2007 से इसे सर्व शिक्षा अभियान में एक अलग घटक के रूप में विलय कर दिया दिया।

यह योजना वर्ष 2004 से उन सभी पिछड़े क्षेत्रों में क्रियान्वित की जा रही है जहाँ ग्रामीण महिला साक्षरता का दर राष्ट्रीय स्तर (46.13 प्रतिशत) से कम हों और 2001 की जनगणना के अनुसार लिंग भेद राष्ट्रीय औसत- 21.59 से अधिक हों।

भारत सरकार ने देश के दूर-दराज क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जाति /जनजाति / पिछड़े वर्ग/अल्पसंख्यक समुदाय के बालिकाओं के लिए प्रारंभिक स्तर पर 750 आवासीय विद्यालय (ठहरने की सुविधा सहित) खोलने के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत की है। यह नई योजना, प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग के अंतर्गत चल रही योजनाएँ जैसे: सर्व शिक्षा अभियान, प्रारंभिक स्तर पर बालिका शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा महिला समाख्या के साथ मिलकर कार्य करेंगी।

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- विषम परिस्थितियों में जीवन-यापन करने वाली अभिवंचित वर्ग की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय के माध्यम से गुणवत्तायुक्त प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध करवाना ।
- माता-पिता/ अभिभावकों को उत्प्रेरित करना जिससे बालिकाओं को कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालय में भेजा जा सके ।
- मुख्य रूप से ऐसी बालिकाओं पर ध्यान देना जो विद्यालय से बाहर(आनामंकित) हैं तथा जिनकी उम्र 10 वर्ष से ऊपर है ।

- विशेषकर एक स्थान से दूसरे स्थान घूमने वाली जाती या समुदाय की बालिकाओं पर्विशेष ध्यान केन्द्रित करना।
- 75 % अनुसूचित जाति/ जनजाति/अत्यन्त पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदाय की बालिकाओं तथा 25% गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार की बच्चियों को कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालय में प्राथमिकता के आधार पर नामांकन कराना ।

iii. **गौरा देवी कन्याधन योजना :**गौरा देवी कन्याधन अनुदान योजना के अंतर्गत, उत्तराखंड राज्य में निवास कर रहे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एंव गरीबी रेखा से नीचे रह रहे समस्त परिवारों की ऐसी बालिकाओं को जिन्होंने राज्य में स्थित केंद्र सरकार/ राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त बोर्ड के अधीन किसी विद्यालय से इंटरमीडिएट कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण की हो, को रखा गया है। यह योजना इन लड़कियों को शिक्षित किए जाने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए चलाई जा रही है। इस योजना का संचालन वर्ष 2006-07 से किया गया है । योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र में वार्षिक आय रू.15976/- तथा शहरी क्षेत्रों में रू .21206/- वार्षिक आय वाले परिवारों की बालिकाओं को इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने पर यह लाभ दिया जाएगा। (यदि बी०पी०एल० श्रेणी के हों तो आय प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नही होगी ।)

iv. **बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना:** यह योजना 22 जनवरी 2015 को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य मंत्रालय और परिवार कल्याण मंत्रालय एवं मानव संसाधन विकास की एक संयुक्त पहल के रूप में समन्वित और अभिसरित प्रयासों के अंतर्गत बालिकाओं को संरक्षण देने और उन्हें सशक्त करने के लिए शुरू की गई। निम्न लिंग अनुपात वाले 100 जिलों में प्रारंभ किया गया । जिसे बढ़ाकर बाद में 161 जिले कर दिए गए हैं। योजना के उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- पक्षपाती लिंग चुनाव की प्रक्रिया का उन्मूलन
- बालिकाओं का अस्तित्व और सुरक्षा सुनिश्चित करना
- बालिकाओं की शिक्षा को सुनिश्चित करना

इसके दोहरे लक्ष्य में न केवल लिंग असमानता की दर में संतुलन लाना है बल्कि कन्याओं को शिक्षा दिलाना भी है। 100 करोड़ रूपए की शुसुआती राशि के साथ, इस योजना के जरिये महिलाओं के लिए कल्याणकारी सेवाओं के प्रति जागरूकता फैलाने का काम किया जा रहा । सरकार द्वारा लिंग समानता के कार्य को मुख्यधारा से जोड़ने के अतिरिक्त, स्कूली पाठ्यक्रमों में भी लिंग समानता से जुड़ा एक अध्याय रखा जाएगा। इसके आधार

पर विद्यार्थियों, अध्यापकों और समुदाय कन्या शिशु और महिलाओं की जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील बनेंगे और समाज का सौहार्दपूर्ण विकास होगा। (भारत,2016: 831-32)

योजना की रणनीतियों में बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक सामाजिक आन्दोलन और समान मूल्य को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियान का कार्यान्वय करना, इस मुद्दे को सार्वजनिक विमर्श का मुद्दा बनाना, निम्न लिंग अनुपात वाले जिलों की पहचान कर गहन और एकीकृत कार्यवाही करना आदि शामिल है।

v. **राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन:** विभिन्न मंत्रालयों और राज्य सरकारों की स्कीमों/कार्यक्रमों के सम्मिलन द्वारा महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक सशक्तिकरण के उद्देश्य से 8 मार्च, 2010 को यह नया कार्यक्रम शुरू किया गया। शीर्ष स्तर पर राष्ट्रीय मिशन प्राधिकरण नीतिगत दिशा-निर्देश करेगा, इसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगे और 13 मंत्री इसके सदस्य होंगे। इनकी सहायता के लिए केंद्रीय समिति और अंतर मंत्रालयी समन्वय समिति होंगी।

केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रीय महिला संसाधन केंद्र मिशन निदेशालय को तकनीकी सहायता देगा। यह केंद्र सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों और स्कीमों के संबंध में अनुसंधान और प्रभाव मूल्यांकन अध्ययन आयोजित करेगा, और विद्यमान संस्थाओं/संस्थानों के सम्पर्क में रहेगा। सरकारी स्कीमों और कार्यक्रमों पर प्रकाश डालने के लिए यह मीडिया रणनीतियां तैयार करने के साथ-साथ समाज में अभिशप्त सामाजिक कुरीतियों के बारे में जागरूकता कार्यक्रम भी तैयार करेगा। इसी तर्ज पर राज्य स्तर पर राज्य मिशन अधिकरण और राज्य महिला संसाधन केंद्र होंगे।

आन्ध्र प्रदेश, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, मिजोरम, बिहार, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, त्रिपुरा, राजस्थान, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब राज्य और संघ प्रदेश चंडीगढ़ प्रशासन ने राज्य मिशन अधिकरण की स्थापना की सूचना दी है। गुजरात और जम्मू-कश्मीर ने राज्य महिला केंद्र भी गठित किया है। राष्ट्रीय मिशन के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं-

- महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण
- महिलाओं के प्रति हिंसा को समाप्त करना
- स्वास्थ्य और शिक्षा पर विशेष जोर
- प्रतिभागी मंत्रालयों,संस्थानों और संगठनों के कार्यक्रमों, नीतियों, संस्थानिक व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं के जेन्डर मेनस्ट्रीमिंग कार्य की निगरानी।

vi. **सर्व शिक्षा अभियान :**सर्व शिक्षा अभियान का कार्यान्वयन वर्ष 2000-2001 से किया जा रहा है जिसका उद्देश्य सार्वभौमिक सुलभता एवं प्रतिधारण, प्रारंभिक शिक्षा में बालक-बालिका एवं सामाजिक श्रेणी के अंतरों को दूर करने तथा अधिगम की गुणवत्ता में सुधार हेतु विविध अंत:क्षेपों में अन्य बातों के साथ-साथ नए स्कूल खोला जाना तथा वैकल्पिक स्कूली सुविधाएं प्रदान करना, स्कूलों एवं अतिरिक्त कक्षा-कक्षों का निर्माण किया जाना, प्रसाधन-कक्ष एवं पेयजल सुविधा प्रदान करना, अध्यापकों का प्रावधान करना, नियमित अध्यापकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा अकादमिक संसाधन सहायता, नि:शुल्क पाठ्य-पुस्तकें एवं वर्दियां तथा अधिगम स्तरों/परिणामों में सुधार हेतु सहायता प्रदान करना शामिल है। सर्व शिक्षा अभियान जिला आधारित एक विशिष्ट विकेन्द्रित योजना है। इसके माध्यम से प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण करने की योजना है। इसके लिए स्कूल प्रणाली को सामुदायिक स्वामित्व में विकसित करने रणनीति अपनाकर कार्य किया जा रहा है। यह योजना पूरे देश में लागू की गई है और इसमें सभी प्रमुख सरकारी शैक्षिक पहल को शामिल किया गया है। इस अभियान के अंतर्गत राज्यों की भागीदारी से 6-14 आयुवर्ग के सभी बच्चों को 2010 तक प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था।
लड़कियों विशेषकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की लड़कियों की शिक्षा, सर्व शिक्षा अभियान का एक प्रमुख लक्ष्य होगा।

vii. **जेंडर बजटिंग पहल :** जेंडर बजटिंग महिलाओं को मुख्यधारा में लाने का लक्ष्य हासिल करने का सशक्त माध्यम है, ताकि विकास के लाभ पुरुषों के सामान ही महिलाओं तक भी पहुंचना सुनिश्चित हो सके। जेंडर बजटिंग लेखांकन का कार्य नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है, ताकि नीति/ कार्यक्रम निर्धारण, उसके कार्यन्वय और समीक्षा में महिलाओं सम्बन्धी परिपेक्ष्य निरंतर बना रह सके।
भारत में जेंडर बजटिंग को संस्थागत रूप देने के लिए वित्त मंत्रालय ने वर्ष 2005 में सभी मंत्रालयों/ विभागों में जेंडर बजटिंग प्रकोष्ठ का अनिवार्य रूप से गठन किये जाने आदेश दिया है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने जेंडर बजटिंग के लिए नोडल एजेंसी के रूप में इसे राष्ट्रीय और राज्य स्तरों तक ले जाने लिए कई उपाय किए हैं। मंत्रालय ने जिन क्षेत्रों में प्रमुख रूप से बल दिया है, उनमे सभी मंत्रालयों/ विभागों में जेंडर बजटिंग प्रकोष्ठ (जीबीसी) का गठन, आंतरिक एवं बाहरी क्षमताओं को सशक्त बनाना और जीबीसी में विशेषज्ञता स्थापित करना ताकि वे नीतियों/योजनाओं /कार्यक्रमों में महिलाओं को मुख्यधारा में लाने का दायित्व निभा सकें। (भारत 2016 :829-830).

viii. **उड़ान :** तकनीकी शिक्षा में छात्रों की कुल भर्ती की तुलना में लड़कियों के आइआइटी में शामिल होने की संख्या काफी कम है। इन प्रमुख तकनीकी शिक्षण संस्थानों की प्रवेश परीक्षा मात्र 10-12% लडकियां

ही उत्तीर्ण कर पाने में सफल होती हैं। इसके सबसे बड़े कारणों में से एक है कि लड़कियों के माता-पिता उन्हें प्रवेश परीक्षा की तैयारियों के लिए दूरस्थ स्थानों पर भेजना नहीं चाहते और साथ ही नजदीकी इलाको में गुणवत्तापूर्ण अध्ययन के अवसरों की कमी है। छात्राओं के लिए शैक्षणिक अवसरों को प्रोत्साहित करने के मकसद से सीबीएसई ने उड़ान कार्यक्रम शुरू किया है। इसे उन योग्य छात्राओं के लिए एक बड़ा मंच मुहैया कराने के लिए तैयार किया गया है जो इंजीनियरिंग में उच्च शिक्षा पाना चाहती हैं और इसका मकसद कक्षा 11 और 12 के दौरान छात्राओं को आइआइटी/ जीईई की तैयारी में मदद करना है। इस परियोजना का लक्ष्य इंजीनियरिंग कॉलेजों में लड़कियों के कम दाखिले की समस्या से निपटना है। (भारत 2016: 281)

2.6सारांश

अभी तक हमें लगभग प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में जेंडर आधारित भेदभाव दिख ही रहा है इसलिए अभी भी संविधान द्वारा तय किया गया 'समानता का लक्ष्य' कहाँ तक साध्य हो पाया है, यह अध्ययन व विश्लेषण का विषय है। इस बात पर जोर है कि समाज इन भेदभावों के प्रति संवेदनशील व चिंतनशील हो सके। लड़कियाँ व महिलाएँ भी स्वयं अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाने में सक्षम हो सकें और यह तभी संभव होगा जब उनकी पहुँच शिक्षा तक होगी और वे अपने खुद के अधिकारों के बारे में सजग होंगी। लड़कियों को शिक्षित करने की उपयोगिता को रूढ़ीबद्ध दायरों में ही रखकर देखते रहने के स्थान पर उनकी शिक्षा को असल में उनके बौद्धिक तौर पर स्वतंत्र होने से जोड़कर देखना होगा तभी असल मायनों में शिक्षा का लक्ष्य संवैधानिक लक्ष्यों से मिल पाएगा।

2.7 शब्दावली

1. **सेक्स और जेंडर :**'सेक्स' एक शारीरिक विशेषता है जैसे कि लिंग के आधार पर किसी को पुरुष कहा जा रहा है और योनि के आधार पर स्त्री लेकिन 'जेंडर' एक सामाजिक संरचना है। 'सेक्स' के आधार पर किसी के साथ कोई ख़ास सामाजिक स्थिति जोड़ देना 'जेंडर' है जैसे कि स्त्री या पुरुष मात्र होने के नाते समाज में एक स्थिति होना।
2. **जेंडर आधारित भेदभाव/ जेंडर विभेदीकरण** : किसी व्यक्ति विशेष के साथ उसके 'सेक्स'के आधार पर होने वाला भेदभाव/ ऐसी स्थिति जहाँ किसी को उसके 'सेक्स' के आधार पर दोयम दर्जे का माना जाए।

3. **सेक्स स्टीरियोटाइपिंग:** किसी के सेक्स के आधार पर उस पूरे समूह के बारे में कुछ विशेषताओं/ भूमिकाओं को उस समूह पर सामान्यीकृत कर देना, भले ही वे उस समूह के सभी लोगों पर लागू न होती हों।
4. **महिला सशक्तिकरण:** महिलाओं को निर्णय लेने की आज़ादी । महिलाएं जो करना चाहती हैं और जो वो खुद के साथ नहीं चाहती हैं, इसे नियंत्रित करने की स्वतंत्रता और शक्ति हासिल करने की प्रक्रिया। सभी स्तरों पर महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा कर उन्हें सशक्त बनाए की प्रक्रिया।

2.8 अभ्यास प्रश्नोंके उत्तर

प्रश्न- संविधान महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता कैसे सुनिश्चित करता है ?

उत्तर- भारतीय संविधान यह सुनिश्चित करता है कि महिला एवं पुरुष दोनों के साथ समान बर्ताव किया जाए । अनुच्छेद 14 – राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता व कानून के तहत समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकता।

प्रश्न- संविधान महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को कैसे रोकता है ?

उत्तर- अनुच्छेद 15 (1) कहता है कि राज्य को किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म के स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। अनुच्छेद 16 (1) एवं (2) - सामान्य तौर पर भेदभाव को रोकता है और व्यवसाय में तथा राज्य के अधीन काम करने वाले लोगों के बीच लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को रोकता है। दूसरा, समानता को सुरक्षित करने के लिए संविधान राज्य को महिलाओं के पक्ष में कुछ विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है जैसा कि अनुच्छेद 15 (3) कहता है कि "राज्य महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। "

प्रश्न - "शिक्षा न केवल किसी एक का प्राधिकार है, न ही किसी के द्वारा की जा रही कृपा । " यह बात अनुच्छेद 21(A) कैसे सुनिश्चित करता है?

उत्तर - अनुच्छेद 21(A)- संविधान के 86 वें संशोधन एक्ट, 2002 के तहत एवं अनुच्छेद 21(A) के अनुसार 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने मूलभूत अधिकार है.

प्रश्न-1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा की भूमिका को कैसे देखा है?

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का बिंदु 4.2 महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा की बात करते हुए कहता है कि शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जायेगा. अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को ख़त्म करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव

महिलाओं के पक्ष में होगा. राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था ऐसे प्रभावी दखल करेगी जिनसे महिलाएं, जो अब तक अबला समझी जाती रहीं हैं, समर्थ और सशक्त हों.

प्रश्न- लड़कियों की शिक्षा के सन्दर्भ में (2005) में श्री तरुण गोगई की अध्यक्षता में बनी कमेटी ने लड़कियों की शिक्षा से जुड़ी किन जेंडर रूढ़ियों की ओर ध्यान दिलाया और इसके स्थान पर उनकी शिक्षा के प्रति कैसा दृष्टिकोण विकसित करने की सिफारिश की ?

उत्तर- महिलाओं को दी जाने वाली शिक्षा के प्रति अपनाए जाने वाले यांत्रिक दृष्टिकोण का जोरदार तरीके से विरोध करने की जरुरत है जिसके तहत यह समझा जाता है कि जन्मदर को नियंत्रित करने, बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, सेवाओं में होने वाले कम खर्चे तथा गिरती हुई शिशु मृत्युदर आदि के लिए ही महिलाओं को शिक्षित करने की जरुरत है। इस तरह के दृष्टिकोण का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से लड़कियों को दी जाने वाली शिक्षा के स्तर और उसके प्रकार पर असर पड़ रहा है और आज भी लड़कियों की शिक्षा जेंडर आधारित रूढ़िवादिता (gender-stereotyped) से ग्रसित है। यह जरुरी है कि लड़कियों की शिक्षा के सन्दर्भ में लक्ष्य की प्राप्ति को केवल उनके नामांकन व उनके स्कूलों में रुक पाने (retention) तक ही सिमित करके न देखा जाए बल्कि सभी विषयों और सभी स्तरों पर भी उनकी उपलब्धि एवं प्रदर्शन को देखा जाए। साथ ही इस बात को समझने की सख्त जरुरत है कि लड़कियों के लिए शिक्षा को प्रारंभिक स्तर से ऊपर भी सुनिश्चित किया जाए, इसे समर्थन दिया जाए।

समिति ने महसूस किया कि सभी को एक हद तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की संवैधानिक प्रतिबद्धता पर जोर दिए जाने की जरुरत है। इस तरह लड़कियों की शिक्षा के लिए अच्छी गुणवत्तापूर्ण नियमित स्कूलिंग (रेगुलर स्कूलिंग) के स्थान पर वैकल्पिक स्कूलिंग के किसी भी तरह के विकल्प को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल; जे. सी. (1991). भारतीय शिक्षा पद्धति : संरचना और समस्याएँ, नई दिल्ली: आर्य बुक डिपो.
2. अग्निहोत्री; रवीन्द्र (1994). आधुनिक भारतीय शिक्षा : समस्याएँ और समाधान, जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी.
3. कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना के लिए- http://hi.vikaspedia.in/education/policies-and-schemes/92c93e93293f91593e-93693f91594d93793e , Retrieved on 2nd Feb. 2017

4. गौरा देवी कन्याधन योजना के लिए - http://escholarship.uk.gov.in/frmGauradeviDefault.aspx, Retrieved on 2nd Feb. 2017, at 3:48pm.
5. निरंतर (2010). कोठारी आयोग रिपोर्ट: भारत सरकार का दस्तावेज़, जेंडर और शिक्षा रीडर भाग-1. नई दिल्ली : निरंतर, पृष्ठ सं.- 100-112.
6. भारत सरकार (1968). राष्ट्रीय शिक्षा नीति. नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय.
7. भारत सरकार (1986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली: शिक्षा विभाग.
8. भारत सरकार (2016). भारत 2016. प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली : सूचना और प्रसारण मंत्रालय.
9. महिला समाख्या के लिए- https://hi.wikibooks.org/wiki
10. राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001). http://icds-wcd.nic.in/h_empwomen.htm , Retrieved on 10th Feb. 2017.
11. सर्व शिक्षा अभियान के लिए- http://hi.vikaspedia.in/education/policies-and-schemes
12. Aggarwal; J.C. (2010). Landmarks in the History of Modern Indian Education, New Delhi: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
13. GoI (1952-53). Mudaliar Commission Report: Report of the Secondary Education Commission, Ministry of Education.
14. GoI (1964-66). Education and National Development: Report of the Education Commission, Ministry of Education.
15. GoI (1975). Towards Equality: Report of the Committee on the Status of Women in India, Delhi: Department of Social Welfare, Government of India.
16. Digital Gender Atlas for Advancing Girl's Education: http://103.7.128.243/atlas/state_profile.html, Retrieved on 11th Feb. 2017, at 12:08pm.
17. Mathew; P.D., P.M. Bakshi (2009). Women and the Constitution, Legal Educational Series No.-17, Revised by Vasundhara, New Delhi: Indian Social Institue.

18. N.C.E.R.T. (2013). Training Material For Teachers Educators On Gender Equality And Empowerment. Volume I: Perspectives on Gender and Society, p.no.-13, 14.
19. National Policy on Education (1986). Programme of Action (1992). New Delhi: MHRD.

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा के सन्दर्भ में विभिन्न नीतियों, आयोगों और समितियों ने जिन मुद्दों की पहचान की और अपने सुझाव रखे, उनमे से आज के सन्दर्भ में प्रासंगिक कुछ मुद्दों को चुनकर उन पर चर्चा करें और अपने सुझाव दें।
2. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा एवं उनके सशक्तिकरण के लिए केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा चलाई जा रही योजनाओं व कार्यक्रमों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 3 -भारत में परिवार व्यवस्था के संदर्भ में जेंडर अस्मिता और समाजीकरण की रीतियाँ

3.1 प्रस्तावना

3.2 उदेश्य

3.3 परिवार की अवधारणा और प्रकार

3.3.1 परिवार का अर्थ

3.3.2 संगठनों के आधार पर परिवार

3.3.3 सत्ता के आधार पर परिवार- सत्ता के आधार पर भी परिवारों को दो भागों में बांटा जा सकता है

3.4 समाजीकरण की अवधारणा

3.4.1 प्राथमिक समाजीकरण

3.4.2 द्वितीयक समाजीकरण

3.4.3 समाजीकरण की विभिन्न एजेंसियां

3.5 जेन्डर की अवधारणा

3.5.1 जेंडर अस्मिता का निर्माण

3.6 शिक्षा, समाजीकरण और जेंडर अस्मिता

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 संदर्भ ग्रन्थसूची

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज भिन्नताओं और विविधताओं को समाहित किये हुए एक बहुत ही विशाल समाज हैं. भारतीय समाज में कई स्तरों जैसे – रहन-सहन,भाषा,रीती-रिवाज,भेष-भूषा,खाना-पान, क्षेत्र, व जीवन शैलियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के आधार पर विविधता समाहित है. भारतीय समाज अत्यधिक पुराना और जटिल है. प्रचलित अनुमान के अनुसार पांच हज़ार वर्ष पूर्व की पहली ज्ञात सभ्यता के समय से आज तक लगभग पांच हज़ार वर्षों की अवधि समाहित है . इस लम्बी अवधि में विभिन्न प्रजातीय लक्षणों वाले और विविध भाषा-परिवारों के प्रवासियों की लहरें यहाँ आकर इसकी आबादी में घुल मिल गई और इस समाज की विविधता ,समृदधि और जीवन्तता में अपना-अपना योगदान दिया (दुबे,1985:1) इस अत्यधिक जटिल और विशालता के उपरांत भी भारतीय समाज में बहुत सी ऐसी बातें हैं , जो भारत के प्रत्येक हिस्से के समाजों की संरचना में व्याप्त सामान्य विशेषताओं के रूप में उभर कर सामने आती हैं. इन्ही विशेषताओं में एक प्रमुख विशेषता है ‘परिवार’. भारत की अधिकांश आबादी किसी-न-किसी रूप में ‘परिवार’ के रूप में ही संगठित होकर जीवन यापन करती है. परिवार किसी व्यक्ति को उसकी अस्मिता(पहचान) निर्मित करने व समाजीकरण के द्वारा एक सामाजिक प्राणी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. एक व्यक्ति के रूप में समाज में उसके कार्य,आचार-विचार, व्यवहार,शिक्षा व भूमिकाओं का निर्वहन परिवार में ही तय किया जाता है. इस तरह सामाजिक संरचना के रूप में ‘परिवार’ समाज की महत्वपूर्ण इकाई बन जाता है. परिवार में जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया के तहत व्यक्ति की पहचान (लिंग,जाति,धर्म,नस्ल) निर्मित होती है. इसलिये समाज की संरचनात्मक इकाई के रूप में परिवार और उसके भीतर चलने वाली प्रक्रियाओं को शैक्षिक रूप से समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है. चूँकि आज हम ऐसे समाज में हैं जहाँ शिक्षा के क्षेत्र में कई बदलाव आ चुके हैं और निरंतर आ रहें हैं और सिखने-सिखाने की विविध उपागमों को सराहा जा रहा है. यह उपागम एक ओर सीखने की प्रक्रिया में बच्चों के मनोविज्ञान को महत्व देते हैं तो दूसरी ओर बच्चे व उसके मनोविज्ञान को सामाजिक संदर्भों में जानने व विवेचित करने पर भी बल देते हैं. बच्चे/ बच्चियां अपने संज्ञान व व्यवहारों में कई तरह की ‘सामाजिक-सांस्कृतिक’ निर्मितियों को लेकर विद्यालय आते हैं. ऐसे में विद्यालय वह स्थान बन जाता है जहाँ ये बच्चे/ बच्चियां अपने ‘सामाजिक रूप’ से निर्मित ‘व्यक्तिगत’ अनुभवों को दुनिया को समझने व ज्ञान की रचना करने में प्रयोग करते हैं. विद्यालय द्वारा बच्चों की इन पूर्व निर्मित अवधारणाओं व समझ का प्रयोग कैसे किया जाये कि वे जीवन को मुक्त, तार्किक और आलोचनात्मक संदर्भों में जान पाए.तभी शिक्षा के सामजिक सरोकारों को जगह मिल पायेगी. प्रस्तुत इकाई में समाज की संरचना के आधार के रूप में भारत में पारिवारिक व्यवस्था के भीतर चलने वाली समाजीकरण की प्रक्रिया व अस्मिता निर्माण के जेंडर आधरित स्वरूपों को समझाने का प्रयास किया गया है. स्कूलों द्वरा बच्चों की पूर्व निर्मित अवधारणाओं का पोषण कई तरह की रुढीवादी मान्यताओं का पोषण करना होगा. जोकि

शिक्षा के वृहतर शैक्षिक लक्ष्यों को सिमित कर देना होगा है. इसलिए शैक्षिक रूप से यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि बच्चे के सामाजिक संदर्भों (जैसे पारिवारिक संरचना ,समाजीकरण व जेंडर–भेद की निर्मितियों) को गहराई से समझा जाए. तभी शिक्षा के सामाजिक सरोकारों को शिक्षा में जगह मिल सकती है.

प्रस्तुत इकाई में समाज की संरचना के आधार रूप में भारत में परिवार व्यवस्था व उसके विभिन्न प्रकारों को समझाने तथा इन व्यवस्थाओं के भीतर चलने वाली समाजीकरण की प्रक्रिया व जेंडर आधारित व्यवहारिक सांचों को समझाने का प्रयास किया गया है.

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :-

1. भारत में विभिन्न पारिवारिक ढांचों को जान पाएंगे .
2. समाजीकरण की प्रक्रिया को जान पाएंगे.
3. जेंडर व जेंडर अस्मिता की अवधारणा को समझ सकेंगे.
4. भिन्न –भिन्न पारिवारिक संरचनाओं के भीतर जेंडर आधारित व्यवहारों की पहचान कर सकेंगे.

3.3 परिवार की अवधारणा और प्रकार

परिवार सामान्य रूप से प्रचलित शब्द है तथा अपने साधारण अर्थों में इसे अच्छी तरह समझा भी जाता है.यह द्योतक है एक सार्वभौमिक , स्थायी तथ व्यापक संस्था का जिसकी विशेषता है सामाजिक दृष्टि से अनुमत यौन सम्बन्ध तथा प्रजनन , समान घर , आवास और घरेलू सेवाएं तथा आर्थिक सहयोग आदि . भारतीय समाज में परिवार के रूपों में बहुत विविधिता है. इन रूपों को भिन्न-भिन्न आधारों जैसे वंश नाम, आवास, सदस्यता तथा यौन साथियों की संख्या के आधार पर अलग किया जा सकता है. भारत के अधिकतर समुदायों में वंश नाम पिता की परम्परा में तलाशा जाता है. इसे पितृवंशी वंश नाम कहा जाता है. मातृ समाजों- उतर पूर्व में गारो,खासी और प्नार तथा दक्षिण भारत के नायर,माप्पिल, लक्षद्वीप वासी और अनेक आदिवासी तथा गैर-आदिवासी समुह आदि प्रमुख है. (दुबे,1985; 59) आइये परिवारों की इन संरचनाओं को जानने से पूर्व परिवार के अर्थ पर एक दृष्टि डालें.

3.3.1 परिवार का अर्थ

अलग – अलग विचारकों ने परिवार के अर्थ निम्न तरह से स्पष्ट किये हैं.

- मैक और यंग के अनुसार – परिवार मौलिक रूप से एक प्राथमिक समूह है जो व्यक्तित्व के लिए प्राकृतिक परिवेश उपलब्ध करता है.
- इलीअट और मेरिल के अनुसार – परिवार एक जैविक और सामाजिक इकाई है जिसमें पति,पत्नी और बच्चे होते हैं.
- बर्जेर्स एंड लॉक के अनुसार – परिवार व्यक्तियों का समूह है जिसमें व्यक्ति विवाह , रक्त और अनुकूलन से बंधे होते हैं.

भारत में समाजिक –सांस्कृतिक विविधता के आधार पर पारिवारिक संरचनाओं को संगठनों व सत्ता के आधार पर विभाजित किया जा सकता है .

3.3.2 संगठनों के आधार पर परिवार

संगठनों के आधार पर परिवार को दो भागों में बांटा जा सकता है –

एकल और संयुक्त परिवार- एकल और संयुक्त परिवारों को प्राय परिवार के सदस्य संख्याओं के आधार पर विभाजित किया जाता है. एकल परिवार में प्राय: पति,पत्नी और उनके बच्चे होते हैं यह परिवार छोटे होते हैं और आधुनिक समाज की एक विशेषता के रूप में देखें जाते हैं . जबकि संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है. इस तरह के परिवार में पति , पत्नी व बच्चों के साथ- साथ ताऊ-ताई , चाचा-चाची, बुआ , नाना- नानी , मामा-मामी , उनके बच्चे व दादा- दादी आदि एक साथ इक्कठे रहते हैं. भारत को प्राय: 'संयुक्त परिवारों' का देश कहा जाता है.(वही: 60)

3.3.3 सत्ता के आधार पर परिवार

सत्ता के आधार पर भी परिवारों को दो भागों में बांटा जा सकता है-

पितृसत्तामक परिवार – पितृसत्तामक परिवार वह परिवार होते हैं जहाँ पिता की प्रधानता होती है और वंश नाम को पिता की परम्परा में तलाशा जाता है. ऐसे परिवारों में सभी तरह के मुख्य निर्णय पिता (पुरुष) के द्वरा लिए जाते हैं. इस तरह की पारिवारिक व्यवस्था को पुरुष प्रधान व्यवस्था भी कहा जाता है. भारत के अधिकांश परिवारों में समुदायों में वंश नाम पिता की पम्परा में ही तलाशा जाता है.(वही; 59) कुछ अपवादों को छोड़ कर भारततीय सामाजिक व्यवस्था की विशेषता है पितृसत्ता ही है . पितृ सत्ता पुरुष के प्रभुत्व और स्त्री की अधीनता को मान्यता देती है. विवाह के अवसर पर वधू का अपने पैतृक घर से नाता टूट जाता है तथा वह उस परिवार की सदस्य हो जाती

है जिसमें उसका विवाह होता है. उसकी संताने उसकी पति की परम्परा में होती हैं. परिवार के भीतर अधिकार पुरुष का होता हैं . परिपक्व स्त्रियाँ अपनी बात जोर देकर कहती हैं परन्तु प्राय: पृष्ठभूमि में ही होती हैं. (वही: 99)

मातृसत्तात्मक परिवार - मातृसत्तात्मक परिवारों में प्राय समुदायों के वंश नाम माता की परम्परा में तलाशे जाते हैं. इन परिवारों में माता के प्रधान होने का बोध होता है. परन्तु इस व्यवस्था में भी निर्णयों और कार्यों के आधार पर सत्ताएं बटी होती हैं. - मातृसत्तात्मक शब्द का प्रयोग बहुत ही हलके-फुल्के ढंग से किया जाता है और यह भ्रम उत्पन्न करता है. पितृसत्तामक शब्द का प्रयोग पुरुष प्रधान संरचनाओं के लिए होता है और वस्तुतः यह भारतीय समाज के बड़े हिस्से का प्रतिमान (नॉर्म) है किन्तु मातृसत्तात्मक (स्त्री प्रधान) का अस्तित्व नहीं है. भारत में मातृवंशी समाज के छोटे सिमित केंद्र हैं जैसे-एंग्लो इन्डियन और जनजाति समूह (खासी) लेकिन सत्ता का कोई साक्ष्य मिलता नही है. म मातृसत्तात्मक परिवारों में समुदायों में वंश का मूल स्त्री के माध्यम से खोजा जाता है . लेकिन राजनैतिक सत्ता सामान्यत : पुरुषों में ही निहित होती है. इन व्यवस्थाओं में स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र अलग- अलग होते हैं. एक खासी कहावत है – 'युद्ध और राजनीति पुरुषों के लिए है जबकि सम्पति और बच्चे स्त्रियों के लिए' उनमें मुखिया तथा शक्ति का इस्तेमाल करने वाले सभी पुरुष हैं किन्तु स्त्रियों की महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिकाएं हैं.(वही; 100)

भारतीय पारिवारिक संरचना में मुख्यतः उपरोक्त व्यवस्थायें पाई जाती हैं . इसके अतिरिक्त कई अन्य तरह के विभाजन भी मिलते है परन्तु वह मूलतः इन्ही व्यवस्थाओं का हिस्सा होते हैं.

3.4 समाजीकरण की अवधारणा

समाजीकरण की अवधारणा से अभिप्राय उन अभ्यासों से जिनके द्वरा किसी जैविक प्राणी को सामाजिक प्राणी बनाया जाता है. समाजीकरण वह प्रक्रिया जिसके द्वरा मनुष्य समाज के विभिन्न व्यवहार, रीती-रिवाज व गतिविधियाँ आदि सीखता है. जैविक अस्तित्व से सामाजिक अस्तित्व में मनुष्य का रूपांतरण समाजीकरण के माध्यम से होता है . समाजीकरण के माध्यम से ही वह संस्कृति को आत्मसात करता/करती है. सीखने की यह प्रक्रिया समाज के नियमों के अधीन चलती है. समाजशास्त्र की भाषा में कहें तो समाज में अपनी परिस्थति या दावे के दर्जे का बोध और उसके अनुरूप भूमिका निभाने की विधि को हम समाजीकरण कहते हैं.(कुमार दुबे,1995) समाजीकरण की प्रक्रिया को दो प्रकार से समझा जाता है. प्राथमिक समाजीकरण और द्वितीयक समाजीकरण.

3.4.1 प्राथमिक समाजीकरण

प्राथमिक समाजीकरण एक बच्चें का पहला समाजीकरण है. यह शिशु के जन्म के साथ ही शुरू हो जाता है. संक्षिप्त रूप से यह संज्ञानात्मक अधिगम है जिसमें सामाजिक रूप से संगठित परिवार व्यवस्थाओं के व्यवहारिक स्थितियों सांचे स्कीमा (ज्ञान के संगठन) की तरह बनते हैं.(लक्मन और बर्जेर, 1962) इस प्रक्रिया में शिशु पारिवारिक

व्यवस्थाओं में व्याप्त नियमों और व्यवहारों के अंतर्बोध के साथ बड़ा होता/ होती है. प्राथमिक समाजीकरण में बच्चे के लिए उसके महत्वपूर्ण अन्य(significant others) जैसे – परिवार के सदस्य आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं . अपने 'महत्वपूर्ण अन्यों' की भांति बनना शिशु के अधिगम का हिस्सा होता है. परिवार से बच्चा भाषा, प्रतिक चिन्ह व व्यवहार की भौतिक और अभौतिक संस्कृति को आत्म सात करता है /करती है.

उदाहरणत: एक नव जन्मी/जन्मा शिशु जन्म के बाद शुरूआती कुछ वर्षों में ही समाजीकरण के माध्यम से लैंगिक रूप में अपनी इस पहचान को बना पाने में सक्षम हो जाता/जाती है कि वह 'लड़का है' या 'लड़की'. लैंगिक रूप में अपनी पहचान का यह बोध प्राथमिक समाजीकरण के द्वरा ही होता है.

3.4.2 द्वितीयक समाजीकरण

द्वितीय समाजीकरण से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो प्राथमिक समाजीकरण के उपरांत होती हैं. सीखने की इस प्रक्रिया में पहले से समाजीकृत व्यक्ति समाज की वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं से परिचित होता/ होती है. बच्चे के द्वितीयक समाजीकरण में स्कूल एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

उदहारणत: प्राथमिक रूप से समाजीकृत 'लड़की' या 'लड़का' समाज में किस तरह अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करे और एक राज्य व्यवस्था का जिम्मेदार नागरिक कैसे बने! जैसे व्यवहारिक सांचों को जानने और सीखना द्वितीयक समाजीकरण कहलाता है स्कूल द्वितीयक समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

3.4.3 समाजीकरण की विभिन्न एजेंसियां

समाजीकरण की एजेंसियों से अभिप्राय उन संस्थानिक संगठनो से है व्यक्ति के समाजीकरण में अपना योगदान देती है. इन एजेंसियों में प्रमुख है परिवार,पड़ोस,समकक्ष समूह , मिडिया, स्कूल और राज्य की वैचारिकी . यह सभी संगठन व्यक्ति के जन्म के उपरांत उसे सामाजिक रूप में विकसित मनुष्य बनाने में अपना योगदान देते हैं.

3.5 जेन्डर की अवधारणा

जेंडर की अवधारणा को समझने से पहले आवश्यक है कि 'जेंडर' शब्द को समझा जाये. जेंडर शब्द प्राय: समाज में जैविक रूप से भिन्न स्त्री , पुरुष, उभयलिंगी और अन्य लिंगों का सामाजिक संबोधन है. जैविक रूप से स्त्री , पुरुष, उभयलिंगी व अन्यों के व्यवहारों के विभाजित सांचों (patterns) को श्रेणी बध्द करने के लिए इस शब्द का प्रयोग समाज में किया जाता है. जेंडर से सम्बंधित अवधारणा से तात्पर्य एक व्यक्ति के जैविक लिंग (स्त्री –पुरुष) और समाज में उसकी लैंगिक अस्मिता (gender identity) के बोधन के बीच के जटिल संबंधों से है. एक व्यक्ति के व्यवहारों का प्रस्तुति करण(gender expression) उसके द्वरा निभाई जाने वाली लैंगिग भूमिकाओं (gender roles) से जुडा होती है.(बर्क, 2006; 521)

3.5.1 जेंडर अस्मिता का निर्माण

जेंडर रूप में अस्मिता का निर्माण अपने आप में एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया है. जेंडर अस्मिता के निर्माण को लेकर जेंडर स्कीमा सिद्धांत का मानना है कि एक व्यक्ति का समाजिक रूप से स्त्री,पुरुष, उभयलिंगी और अन्य होने की अस्मिता उसके समाजिक अधिगम और संज्ञानात्मक विकास की सम्बद्ता का परिणाम है. जिसके अंतर्गत समाज में जेंडर रूप से प्रचलित मान्यताएं, पूर्वाग्रह व भूमिकाएं आदि शामिल होती हैं. (वही:523)

जेंडर अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया को संयोजित और व्यापक रूप में समझने के लिए आवश्यक है कि पारिवारिक संरचनाओं के भीतर समाजीकरण की प्रक्रिया को ध्यान में रखा जाये. भारत विशेष के संदर्भ में यदि जेंडर आधरित रूप से निर्मित पहचान (अस्मिता) की प्रक्रिया को समझे तो पाएंगे कि भारतीय परिवारों में 'स्त्री-पुरुष' के रूप में बड़े होने के अनुभव अधिकांशत: भिन्न होते हैं. प्राय: परिवारों में व्यवहार, भूमिकाओं व कार्यों को लेकर के लड़का (पुरुष) और एक लड़की (स्त्री) होने का एहसास और अनुभव दोनों भिन्न होते हैं. परिवारों से मिली लिंग चेतना भेदात्मक तत्वों को समाजीकरण की अन्य एजेंसियां भी प्रखर रूप में पोषित करती हैं.

जेंडर आधरित अस्मिता का निर्माण प्राय: परिवारों में जन्म के साथ ही शुरू हो जाता है. इस शुरुआत में एक नव जन्मा/जन्मी शिशु को सर्वप्रथम यह बोध कराया जाता है कि वह 'लड़की है','लड़का है' या 'अन्य'. 'लड़के','लड़की' व 'अन्य' होने का यह बोध परिवार की दैनिक क्रियाओं में कई स्तरों पर शामिल होता है. जैसे- घर में किये जाने वाले कार्यों का विभाजन,जिम्मेदारियां व शिक्षा आदि. जन्म के उपरांत एक बच्चा किसी- न-किसी रूप में परिवार को प्राप्त करता/ करती है. भारतीय संदर्भों में परिवार की अवधारणा में एक प्रकार का व्यवस्थागत वर्चस्व कायम रहता है वह है – पितृसत्ता. कुछ अपवादों को छोड़कर भारतीय समाज की विशेषता है पितृसत्ता .(दुबे, 1985;99) इस विद्धमान पितृसत्ता में 'लड़के' व 'लड़की' का बचपन समान नहीं होता.(कुमार कृष्ण 2016,14) असमानता की यह प्रक्रिया भाषागत संबोधनों से लेकर उठने-बैठने,आचार-विचार ,व्यवहार, पहनावा , कामकाज और कार्य क्षेत्र तक फैली होती है. भारतीय समाज में भूमिका निर्धारण के संदर्भ में 'पुरुष के कार्य' और 'स्त्रियों के कार्य' में भेद किया गया है. गृहस्थी के प्रबंधन का काम निरपवाद रूप से स्त्री के क्षेत्र में आता है. यदि वे घरेलू कामकाज में हाथ बटाने के लिए कोई सेवक रख नहीं पाती हैं तो उन्हें ही घर के सारे कामकाज खुद ही करने पड़ते हैं जैसे पानी भरना, खाना पकाना, घर की सफाई, अपने और घर के पुरुषों और बच्चों के कपडे धोना तथा बच्चों की देखभाल. पुरुष यदि इनमें से कोई काम करते हैं तो उनका उपहास किया जाता है. पुरुष यदि ये काम तभी कर सकते हैं यदि पत्नी घर पर न हो, या अस्वस्थ हो तथा उसका काम सँभालने वाली कोई अन्य स्त्री घर में न हो. यह धारणा इतने गहरे जमीं हुई है की व्यवसायों में कार्यरत तथा पूर्णकालिक सेवारत स्त्रियों से भी यह अपेक्षा की जाती

है कि वे इसके अतिरक्त गृहस्थी के काम-काज भी देखती रहें. (दुबे;101) स्त्री-पुरुष की भूमिकाएं संबंधों के सम्मुचय के भीतर कल्पित व अभिनीत होती हैं और सीखी जाती हैं . इस प्रक्रिया को समझने के लिए परिवार की संरचना जिसमें परिवार सन्निहित रहता है , को समझना जरुरी है.परिवार की संरचना तथा नातेदारी के संरूप जाति संस्था से बंधे है. जाति व्यवस्था में अलग- अलग समूहों की सदस्यता जन्म से परिभाषित रहती है.इसी कारण विवाह तथा यौन संबंधो पर नियंत्रण व सीमाएं बनाये रखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है.यद्धपि अधिकांश हिन्दू भारत में व्यक्ति की सदस्यता का निर्धारण पितृवंशीय परम्परा के नियमों के द्वरा संचालित होता है. (दुबे ,199.;92-93).

इस तरह जेंडर अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया बच्चें के जन्म से ही उसके सामाजिक –सांस्कृतिक व परिवेश में शुरू हो जाती है जहाँ कुछ तय मानक व पैटर्न होते हैं जिनके अनुसार एक बच्चे का लालन-पालन होता है.

यदि इन तय मानकों व पैटर्न के भीतर किये जाने वाले विशेष व्यवहारों की सूची बनाई जो संभवतः नीचे दिए गए उद्धरणों की एक सूची बन सकती है. यह कुछ ऐसे उदहारण हैं जिन्हें आप सभी ने अपने आस-पास के परिवेश में प्रयोग होते हुए सुना होगा –

लड़कों से सम्बंधित प्रचलित संबोधन व पूर्वाग्रह	**लड़कियों से सम्बंधित प्रचलित संबोधन व व्यवहार**
1. लड़के बलवान होते हैं . 2. लड़के रोते नहीं है. 3. भावनात्मक रूप से मजबूत होते हैं . 4. लड़कों के बाल छोटे होने चाहिए. 5. लडके जोर से हंस सकते है. 6. लड़के समूह में खड़े होकर किसी भी सड़क और चौराहे पर खड़े होकर बात कर सकते हैं . 7. लड़के घर के काम काज नहीं करते. 8. लड़के गाणित- विज्ञान व वाणिज्य की पढाई करते हैं. 9. लड़के खेल- कूद कर सकते हैं व उसमे बेहतर कर सकते हैं.	1. लड़कियां कोमल व मृदु होती हैं. 2. लड़कियां रो सकती हैं . 3. लड़कियां भावुक होती हैं. 4. लड़कियों के बाल लम्बे होने चाहिए. 5. लड़कियां जोर से नहीं हंस सकती उन्हें मुस्कुराना चाहिए. 6. घर के कामकाज लड़कियां करती हैं. 7. लड़कियों के लिए सड़क का मतलब स्कूल से घर और घर से स्कूल जाने के लिए होता है वह सड़क पर समूह में खड़े होकर बातें नहीं कर सकती. 8. कला व गृह विज्ञान की पढाई लड़कियां करेंगी

10. लड़के गुलाबी रंग के कपड़े नहीं पहन सकते हैं , उन्हें खिलौने में बन्दुक , साइकिल आदि पसंद होती है. 11. लड़के बुढ़ापे का सहारा होते हैं.	9. लडकियां साफ़- सफाई , सिलाई-कढाई, बुनाई का काम करती हैं. 10. लड़कियां गुडिया जैसे खिलौनों को पसंद करती हैं. 11. लडकियां पराया धन होती हैं.

आप में से संभवतः अधिकांश व्यक्तियों ने इस तरह की मान्यताओं या व्यवहारों को अपने आस-पास व परिवारों में सुना या महसूस किया होगा. शब्दिक और व्यावहारिक रूप से प्रयोग किये जाने ये वाले प्रतिमान बच्चे अपने परिवार में प्राथमिक समाजीकरण द्वरा जानते है और सीखते हैं . यही प्रतिमान उनकी जेंडर संबधी पहचान और भूमिकाओं को निर्धारित करते हैं. प्राय: घरों में प्रयोग की जाने वाली भाषा, समारोह, रीति-रिवाजों व वैवाहिक कर्मकांडों के गीतों के प्रतीक माध्यम से स्त्री-पुरुष की असमान छवि गढ़ी जाती है जो जेंडर आधरित अस्मिता को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं. आइये लीला दुबे के अध्ययन से हिन्दू परिवारों में होने वाले कर्मकांडों और रीती-रिवाजों में प्रचलित कहावतों व गीतों के कुछ उदहारण देखें जो हिन्दू समाज में लैंगिक रूप से भेदभाव और लालन- पालन को चित्रित करती हैं-

‘बेटी को पलना-पोसना तो दुसरे के आँगन में लगे पौधे को पानी देने जैसा ही है,(दुबे. एस.सी. 1955:148)

बुजुर्ग लोग लड़कियों और स्त्रियों को पुत्रवती होने का आशीर्वाद देते हैं दूधों नहाओं-पूतों फलो(बस एक पुत्री हो) (वही;94) एक उड़िया मुहावरे में पुत्री को घी के समान बताया गया है: दोनों मुल्यवान हैं लेकिन समय रहते उन्हें ठिकाने ने लगाने पर दोनों बदबू देने लगते हैं. यह एक तेलुगु अभिव्यक्ति है जिसका स्त्रियों व लड़की का विवाह समय पर कर देने की चिंता के संदर्भ में काफी इस्तेमाल करती हैं – वय: संधि(लड़कियां जो मासिक धर्म को प्राप्त कर लेती हैं) प्राप्त पुत्री को छाती का फोड़ा कहा गया है.(वही:94)

वैवाहिक कर्मकांडों में प्रयोग होने वाले गीत -

झूलों बच्ची, झूलों तुम्हारे प्यारे बालों में कंघी
दूल्हा जल्दी ही आकर तुम्हें ले जायेगा (वही:98)
मत रो मेरे सुन्दर बच्चे, मैं तुम्हारे लिए दुल्हनियां लाऊंगी
मेरा बेटा पेट भर कर खायेगा
उसकी पत्नी उसकी खाली थाली चाटेगी.(वही:99)

इन उदाहरणों से आपको भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में स्वयं के स्त्री या पुरुष होने से सम्बन्धी पहचान की निर्मिती में व्याप्त तत्वों और तरीकों को पहचानने में संभवतः कुछ मदद मिली होगी. आइये अब परिवार , समाजीकरण और जेंडर अस्मिता की अवधारणाओं के शैक्षिक निहितार्थ को समझें.

3.6 शिक्षा, समाजीकरण और जेंडर अस्मिता

उपरोक्त इकाइयों में आपने पारिवारिक संरचनाओं के भीतर समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से जेंडर अस्मिता को जाना. अब प्रश्न यह है कि समाजीकरण और अस्मिता निर्माण की इस प्रक्रिया में शिक्षा का क्या योगदान है? राष्ट्रीय पाठ्य चर्या 2005 में शिक्षा के लक्ष्यों पर कहा गया है कि लोकतंत्र , समानता ,न्याय , स्वतंत्रता, परोपकार, धर्म निरपेक्षता , मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दुसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिए . शिक्षा का उद्देश्य कारण और समझ पर आधारित इन्ही मूल्यों के प्रतिबद्धता का निर्माण करना होना चाहिए. इसलिए पाठयचर्या में स्कूलों के लिए वह गुंजाइश जरुर होनी चाहिये ताकि संवाद एवं विमर्श के लिए जगह पैदा करते हुए बच्चों में इस तरह की प्रतिबद्धता का निर्माण किया जा सके. इन उद्देश्यों में विचार तथा क्रिया की आजादी , स्वतन्त्रता तथा सामूहिक रूप से सावधानीपूर्वक विचार किये गए मूल्य-निर्धारित निर्णय लेने की क्षमता की तरफ इशारा करते हैं. ज्ञान और दुनिया की समझ के साथ दुसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति संवेदनशीलता को मूल्यों के प्रति तार्किक पर्तिबद्धता का आधार होना चाहिए. (पेज 13). शिक्षा के इन व्यापक लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब नीति से लेकर कक्षागत शिक्षण तक इस बात की गंभीरता को समझा जाये कि भारत जैसे विशाल और विविध देश में बच्चें किस तरह की सामाजिक-सांस्कृतिक समझ लेकर आ रहें हैं. यह समझ किन संदर्भों में कैसे निर्मित हो रहीं है और कौन से माध्यम से यह बच्चों में विकसित की गई है. उनकी पूर्वनिर्मित समझ को कितना पोषित करना है और कहाँ आलोचनात्मक रूप से इस समझ पर संवाद और विमर्श के दायरें में लाने की आवश्यकता है. दूसरा महत्वपूर्ण पहलु यह है कि स्कूल और शिक्षा भी बच्चे के समाजीकरण में निर्णायक भूमिका निभाती है. स्कूल का परिसर, पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षण की पद्धतियाँ व व्यवहार स्कूल में उन मान्यताओं को ही पोषित करते हैं जो बच्चे प्राथमिक रूप में अपने परिवार से प्राथमिक समाजीकरण के माध्यम से सीख चुकें हैं. प्राय: हमारी शिक्षा का स्वरूप भी जेंडर भेद को नेपथ्य में रखकर चलता है. स्कूल में आने के बाद भी 'लड़कियों' की शिक्षा सांस्कृतिक- ऐतिहासिक दायरों में ही आकर लेती है.राज्य की नीतियाँ उन सांस्कृतिक बिन्दुओं को समाहित करने में नाकाम रही हैं जो 'लड़की' को आकार देती हैं (कुमार कृष्ण,2010:75) स्कूल में आने वाले बच्चें गहराइयों से जेंडर भेदों में गढ़ी अस्मिताओं को लेकर आते हैं और एक समानता आधरित शिक्षा व्यवस्था को इन निर्मितियों के प्रति वैचारिक और व्यावहारिक रूप से संवेदनशील व सचेत होने की

आवश्यकता है. स्कूल व शैक्षिक गतिविधियाँ किस तरह से रूढ़िवादी मान्यताओं का संचालन करती हैं इस विषय पर अगली इकाई के प्रछन्न पाठ्यक्रम के बिदु के अंतर्गत और विस्तार से चर्चा की जाएगी.

3.7 सारांश

इस प्रस्तुत इकाई में हमने भारत जैसे विशाल विविध देश में पारिवारिक संरचना को जाना जिसंने ढांचे और सत्ता के रूप में परिवार के रूप जैसे- एकल परिवार , संयुक्त परिवार. पितृसत्तामक और मातृसत्तामक परिवारों के संदर्भ में जैविक व प्राकृतिक व्यक्ति को सामाजिक व्यक्ति बनाने की प्रक्रिया के रूप में समाजीकरण की प्रक्रिया को समझना बहुत आवश्यक है. समाजीकरण के माध्यम से ही परिवार में जेंडर आधारित भूमिकाओं का निर्धारण किया जाता है. समाज में संपन्न होने वाली इन प्रक्रियाओं के शैक्षिक निहितार्थों को समझना भी बहुत आवश्यक है संभवत तभी शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों को पूरा किया जा सकता है और एक समता मूलक समाज की ओर बढ़ा जा सकता है.

3.8 शब्दावली

1. परिवार – समाज की सबसे मौलिक इकाई जो किसी भी व्यक्ति के जीवन और लालन- पालन के लिए बहुत आवश्यक है.
2. समाजीकरण – समाज में समाज के सदस्यों द्वरा किसी व्यक्ति को समाज के व्यवहारों , रीती-रिवाजो और, भाषा , मान्यताओं व संस्कृति को सीखने की प्रक्रिया.
3. जेंडर अस्मिता – लिंग आधारित अस्मिता से अभिप्राय है व्यक्ति की सामाजिक संदर्भों में निर्मित अस्मिता से है जिसमें समाजीकरण के द्वरा स्त्री-पुरुष की भूमिकाओं में बद्ध अस्मिता को व्यक्तिगत अस्मिता के रूप में निर्मित किया जाता है.
4. पितृसत्ता – समाज की वह व्यवस्था जिसमें पुरुषों की प्रधान होती है और पुरुष निर्णायक और मुख्य भूमिका में होता है
5. मातृसत्ता - परिवार की वह व्यवस्थाएं जिसमें समुदायों का नाम माता के वंश में तलाशा जाता है

अभ्यास प्रश्न/ उत्तर

1. परिवार क्या है ? पितृवंशीय और मात्र वंशीय समाज में क्या अंतर?

   उत्तर – परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है जो एक व्यक्ति के लालन- पलानोर समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है. पितृ सत्तामक परिवार – पितृ सत्तामक परिवार वह परिवार होते हैं जहाँ पिता की प्रधानता होती है और वंश नाम को पिता की परम्परा में तलाशा जाता है. ऐसे परिवारों में सभी तरह के

मुख्य निर्णय पिता (पुरुष) के द्वरा लिए जाते हैं. इस तरह की पारिवारिक व्यवस्था को पुरुष प्रधान व्यवस्था भी कहा जाता है.भारत के अधिकांश परिवारों में समुदायों में वंश नाम पिता की पम्परा में ही तलाशा जाता है मातृ सत्तात्मक परिवारों में प्राय समुदायों के वंश नाम माता की परम्परा में तलाशे जाते है. इन परिवारों में माता के प्रधान होने का बोध होता है. परन्तु इस व्यवस्था में भी निर्णयों और कार्यों के आधार पर सत्ताएं बटी होती हैं.

2. समाजीकरण की प्रकिया को बताते हुए प्राथमिक और द्वितीयक समाजीकरण को समझाइए?

उत्तर -समाजीकरण की अवधारणा से अभिप्राय उन अभ्यासों से जिनके द्वरा किसी जैविक प्राणी को सामाजिक प्राणी बनाया जाता है. समाजीकरण वह प्रक्रिया जिसके द्वरा मनुष्य समाज के विभिन्न व्यवहार, रीती-रिवाज व गतिविधियाँ आदि सीखता है. जैविक अस्तित्व से सामाजिक अस्तित्व में मनुष्य का रूपांतरण भी समाजीकरण के माध्यम से होता है . समाजीकरण के माध्यम से ही वह संस्कृति को आत्मसात करता/करती है. सिखाने की यह प्रक्रिया समाज के नियमों के अधीन चलती है.) समाजीकरण की प्रक्रिया को दो प्रकार से समझा जाता है. प्राथमिक समाजीकरण और द्वितीयक समाजीकरण.

प्राथमिक समाजीकरण – प्राथमिक समाजीकरण एक बच्चें का पहला समाजीकरण है. यह शिशु के जन्म के साथ ही शुरू हो जाता है. संक्षिप्त रूप से यह संज्ञानात्मक अधिगम जिसमें जिसमें सामाजिक रूप से संगठित परिवार व्यवस्थों के व्यवहारिक सांचे स्कीमा (ज्ञान के संगठन) की तरह बनते हैं. इस प्रक्रिया में शिशु पारिवारिक व्यवस्थों में व्याप्त नियमों और व्यवहारों के अंतर्बोध के साथ बड़ा होता/ होती है. प्राथमिक समाजीकरण में बच्चें के लिए उसके महत्वपूर्ण अन्य(significant others) जैसे – परिवार के सदस्य आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं . अपने 'महत्वपूर्ण अन्यों' की भांति बनना शिशु के अधिगम का हिस्सा होता है.परिवार से बच्चा भाषा, प्रतिक चिन्ह व व्यवहार की भौतिक और अभौतिक संस्कृति को आत्म सात करता है /करती है.

द्वितीयक समाजीकरण – द्वितीय समाजीकरण से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो प्राथमिक समाजीकरण के उपरांत होती हैं. सिखाने की इस प्रक्रिया में पहले से समाजीकृत व्यक्ति समाज की वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं से परिचित होता/ होती है. बच्चे के द्वितीयक समाजीकरण में स्कूल एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

3. समाजीकरण की विभिन्न एजेंसियों कौन- कौन सी हैं?

उत्तर - समाजीकरण की एजेंसियों से अभिप्राय उन संस्थानिक संगठनो से है व्यक्ति के समाजीकरण में अपना योगदान देती है. इन एजेंसियों में प्रमुख है परिवार,पड़ोस,समकक्ष समूह , मिडिया, स्कूल और राज्य

की वैचारिकी . यह सभी संगठन व्यक्ति के जन्म के उपरांत उसे सामाजिक रूप में विकसित मनुष्य बनने में अपना योगदान देते हैं.

4. जेंडर आधारित अस्मिता से आप क्या समझते हैं?

उत्तर - जेंडर की अवधारणा को समझाने से पहले आवश्यक है कि 'जेंडर' शब्द को समझा जाये. जेंडर शब्द प्राय: समाज में जैविक रूप से भिन्न स्त्री , पुरुष, व मनोवैज्ञानिक रूप से उभयलिंगी और अन्य लिंगों का सामाजिक संबोधन है. जैविक रूप से स्त्री , पुरुष, व उभयलिंगी व अन्यों के व्यवहारों के विभाजित सांचों (patterns) को श्रेणी बध्द करने के लिए इस शब्द का प्रयोग समाज में किया जाता है और जेंडर से सम्बंधित अवधारणा से तात्पर्य एक व्यक्ति के जैविक लिंग (स्त्री –पुरुष) और समाज में उसकी जेंडर अस्मिता (gender identity) के बोधन के बीच के जटिल संबंधों से है. एक व्यक्ति के व्यवहारों का प्रस्तुतिकरण(gender expression) उसके द्वरा निभाई जाने वाली जेंडर भूमिकाओं (gender roles) से जुडी होती हैं

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार कृष्ण (2010), कल्चर, स्टेट एंड गर्ल्स: एन एजुकेशनल पर्सपेक्टिव, इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली वोलुम 17,
2. कुमार कृष्ण (2016), स्टडिंग चाइल्ड हुड इन इंडिया , इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली , वोलुम 23
3. कुमार कृष्ण (2014), चूड़ी बाज़ार में लड़की , राजकमल प्रकशन, दिल्ली .
4. दुबे एस.सी. (1985), भारतीय समाज , नेशनल बुक ट्रस्ट , नई दिल्ली
5. दुबे लीला(1988), ओन द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ जेंडर: हिन्दू गर्ल्स इन पेट्रीलिनेअल इंडिया, , इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली वोलुम 23, संख्या 18.
6. बर्क लौरा (2006), चाइल्ड डेव्लोपमेंट, पिअरसन एजुकेशन, साऊथ एशिया.
7. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (2005), एन.सी.इ.आर.टी. नई दिल्ली.
8. Peter L.Berger; ThomusLuckman(1966),The Social Construction OfReality,US.
9. एन.सी.इ.आर.टी.(200), आधार पत्र 3.2: जेंडर इस्सूस इन एजुकेशन, एन.सी.इ.आर.टी, दिल्ली.

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा के संदर्भ में समाजीकरण व जेंडर अस्मिता के शैक्षिक निहितार्थों को समझाए.

2. सत्ता के आधार पर भी परिवारों के प्रकारों का वर्णन कीजिये
3. समाजीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये
4. प्राथमिक समाजीकरण से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये
5. समाजीकरण की विभिन्न एजेंसियां का वर्णन कीजिये
6. जेन्डर की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये
7. शिक्षा, समाजीकरण और जेंडर अस्मिता की विवेचना कीजिये

इकाई 4-शिक्षा में जेंडर सरोकार

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 नामांकन एवं पहुँच का सवाल-
4.4 अवरोधन
4.5 उपलब्धि
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में महिला शिक्षा का क्रांतिकारी बीज बोने का कार्य 9वीं शताब्दी के मध्य में ज्योतिबा फूले और सावित्रीबाई फूले ने किया। 848 में इनके प्रयासों से बालिकाओं के लिए पहली पाठशाला पुणे में खोली गई। इसी काम को आगे बढ़ाते हुये उन्होने और भी कई स्कूल खोले जिस प्रक्रिया मे उन्हे समाज के प्रभावशाली वर्गों के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। महिला शिक्षा के पक्ष मे उनका यह सामाजिक हस्तक्षेप कोई एकाकी प्रयास नहीं था वरन जातिप्रथा व विधवा पुनर्विवाह जैसी अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ़ भी उन्होने मोर्चा खोला। इसी क्रम मे 858 मे जन्मी पंडिता रमाबाई के उन परिवर्तनकामी प्रयासों को भी देखा जा सकता है जिनमें उन्होने बाल विवाह तथा बाल वैधव्य से पीड़ित लड़कियों के लिए आश्रम खोले और तथा मेडिकल कॉलेज तथा शिक्षण में महिलाओं की भागीदारी को स्थापित करने का ऐतिहासिक कार्य किया। उपरोक्त उदाहरणों से यह साफ होता है कि महिलाओं के हक़ मे संघर्ष करने वाले सामाजिककर्मियों का अनुभव था कि भारत के संदर्भ में जाति, वर्ग, धर्म-संस्कृति पर सवाल खड़े किए बगैर महिलाओं के हकों की लड़ाई को बहुत दूर तक नहीं ले जाया जा सकता है।

इन्हीं ऐतिहासिक हस्तक्षेपों के प्रभाव के फलस्वरूप भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्यों और नीति निदेशक तत्वों में महिला मुद्दों की बात की गई है। संविधान का अनुच्छेद 4 जहां लिंग के आधार पर भेदभाव न किए जाने और सबको समान रूप से देखने की वकालत करता है वहीं अनुच्छेद 5(3) महिलाओं और बच्चों के

संबंध मे विशेष प्रावधानों की वकालत करता है। संविधान के अतिरिक्त समय-समय पर आए विभिन्न नीतिगत दस्तावेजों ने भी महिला शिक्षा पर ज़ोर दिया है। इस कड़ी मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 986 को देखना उल्लेखनीय होगा जिसने पहली बार समानता के लिए शिक्षा नामक खंड मे एक पूरा भाग महिला शिक्षा को समर्पित किया। महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा के खंड 4.2 मे महिला शिक्षा पर ज़ोर देते हुये नीति कहती है कि-

"शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जायेगा। अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को खत्म करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा। राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था ऐसे प्रभावी दखल करेगी जिनसे महिलाएं, जो अब तक अबला समझी जाती रही हैं, समर्थ और सशक्त हों। नए मूल्यों की स्थापना के लिए शिक्षण संस्थाओं के सक्रिय सहयोग सेपाठ्यक्रमों तथा पठन-पाठन सामग्री की पुनर्रचना की जायेगी तथा अध्यापकों व प्रशासकों का पुनःप्रशिक्षण किया जायेगा। महिलाओं से संबंधित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यचर्याओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जायेगा। इस काम को सामाजिक पुनर्रचना का अभिन्न अंग मानते हुए इसे पूर्णकृत संकल्प होकर किया जायेगा और शिक्षा संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया जायेगा।"

विभिन्न समय पर आई पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं ने भी महिला शिक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की प्रक्रिया मे राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान परिषद ने तो महिला मुद्दों पर अलग से एक position paper गठित किया। इस समूह की प्रमुख अनुशंसाओं में से दो शिक्षा में लड़कियों की पहुँच और अवरोधन से संबन्धित थीं।

i. सभी लड़कियों के लिए शिक्षा तक पहुँच: सरकार को चाहिए कि वह शिक्षा पर ज्यादा खर्च करें। मुफ्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने तथ देश के सभी इलाकों में लड़कियों के लिए स्कूलों की पहुँच हो इसके लिए प्रावधान किए जाए जिससे लड़कियों द्वारा समान रूप से शिक्षा की प्राप्ति को सुनिश्चित किया जा सके।
ii. लड़कियों की शिक्षा की गुणवत्ता तथा उन्हें विदयालय में बनाए रखना: सार्वजनिक विद्यालय खराब गुणवत्ता वाली शिक्षा के केंद्र बनते जा रहे हैं जहां समाज के वंचित तबकों के बच्चे, विशेषतः लड़कियां आती हैं और जो बड़ी संख्या में लड़कियों के स्कूल छोडने (ड्रॉपआउट) से भी जुड़े हैं। इसलिए सार्वजनिक स्कूलों में ढांचागत सुविधाओं को दुरुस्त किए जाने तथा शिक्षण की गुणवत्ता को सुधारने की आवश्यकता है। (स्व-अनुदित, अधिकृत हिन्दी अनुवाद अनुपलब्ध)

जाहिर है इन दस्तावेजों में महिला शिक्षा एवं लैंगिक समानता के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु राज्य की सक्रिय भूमिका की संकल्पना व प्रस्तावना की गई है। भारतीय समाज के संदर्भ में राज्य की भूमिका इसलिए भी और महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि भारतीय समाज मे पारंपरिक रूप से स्त्री विरोधी संस्कृति का दबदबा रहा है। एक आधुनिक और लोकतान्त्रिक राज्य से अपेक्षा रहती है कि वह अपने नागरिकों विशेषतः कमजोर तबकों के लिए विशेष उपबंध कर उन्हें जीवन का सार्थक अधिकार व मूलभूत समानता के अवसर उपलब्ध कराए।

4.2 उद्देश्य

इस पाठ को पढने के पश्चात आप-

1. महिला शिक्षा से जुड़े सरोकारों पर अपनी समझ बना सकेंगे.
2. महिला शिक्षा में आने वाली चुनौतियों को समझ पाएंगे.
3. महिला शिक्षा में पहुँच, नामांकन, अवरोधन और कुल उपलब्धि पर जेंडर सरोकारों पर अपनी समझ बना सकेंगे.

4.3 नामांकन एवं पहुँच का सवाल

महिला शिक्षा की बात करते हुये सबसे पहला ध्यान हमारा नामांकन और पहुँच के सवाल पर जाता है। शिक्षा की बात तो तब की जा सकेगी जब लड़कियां विद्यालय तक पहुँच पाएगी और उनका नामांकन होगा। अभी भी बहुत सारी लड़कियां की पहुँच से स्कूल बाहर है। इस कड़ी में हमें स्कूलों में लड़कियों के न पहुँच पाने के कारणों की पड़ताल करनी होगी।

पहुँच के सवाल में घर से विद्यालय की भौतिक दूरी काफी मायने रखती है। भारत जैसे पितृसत्तात्मक समाज मे जहां लड़कियों को घर से बाहर अकेले भेजना सही नहीं समझा जाता है घर से विद्यालय की भौतिक दूरी लड़कियों की पहुँच को कम करती है। बहुत सारी लड़कियां सिर्फ इसलिए स्कूल बीच मे ही छोड़ देती है क्योंकि उनके घर और विद्यालय के बीच दूरी है और इतनी दूरी तय करना उन्हें व उनके परिजनों को सुरक्षित नहीं लगता। लैंगिक सुरक्षा के सवाल के अतिरिक्त आज भी भारत के एक बड़े वर्ग के लिए भौतिक दूरी अतिरिक्त संसाधनों की मांग करती है जिसके संदर्भ में अधिकतर परिवार अपने न्यून संसाधनो में से खर्च करने में अपने को सांस्कृतिक/मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार नहीं पाते हैं। इन्हीं परिस्थितियों के कारण विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा अपनाई गई उन नीतियों का महत्व

और बढ़ जाता है जिनमें इस भौतिक दूरी को पाटने के उद्देश्य को ध्यान में रखा गया है। उदाहरण के तौर पर कुछ राज्य में स्कूली छात्राओं के लिए स्कूल आने जाने के लिए साइकल उपलब्ध कारवाई गई हैं। इसी तरह कुछ राज्यों में लड़कियों के स्कूल/कॉलेज आने जाने की यात्रा को सार्वजनिक परिवहन में मुफ्त रखा गया है।

लिंग भेद वर्गीय जातीय और धार्मिक असमानता से गूँथा हुआ है। महिलाओं पर इस तरह उत्पीड़न कई प्रकार से बढ़ जाता है। सबसे कमजोर कड़ी लड़कियों को ही देखा जाता है। हिसा कि स्थिति मे भी सबसे पहले मार इन्हे ही झेलनी होती है। जहां जहां सामुदायिक हिंसा के प्रकरण हुये हैं वहाँ का अनुभव यह बताता है कि हिंसा की मार झेल रहे समुदायों का डर सबसे पहले और सबसे ज्यादा लड़कियों/महिलाओं के जीवन को ही प्रभावित करता है। उदाहरण के तौर पर उनको स्कूल से निकलवा लेना, घर से बाहर न निकलने देना आदि।

स्कूलों मे सांस्कृतिक स्तर पर रूढ़िबद्ध व्यवहार कि शिकार महिलाएं होती है। समाजीकरण का स्कूली संस्कृति पर असर। इसमें दोनों तरह के प्रभाव काम करते हैं – वो जो इस अवधारणा पर आधारित होते हैं और इसे बल देते हैं कि दोनों लिंग जन्मजात रूप से अलग हैं तथा इन्हें अलग-अलग भूमिकायें ही निभानी चाहिएँ; और वो जो इसे एक कदम और आगे लेजाकर यह कहते हैं कि पुरुष महिलाओं से श्रेष्ठ हैं। उदाहरण के तौर पर एक तरफ स्कूलों में लड़के-लड़कियों, शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए परस्पर भिन्न भूमिकाएँ निर्धारित की जाती हैं वहीं दूसरी तरफ कुछ भूमिकाओं को इस मायने में एक लिंग के लिए आरक्षित व दूसरे के लिए वर्जित रखा जाता है कि वो श्रेष्ठ हैं या बेकार/कम महत्व की हैं। इनके जीते-जागते नमूने हम स्कूलों की दैनिक सभा, समारोह-आयोजन, पर्व-त्योहार के अवसरों तथा अनौपचारिक बातचीत के अलावा नैतिक वक्तव्यों/संबोधनों में भी देख सकते हैं। ये स्थिति स्कूलों की प्रगतिशील अथवा परिवर्तनकामी संभावनाओं पर गहरे सवाल खड़े करती है और चुनौती भी प्रस्तुत करती है।

राज्य द्वारा समय-समय पर अनेक कार्यक्रम चलाकर इस दिशा में प्रयास किया गया है जिससे कि लड़कियों की विदयालय मे उपस्थिती सुनिश्चित की जा सके। इसके तहत लड़कियों के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने विभिन्न स्तरों तक निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था भी की है। शिक्षा का अधिकार कानून इस दिशा मे लाया गया एक प्रभावी कानून है जो कानूनी रूप से 6 से 4 वर्ष तक के सभी बच्चों को निशुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान करता है। विभिन्न राज्यों व सरकारों द्वारा लड़कियों के लिए अलग से छात्रवृतियाँ, विद्यालय पोशाक, पुस्तकों-कॉपियों आदि के लिए अतिरिक्त सहायता राशि, साइकिल आदि प्रदान कर इस दिशा मे सकारात्मक कदम उठाए गए हैं।

शैक्षिक दस्तावेज़ों में जेंडर सरोकार

4.4 महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रुकावटों को दूर करने को जिनके कारण लड़कियां प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जायेगी। इस काम के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की जायेंगी, समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए जायेंगे और उनके कार्यान्वयन पर कड़ी निगाह रखी जायेगी। विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर खास जोर दिया जायेगा। लड़के और लड़कियों में किसी प्रकार का भेद-भाव न बरतने की नीति पर पूरा जोर देकर अमल किया जायेगा ताकि तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पारंपरिक रवैयों के कारण चले आ रहे लिंगमूलक विभाजन (सेक्स स्टीरियोटाइपिंग) को खत्म किया जा सके तथा गैर-परम्परागत आधुनिक काम-धंधों में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ सके। इसी प्रकार मौजूदा और नई प्रौद्योगिकी में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जायेगी। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 986)

समाज में लड़कों और लड़कियों के संदर्भ में प्रचलित सांस्कृतिक मूल्यों के कारण और महिलाओं की घरेलू कामों और प्रजनन की भूमिका के कारण भी लड़कियों की शिक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। महिलाएँ शिक्षा मे क्यों नहीं भाग ले पातीं इसके कुछ अन्य कारण नीचे दिये हैं- माता-पिता में लड़कियों को स्कूल भेजने के प्रति उपेक्षाभाव, उनमें लड़कियों के स्कूल में पढ़ाई के प्रति पूर्वाग्रह, उनके घूमने-फिरने पर (विशेष रूप से यौवनारम्भ के बाद बाहर निकलने पर) प्रतिबंध, छोटी उम्र में शादी और उन्हें महिलाओं के दायित्वों को संभालने का दबाव। इनके पीछे पितृतंत्रात्मक मूल्य और रवैया है जिसका हमारे समाज पर गहरा प्रभाव है। जिन समुदायों मे यह भेदभाव जितना अधिक होता है उतना ही यह कष्टदायक होता है, विशेष रूप से, कुछ अल्पसंख्यक समुदायों में यह कहीं अधिक है। गरीब परिवारों में छोटी लड़की की अधिक भूमिका और गृहस्थ में उसकी जिम्मेदारियाँ,स्कूल जाने में रुकावटें हैं। वर्तमान समाज में लड़के और लड़कियों में भेदभाव से शिक्षा प्रणाली के बहुत से पक्षों पर सीधा प्रभाव पड़ता है; जैसे- शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर लड़कियों की शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाओं का अभाव, लड़कियों के गैर-पारंपरिक कोर्सों में पहुँच न होना, पाठ्यचर्या के निर्धारण में भी लड़कियों के बजाय लड़कों को ध्यान में रखना, लड़कियों के प्रति अध्यापकों और प्रशिक्षकों का नकारात्मक रवैया, महिलाओं का उच्च पदों और निर्णय लेने वाली स्थिति में न होना। इसलिए, हमारी शिक्षा नीति उस बड़े सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भ को ध्यान में रखकर बननी चाहिए जिसका लड़कियों की शिक्षा पर प्रभाव है। (पृष्ठ 26) राममूर्ति समिति, 990

सामुदायिक अथवा निजी प्रयासों पर टीके छिटपुट उदाहरणों को छोड़ दें तो यह साफ हो जाता है कि भारत की अधिकतर लड़कियां सार्वजनिक स्कूलों के माध्यम से ही शिक्षा ग्रहण कर पातीं हैं। छात्राओं की शिक्षा के प्रति

सरोकार रखने वाले लोगों व संस्थाओं ने इस संदर्भ में राज्य पर ही दबाब बनाने को उचित माना। भारत का संविधान भी राज्य पर यह दायित्व डालता है कि वह समाज के कमजोर वर्गों के पक्ष में सार्वजनिक संसाधन उपलब्ध करवाएँ।

पिछले कुछ वर्षों में समाचारों में इन खबरों ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया है जहाँ कि बोर्ड परीक्षाओं में लड़कियों का लड़कों से बेहतर प्रदर्शन रहा है। इस परिघटना को कैसे देखा जाना चाहिए? क्या इससे यह साबित होता है कि लड़कियों ने बराबरी हासिल कर ली है? इसे पहुँच के सवाल से जोड़कर देखने की भी आवश्यकता है कि कितनी लड़कियां आगे तक बनी रहती है और कितनी उच्च शिक्षा या रोजगार मे आगे जा पा रही हैं। इससे तस्वीर का यह पहलू छिप जाता है कि इन परीक्षार्थियों में लड़कियों का अनुपात कितना था। दूसरी ओर लड़कियों में मनोविज्ञान के प्रदर्शन दबाब की परिघटना को भी दर्शाता है जिसके तहत लड़कियों का एक बड़ा वर्ग स्वयं को इस स्थिति में पाता है कि उन्हें शिक्षा के अगले स्तर पर जाने का मज़बूत दावा ठोकने के लिए लड़कों की तुलना में अपनी अतिरिक्त काबिलियत सिद्ध करनी पड़ती है। आखिर यह उनकी भावी शिक्षा के रास्तों के लिए जीवन मरण का सवाल होता है।

पहुँच के बाद भी काम के अवसरों पर बराबरी का सवाल बना रहता है। कुछ तो आर्थिक व्यवस्था और कुछ पारिवारिक संरचना ऐसी है कि यह असमानता बनी रहती है। चाहे वह पूर्व प्राथमिक शिक्षण व नर्सिंग के व्यावसायिक क्षेत्र हो चाहे सेवा क्षेत्र में रिसैप्शनिस्ट जैसे कार्य, यह समाज में व्याप्त सांस्कृतिक व पारिवारिक संरचना तथा मूल्यों से तय होता है कि शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी कार्य के अवसरों की उपलब्धता लिंग से प्रभावित होगी। साथ ही इंजीन्यरिंग और मेडिकल जैसे विषयों में प्रवेश के लिए महंगी कोचिंग की परिघटना यह साबित करती है कि वैधानिक और औपचारिक रूप से बराबरी के अवसर होने के बावजूद यह तय नहीं होता कि वास्तव में भी लड़के लड़कियों के बीच अवसर बराबरी से मिलेंगे। परिवारों में जहां महंगी फीस देकर कोचिंग दिलवाना लड़कों के लिए अधिक सहज निर्णय होता है वहीं लड़कियों के संदर्भ में यह इतना आसान और सहज नहीं होता है। इस प्रकार पहुँच, नामांकन एवं बनाए रखना अगर एक हद तक सुनिश्चित हो भी जाएँ तो उसके बाद भी सामाजिक भूमिका मे बराबर की भागीदारी का सवाल बना रहता है।

इस संदर्भ में आचार्य राममूर्ति समिति का निम्न कथन प्रासंगिक है जो उपरोक्त चर्चा का समेकन करता है:

स्कूल में लड़कियों के दाखिले में उनके बीच में स्कूल छोड़ देने की दर के पीछे केवल सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण ही जिम्मेदार नहीं है बल्कि हमारी नीति और प्राथमिकताएं भी उत्तरदायी हैं। उदाहरण के तौर पर हमारी वर्तमान शैक्षिक सुविधाएं कैसी हों, उसमें कितनी सामग्री हो और उसकी गुणवत्ता कैसी हो, ये सब

बातें शिक्षा नीति द्वारा निर्धारित होती है। उपर्युक्त संदर्भ में या तो यह लड़कियों की शिक्षा की समस्या को और अधिक बढ़ाएगी या उनकी शिक्षा शिक्षा में भागीदारी को सुविधापूर्ण बना सकेगी। (पृष्ठ 26-27)

4.5 अवरोधन

दिल्ली के स्कूलों के ताज़ा अनुभव यह बताते हैं कि जब प्रशासनिक नवाचार अथवा ई-गवर्नेंस के नाम पर प्रवेश प्रक्रिया को पहले से अधिक जटिल बना दिया जाता है तो आर्थिक रूप से कमजोर तबकों के लिए जो मुश्किलें पैदा होती हैं उनसे हताश होकर वो सबसे पहले अपनी बेटियों को आगे न पढ़ाने या घर बैठा लेने के विचार व्यक्त करते हैं। इससे साफ होता है कि शिक्षा ग्रहण करने के रास्ते में किसी भी प्रकार की परेशानी आने पर परिवार बेटे बेटी में से सबसे पहले किसकी शिक्षा के अवसरों को दाव पर लगाएंगे।

अवरोधन से पार पाने के लिए हम निम्नलिखित बातों का ध्यान रख सकते हैं और कदम उठा सकते हैं जिससे न सिर्फ लड़कियां स्कूल तक पहुंचे बल्कि समय के साथ अपना अध्ययन भी पूर्ण कर सकें।

- सर्वप्रथम उन कारणों की तलाश की जानी चाहिए जिनके कारण माता-पिता अपनी लड़कियों को स्कूल नहीं भेज पातें. गरीबी के अलावा जातीय कुंठा, असुरक्षा का वातावरण, अध्यापन में अरोचकता और स्कूल का अस्वच्छ एवं गन्दा होना आदि जैसे कारणों से भी लोग अपनी लड़कियों को स्कूल में नहीं भेजते या भेज पाते हैं।
- छोटी लड़कियों को स्कूल जाने के लिए घर के तमाम कामों से मुक्त करने के लिए परिवार के लोगों के लिए पानी, ईंधन और चारे की सुलभता को बढ़ाना होगा, नीति निर्माताओं को इस ओर ध्यान देना होगा। इसके अतिरिक्त शिक्षा को इस बात पर भी बल देना चाहिए कि गाँव मे सामाजिक वन क्षेत्र बनाने, पीने का पानी मुहैया करने और गाँव मे सार्वजनिक भूमि को हरा-भरा बनाने का काम केवल इसलिए न किया जाए कि इससे महिलाओं के जीवन की नीरसता समाप्त हो जाएगी, बल्कि इसका उपयोग लड़कियों के स्कूल जाने और स्कूल की पढ़ाई जारी रखने के साधन के रूप मे किया जाए।
- यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक स्कूल में पानी, शौचालय और शिक्षकों तथा छात्राओं के लिए सुविधाजनक स्थान, कुर्सी, मेज आदि कि व्यवस्था होनी चाहिए.

- सभी अध्यापक प्रशिक्षित, अपने विषय मे दक्ष, संवेदनशील और मेहनती हों. बच्चों कि मानसिकता को पहचानने वाले शिक्षकों को ही छात्र वर्ग आत्मीय मानने लगता है. अध्यापन शैली में रोचकता और सम्प्रेषणता का ध्यान विशेष रूप से रखा जाना चाहिए.
- पाठ्यक्रम सुरुचिपूर्ण वैज्ञानिक एवं बहुआयामी ज्ञान को विकसित करने वाला तथा जनतांत्रिक सिद्धांतों कि स्वीकार्यता से युक्त होना चाहिए. संप्रदायवाद, कट्टरवाद तथा संस्कृति के नाम पर किसी धर्म विशेष को बढ़ावा देने कि प्रवृति पाठ्यपुस्तकों में अंकित नहीं होनी चाहिए.
- प्रत्येक कक्षा में अध्यापक की मौजूदगी अनिवार्य हो और शिक्षक शून्य कमरे की भयावहता तथा एक अध्यापक सभी कक्षाओं की देखरेख करें जैसी शोचनीय स्थिति सर्वथा समाप्त होनी चाहिए.
- माता-पिता तथा अभिभावकों को समय-समय पर जागरूक किया जाना चाहिए कि वे अपने बच्चों को विद्यालय में भेजे तथा शिक्षा के प्रति उनका दृष्टिकोण सकारात्मक बने।

4.5 उपलब्धि

आंकड़े दिखाते हैं कि प्राथमिक से लेकर उच्चतर माध्यमिक तक सभी स्तरों में लड़कियों के नामांकन दर में वृद्धि हो रही है। नामांकन के स्तर पर ही सही एक सांख्यकीय समानता की तरफ हम बढ़ते हुये नज़र आ रहे हैं। हम मान सकते हैं कि इसे प्राप्त करने में एक ओर जहाँ राज्य की भूमिका रही है वहीं दूसरी तरफ जन दबाब व सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया ने भी इसमे योगदान दिया है। लेकिन जैसा कि हम अध्याय में ऊपर चर्चा कर चूकें हैं संख्याओं के पीछे की तस्वीर इतनी सपाट नहीं होती है और हमें इसे देखने के लिए गहराई मे उतरने की ज़रूरत है।

नीचे दी गई सारणी में हम इस क्षेत्र मे हुई उपलब्धि को देख सकते हैं।

Table 2.5.1: Girls enrolled as percentage of total enrolment and ratio of girls' enrolment to boys' enrolment by level of education (primary, upper primary, elementary and secondary education) (2000-01 to 2013-14)

Year	Enrolment of girls as percentage of total enrolment (%)			Ratio of girls' enrolment to boys' enrolment			Enrolment of girls as percentage of total enrolment (%)	Ratio of girls' enrolment to boys' enrolment	
	Primary	Upper primary	Elementary	Primary	Upper primary	Elementary	Secondary and higher secondary	Secondary	Higher secondary
2000-01	43.8	40.9	43.0	0.78	0.69	0.75	38.8	63	63
2001-02	44.2	41.7	43.5	0.79	0.72	0.77	39.7	65	66
2002-03	46.8	43.9	46.0	0.88	0.78	0.85	41.3	70	70
2003-04	46.7	44.1	46.0	0.88	0.79	0.85	41.1	70	70
2004-05	46.7	44.3	46.0	0.88	0.80	0.85	41.5	71	71
2005-06	46.6	44.6	46.1	0.87	0.81	0.85	41.9	73	72
2006-07	46.9	45.2	46.4	0.88	0.83	0.87	42.4	73	74
2007-08	47.5	45.8	47.0	0.91	0.85	0.89	43.4	77	77
2008-09	48.0	46.9	47.7	0.92	0.88	0.91	43.7	78	78
2009-10	47.8	46.5	47.4	0.92	0.87	0.90	44.6	81	81
2010-11	47.9	47.2	47.7	0.92	0.89	0.91	44.7	82	81
2011-12	48.4	48.6	48.4	0.94	0.95	0.94	--	--	--
2012-13	48.4	48.8	48.5	0.94	0.96	0.94	46.9	89	88
2013-14	48.2	48.6	48.3	0.93	0.95	0.94	47.1	89	89

Source: Statistics of School Education, 2007-08, MHRD, GOI; Educational Statistics at a Glance, 2011, MHRD, GoI; Statistics of School Education, 2010-11; U-DISE, NUEPA

उपरोक्त सारणी से दिखाई पड़ता है कि समय के साथ-साथ लड़कियों के नामांकन में वृद्धि हुई है और स्कूल छोड़ने की दर भी कम हुई है। राज्य द्वारा किया गया यह हस्तक्षेपकारी कार्य सराहनीय तो है मगर पर्याप्त नहीं। दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र में अभी भी लाखों बच्चे स्कूल से बाहर हैं जिनमे लड़कियों की एक बहुत बड़ी तादाद है। इसलिए आवश्यकता है कि राज्य ऐसे कदम उठाए जिससे सभी बच्चों की विद्यालय में उपस्थिती एवं नामांकन सुनिश्चित किया जा सके।

4.6 सारांश

स्पष्टतः लैंगिक भूमिका का समाजीकरण एवं लैंगिक-पूर्वाग्रहयुक्त प्रछन्न पाठ्यचर्या लड़कों एवं लड़कियों के लिए एक असमान शिक्षा को बढ़ाती है। सब बच्चों के लिए एक समान अधिगम का माहौल बनाने के लिए क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए? पहला, शिक्षकों को लैंगिक-पूर्वाग्रह की प्रवृति के प्रति सचेत किया जाना चाहिए। दूसरा, उन्हें

इस व्यवहार को परिवर्तित करने के लिए सहायता (सामग्री, प्रशिक्षण आदि) प्रदान की जानी चाहिए। और इस बात के प्रयास किए जाने चाहिए कि शैक्षिक सामग्री लैंगिक पूर्वाग्रह से मुक्त हो।

जहां पाठ्यपुस्तकें लैंगिक संवेदनशीलता का कुछ ध्यान रखती भी हों वहाँ विद्यालय एवं स्थानीय स्तर पर होने वाले मूल्यांकन यह तय कर देते हैं कि इनका प्रभाव न्यूनतम रहेगा। क्योंकि इनका परीक्षाओं के साथ कोई संबंध नहीं बनाया जाता है।

ब्राजीली शिक्षाविद पाउलो फ्रेरे के अनुसार कार्यान्वयन और सामाजिक गतिशीलता से जोड़े बिना साक्षरता बेमानी है। इसी तरह महिला शिक्षा व लैंगिक संवेदन्शीलता के मुद्दे पर भारत मे जो समझ विकसित हुई है उसका महत्व तभी होगा, जब उसे जेंडर के बारे में सामाजिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक समझ के परिप्रेक्ष्य में रखा जाए। इस संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अंतर्गत बने "शिक्षा के लक्ष्य" आधार पत्र का यह कथन प्रासंगिक है कि शिक्षा को मुक्त करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए अन्यथा अब तक जो कुछ भी कहा गया है वह अर्थहीन हो जायेगा. शिक्षा की प्रक्रिया को सभी प्रकार के शोषण और अन्याय से मुक्त होना पड़ेगा (जैसे गरीबी, लिंग भेद, जाति तथा सांप्रदायिक झुकाव) जो हमारे बच्चों को इस प्रक्रिया का हिस्सा बनने से वंचित करता है. (p. 5, शिक्षा के लक्ष्य, राष्ट्रीय फोकस समूह)
शिक्षा अपना अर्थ एक मुक्तिकामी भूमिका निभाने में ही प्राप्त करती है और इस विषय में लड़कियों के लिए सभी तरह की बराबरी का सवाल आज भी एक चुनौती की तरह खड़ा है। लैंगिक भेदभाव अथवा असमानता में जो विशेष बात है, जोकि इसे अन्य तरह के भेदभावों या ग़ैर-बराबरी से अलग करती है, वो इसका अदृश्य होना है। यह हमें या तो दिखाई नहीं देती या फिर हम इसे यह कहकर नकारते हैं की यह प्राकृतिक अंतरों पर टिकी है जिसपर हमारा कोई बस नहीं है तथा जो जायज हैं। तिस पर इन असमानताओं को एक लंबे इतिहास, धार्मिक विधान व रीति-रिवाजों का सहारा मिला हुआ है जोकि समाज में इन्हें एक स्वाभाविक तथ्य की हैसियत देता है।
लिंग आधारित भेदभावों के कारणों को यदि हम जानने का प्रयास करें तो हम पाते हैं कि इसका एक प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक समाज है. प्रोफेसर कृष्ण कुमार अपनी पुस्तक 'शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व' में लिखते हैं – "समाज में जिन तबकों का वर्चस्व है, वे शिक्षा और विशेषकर पाठ्यक्रम का इस्तेमाल यह सुनिश्चित करने में कर सकते हैं कि उनकी आवाज़ों के अलावा और सभी आवाजें इतनी नाकाफ़ी, कमज़ोर या बिगड़े रूप में आये कि उनकी अपील नकारात्मक हो जाये (पृष्ठ, 22)

यहाँ यह भी दृष्टिगोचर होता है कि अन्य असमानताओं की तरह लैंगिक अन्याय में भी एक सत्ता का संतुलन बनाए रखने का उद्देश्य है। इतिहास गवाह है कि एक विशेष वर्ग के लिए ऐसे सुविधाजनक सत्ता सम्बन्धों को सीधे चुनौती

देकर ही उन्हें अधिक न्यायसम्म्त बनाया जा सका है। अर्थात, न्याय पर आधारित लैंगिक संबंध समाज में अपने-आप स्थापित नहीं होते, बल्कि उनके लिए सतत व सचेत संघर्ष करना पड़ता है। क्योंकि वर्तमान की इन परिस्थितियों में एक वर्ग शोषक की भूमिका में है और उसे इस असमानता का भौतिक-मानसिक लाभ मिल रहा है इसलिए केवल हृदय-परिवर्तन के माध्यम से बदलाव की उम्मीद करना अनुचित है। हाँ, शिक्षा ज़रूर वो स्थल उपलब्ध कराती है जहां से बदलाव के कम-से-कम सांस्कृतिक बीज तो बोये ही जा सकते हैं। अगर हम इसका इतना भी इस्तेमाल नहीं करेंगे तो न सिर्फ हम शिक्षा व लड़कियों के साथ अन्याय करेंगे, बल्कि बदलाव के और अनिश्चित व वीभत्स रूपों के लिए भी हमें तैयार रहना होगा।

4.7 शब्दावली

1. **अवरोधन** – वे कारक और प्रक्रिया जिसके चलते लड़कियां विद्यालय जाने से वंचित हो जाती हैं।
2. **ड्रॉपआउट** – बीच में ही स्कूल छोड़ देने की परिघटना को ड्रॉपआउट के नाम से जाना जाता है। बहुत से विचारक व शिक्षाविद इसे पुशआउट कहते हैं जिसका आशय है कि बहुत से ऐसे कारक हैं जो बच्चों को विद्यालय से बाहर धकेल देते हैं बच्चा अपनी स्वेच्छा से विद्यालय नहीं छोड़ता बल्कि उसे इसके लिए बाध्य कर दिया जाता है।
3. **नामांकन** – नामांकन के अंतर्गत विद्यालय मे नाम जोड़ने को लिया जाता है। नामांकन के द्वारा हमें आंकड़े प्राप्त होते हैं कि कितने बच्चे स्कूल में हैं और कितने बाहर और उसी के आधार पर राज्य व नीति नियंता नीतियों का निर्माण करते हैं।
4. **पहुँच** – बच्चों द्वारा विद्यालय मे प्रवेश को पहुँच के दायरे में रखा जाता है। ऐसे बहुत से कारक हैं जो बच्चों की विद्यालय में पहुँच को रोकते हैं जिसकी चर्चा हम अध्याय मे कर चुके हैं।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एप्पल, माइकल(990). आइडियोलॉजी एण्ड करिकूलम. न्यूयार्कः रटलेज।
2. एप्पल, माइकल(993). ऑफिसियल नॉलेज: डेमोक्रेटिक एडूकेशन इन कन्सर्वेटिव एज. न्यूयार्कः रटलेज।
3. कारनोय, मार्टिन. (997). सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और शिक्षा. नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी.
4. कुमार, कृष्ण (998) शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व. दिल्लीः ग्रंथशिल्पी प्रकाशन.

5. ग्राम्सी, एंटोनियो (97). सेलेक्शन फ्रॉम प्रिजन नोटबुक, न्यूयॉर्क : इंटरनेशनल पब्लिशर्स.
6. जेंडर और शिक्षा रीडर- भाग (200). नई दिल्लीः निरंतर.
7. डीम, रोजमैरी (978). वूमेन एण्ड स्कूलिंग. लंदनः रटलेज एण्ड कीगन पॉल।
8. डीवी, जॉन. (998). शिक्षा और लोकतंत्र. नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी.
9. दुर्खीम, एमील. (2008). शिक्षा का स्वरूप और उसकी भूमिका. सुरेशचन्द्र शुक्ल एवं कृष्ण कुमार (सम्पादित) शिक्षा का समाजशास्त्रीय संदर्भ में (पृष्ठ 7-30). नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी.
10. दूबे, लीला (200). एन्थ्रोपोलोजीकल एक्सप्लोरेशन इन जेंडरः इण्टरसेक्टिंग फिल्डस्. नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन।
11. पार्सन्स, टोलकट . (200). सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्कूली शिक्षाः अमेरिकी समाज में इसके कुछ प्रकार्य. शिक्षा विमर्श, मार्च-जून (पृष्ठ 75-89). जयपुरः दिगन्तर.
12. फ्रेरे, पाउलो. (997). उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, नई दिल्लीः ग्रंथशिल्पी
13. बर्जर, पी. एवं लकमैन, टी. (99). दि सोश्यल कन्सट्रक्शन ऑफ़ रियलटीः ए ट्रीटाइज इन दि सोश्योलाजी आफ नालेज. दिल्लीः पैन्गुइन बुक्स.
14. ब्लेनकीन, जी. एम., एडवर्ड, जी. एवं केली, ए. वी. (992). चेंज एण्ड दि करिक्यूलम. लंदनः पाल चैपमैन पब्लिशिंग लिमिटेड.
15. भट्टाचारजी, नन्दिनी (202). आइने में अक्सः प्राथमिक विद्यालयों में लैंगिक (जेण्डर) समाजीकरण. शिक्षा विमर्श, मार्च-जून (पृष्ठ 2-32). जयपुरः दिगन्तर.
16. भारत सरकार (986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 986।
17. भोग, दिप्ता (2008). जेंडर एण्ड करिक्यूलम. ई. मैरी जाॅन द्वारा सम्पादित वूमैनस स्टडीज इन इंडियाः ए रीडर मे. पृष्ठ 352.360, नई दिल्लीः पैन्गुइन बुक्स।

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा में लड़कियों के नामांकन मे कमी के कारण बताइये।
2. राज्य की उन योजनाओं के उदाहरण दीजिये जिनसे लड़कियों के नामांकन में वृद्धि हुई है।
3. “शिक्षा को मुक्त करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए” इस कथन से आप क्या समझते हैं?

4. जेंडर के संदर्भ में टिप्पणी कीजिये जेंडर संवेनशीलता को बढ़ाने में स्कूल किस प्रकार अपना योगदान
5. धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियाँ बालिका शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित कीजिये। उदाहरणों सहित विश्लेषण कीजिये।

इकाई 5- पाठयक्रम में निहित जेंडर सम्बन्धी मुद्दे

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और संस्कृति के प्रतिच्छेदन के रूप में जेंडर -
5.4 पाठ्यक्रम में निहित जेंडर-भेद के मुद्दे
5.5 पाठ्यक्रम की अवधारणा
5.6 पाठ्यक्रम के प्रकार
5.7 जीवन कौशल व यौनिकता
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 अभ्यास प्रश्न-उत्तर
5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय शिक्षा- नीति(1986) में कहा गया है कि जिन सिद्धांतों पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना की गई है व हमारे संविधान में निहित है.(पैरा 3.4:2). राष्ट्रीय शिक्षक आयोग की माने तो लोकतंत्र, पंथ निरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय संविधान में वर्णित तीन सबसे महत्वपूर्ण मूल्य हैं. (सिंह. बिरेन्द्र रावत ,2016:30) इन सभी मूल्यों के शैक्षिक रूप में स्थापित होने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा से सम्बंधित सभी स्तरों को किसी भी तरह के भेद से निरपेक्ष बनाया जाए. शिक्षा के इन सभी उद्देश्यों को शिक्षार्थियों तक पहुँचाने की महत्वपूर्ण कड़ी है ‘पाठयक्रम’. ‘पाठ्यक्रम’ शैक्षिक प्रक्रियाओं का वह महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसमें बच्चे के जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों का समावेश किया जाता है. भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अपना एक औपनिवेशिक इतिहास रहा है. जिसमें प्राय: पाठ्यक्रम के स्तर पर इस तरह की चीजों का समावेशन होता रहा है जो इस ऐतिहासिक रूप से प्रदत मानसिकता को आगे ले जाती रहीं है. इसलिये शिक्षा नीति का प्रत्येक दस्तावेज ऐसे मूल्यों की चर्चा शिक्षा के उद्देश्यों के रूप में करता रहा है जो समानता और स्वतंत्रता के मूल्यों को व्यक्तिगत जीवन का हिस्सा बना सके. चुकि: हम भारत जैसे विविध देश

में हैं, जिसमें भौगोलिक क्षेत्रों से लेकर लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार, विश्वास आदि सांस्कृतिक विवधताओं के साथ-साथ जाति,धर्म व जेंडर सम्बन्धी भिन्नताओं का माहौल है. ऐसे विविध देश में शिक्षा में समानता और विविधताओं को समावेश करते हुए संविधान की गरिमा को बनाये रखना अपने आप में एक जटिल, संवेदनशील और गंभीर मुद्दा है. पिछले कुछ दशकों में भारत की शिक्षा व्यवस्था को लेकर हुए शोध यह दर्शाते हैं कि भारत के स्कूलों में जाति,धर्म,भाषा,क्षेत्र और जेंडर के आधार पर भेद-भाव होता है. इसी संदर्भ में नव-समाजशास्त्रीओं ने स्कूल की कक्षाओं को 'ब्लैक बॉक्स' की संज्ञा दी है, जिसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में ऐसी गतिविधियाँ की जाती हैं जो सामाजिक संरचना में यथास्थिति(STATUS-QUO) को बनाये रखने का काम करती हैं. स्कूलों में लिखित व व्यवहारिक पाठ्यक्रम में एक बहुत बड़ी खाई नज़र आती हैं जो जाति, जेंडर , भाषा,धर्म व क्षेत्र के आधार पर भेद-भाव को पुष्ठ करती हैं. यह भेदभाव अक्सर इतने विकराल रूप ले लेते हैं कि एक भयानक और क्रूर हिंसा को जन्म देते हैं. ऐसे में शिक्षा का यह उद्देश्य बन जाता है कि वह ऐसे नागरिकों का विकास करें जो बेहतर जीवन कौशलों से लेस हो और जीवन को बेहतरी और विकास की तरफ उन्मुख कर सकें. एक बेहतर जीवन के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ और विकसित होना बहुत आवश्यक है तभी एक बेहतर समाज का निर्माण संभव है . इसलिए शिक्षा में किशोर/किशोरियों के यौन सम्बन्धी मुद्दों पर संवाद भी अत्यंत आवश्यक है. भारतीय समाज में पारम्परिक रूप से किशोरों के यौन मुद्दों को चर्चा का विषय नहीं बनाया जाता. हमारे समाज में प्राय: इन मुद्दों को बेहद निजी माना जाता है और बातचीत के दायरों से बाहर रखा जाता है. जिसके चलते किशोरों में कई तरह की यौन समस्याएं व कुंठा पैदा हो जाती हैं. इसलिए किशोर/ किशोरियों के इन मुद्दों को शिक्षा के कार्यक्षेत्र में लाना बहुत आवश्यक है. पिछले पांच दशकों में शिक्षा से सम्बंधित लिखित दस्तावेज लगातार व्यवस्था , स्कूल-प्रशासन व शिक्षकों को यह बताते रहें हैं कि स्कूली शिक्षा इन भेदों और मुद्दों के प्रति संवेदनशील रहें परन्तु व्यवहारगत स्तर पर यह लक्ष्य अभी भी पहुँच से कोसों दूर हैं. इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्कूल में शिक्षण कर रहें और भविष्य में शिक्षण करने वाले भावी शिक्षकों का इन विविधताओं, चुनौतियों और मुद्दों को लेकर उन्मुखीकरण किया जाये. शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लिखित पाठ्यक्रम जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है शिक्षकों को इस दिशा में शिक्षित करना कि व पाठ्यक्रम के व्यवहारगत स्तरों पर इन सभी चुनौतियों व जेंडर भेद के मुद्दों को पहचान पाए व उनके प्रति संवेदनशील हो पाए. प्रस्तुत इकाई में इन्ही संदर्भों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम और जेंडर भेद के मुद्दों को जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्र आदि के भीतर बताने का प्रयास किया गया है. इसके साथ ही पाठ्यक्रम में निहित जीवन कौशलों को समझने और बताने का प्रयास किया गया है.

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत पाठक

1. जेंडर सम्बन्धी अवधारणा के जाति, धर्म, वर्ग व क्षेत्र के संस्थाबद्ध चरित्र को जान पाएंगे.
2. पाठ्यक्रम की लिखित और प्रछन्न (hidden) अवधारणा को जान पाएंगे.
3. पाठय-पुस्तकों और कक्षागत अभ्यासों में निहित जेंडर के मुद्दों को पहचान पाएंगे.
4. पाठ्यक्रम में निहित जीवन कौशलों और यौनिकता के मुद्दों को जान सकेंगे.

5.3 जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और संस्कृति के प्रतिच्छेदन के रूप में जेंडर -

भारतीय समाज में जेंडर भेद के मुद्दें केवल परिवार में होने वाले समाजीकरण से आत्मसात की गई अवधारणा तक ही सिमित नहीं है बल्कि जीवन पर्यंत इनका अभ्यास चलता रहता है. जेंडर आधारित व्यवहार भातीय समाज में संस्थाबद्ध तरीके से संचालित होते हैं. यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि संस्कृतिजन्य लिंग भेदों के विषय में लगभग निरपवाद रूप से यह माना जाता है कि उनका मूल जीवविज्ञान में है.उन्हें प्राकृतिक व्यवस्था का हिस्सा समझा जाता है. (दुबे लीला , 199). यह भेद प्रक्रिया जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्रीय स्तर समान रूप से चलती है. भारतीयों की पहचान कई प्रकार से होती हैं. संदर्भ से ही यह निर्धारित होता है कि वह अपनी पहचान किस रूप में कर सकता है कुछ संदर्भों में धर्म,निवास स्थान या परिवार सूचक नाम पर्याप्त हो सकता है.(दुबे , 1985:43), अर्थात भारतीय व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान उसके धर्म, जाति, क्षेत्र आदि के आधार पर भी तय होती होती है. पाठ्यक्रम में जाति, धर्म, वर्ग और क्षेत्रीयता की संकल्पनाओं में निहित जेंडर के मुद्दों को समझने से पूर्व आइये इन अवधारणाओं की समझ को स्पष्ट कर लें.

i. **जाति की अवधारणा** – जाति को अंग्रेज़ी में सामान्यत: कास्ट (cast) कहते हैं. यह एक प्रकार की व्यवस्था है जिसमें सामाजिक ढांचें में लोगों के समूहों को स्तरों में वर्गीकृत किया जाता है. भारत में जातियां जन्म के आधार पर की जाने वाली समान आनुष्ठानिक प्रस्थिति के आधार पर वर्णों में बंटी होती हैं. जाति शब्द का इस्तेमाल उस अन्तर्विवाही समुदायों के लिए किया जाता है जिसकी आनुष्ठानिक प्रस्थिति कमोबेश परिभाषित है तथा जिसके साथ कोई व्यवसाय पारम्परिक तौर पर जुड़ा हुआ है. मुसलमानों में स्थिति कुछ भिन्न है. नमाज़ अदा करने के लिए मस्जिदों में कोई प्रतिबन्ध नहीं है और अछूत प्रथा स्पष्ट नहीं है. भारतीय मूल के धर्मों – जैन, बौध तथा सिख – में जाति के जारी रहने के साक्ष्य है. (वही:47)

ii. **वर्ग से तात्पर्य** – वर्ग से तात्पर्य उस सामाजिक समूह से है जो किसी सामाजिक ढांचे में सामान शक्ति व सामर्थ्य को साँझा करते हैं. यह अलग-अलग सामाजिक समूहों के बीच शक्ति व समृद्धि का बंटवारा है.

iii. **संस्कृति की अवधारणा** – संस्कृति का अर्थ है – 'जीवन जीने का तरीका(way of living). समाजशास्त्रीय रूप से संस्कृति का अर्थ है – सामाजिक समूहों के साँझा किये जाने वाले विश्वास, व्यवहार और सामान्य चरित्र. संस्कृति के माध्यम से लोग स्वयं के मूल्यों को परिभाषित करते हैं. संस्कृति के दो रूप होते हैं पहला भौतिक और दूसरा अभौतिक.

a. **भौतिक संस्कृति** – भौतिक संस्कृति से अभिप्राय किसी सामजिक समूह के भौतिक प्रतिक चिन्हों से है जो उसकी पहचान को परिलक्षित करते हैं. जैसे – भाषा, भेष-भूषा व दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाली वस्तुए.

b. **अभौतिक संस्कृति** – अभौतिक संस्कृति से अभिप्राय किसी सामाजिक समूह विशेष की मान्यता और विश्वासों से हैं. जैसे किसी समुदाये विशेष की द्वरा पुरे किये जाने वाले रिवाज आदि.

iv. **क्षेत्रीयता की अवधारणा** – क्षेत्रीयता की अवधारणा से अभिप्राय एक ऐसे क्षेत्र का वासी होने की भावना से है जिसमें एक क्षेत्र विशेष से सजातीय होने की भावना जुडी होती है.यह क्षेत्र अपने पडोसी क्षेत्र से सांस्कृतिक रूप से भिन्न होते हैं जैसे – आदिवासी समूह.

v. **संस्थाएं** – संस्थाएं सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कार्य करती हैं . यह सामाजिक व्यवस्था के ढांचें का सञ्चालन करने व समुदायों के व्यक्तियों के व्यवहार को अनुशासित व नियंत्रित करती हैं. धर्म, जाति व जेंडर की संकल्पनायें सामाजिक संस्थाओं का ही रूप हैं जो समाज में किसी व्यक्ति के व्यवहार को सामाजिक संरचनाओं के हिसाब से संचालित और नियंत्रित करती हैं.

5.4 पाठ्यक्रम में निहित जेंडर-भेद के मुद्दे

पाठ्यक्रम में जेंडर- भेद के मुद्दों को समझने के लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम की अवधारणा को समझा जाये.

5.4.1 पाठ्यक्रम की अवधारणा

पाठ्यक्रम से अभिप्राय उन सभी शैक्षिक गतिविधियों से जिसमें बच्चे के सभी अनुभवों को समाहित किया जाता है. इसकी कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

- Mkuchu(2004) – पाठ्यक्रम से अभिप्राय उन सभी योजित गतिविधियों से है. जिन्हें एक स्कूल अपने अधिगम कर्ता के लिए सुनिश्चित करता है. इसके लिए पाठ्यक्रम में अनुभव कर्ता के प्रत्येक अनुभव को सम्मिलित किया जाता है.

- Tanne(1990)पाठ्यक्रम एक प्रकार का योजित दिशानिर्देशन से तैयार किया गया है जिसमें सीखने अनुभव व अभीष्ट सीख के आउटकम स्कूल में ज्ञान के निर्माण व अनुभवों में निर्मित व व्यवस्थित होते हैं.
- Walker(1990) – पाठ्यक्रम की मौलिक अवधारणा में निम्न बातें शामिल होती है –
  - विषय- वस्तु (content) – जिसमें अवधारणायें, विषय व थीम्स सम्मिलित होती हैं.
  - उद्देश्य (objectives) – सामान्यत: इन्हें व्यक्तिगत, सामाजिक व बौद्धिक श्रेणियों में बांटा जाता है.
  - संगठन(organization) – यह योजनाओं . अवसर (scope) और क्रम पर आधारित होती है. संगठन को मजबूत और खुला दोनों तरह से रखा जाता है.

सार रूप में पाठ्यक्रम किन्ही योजित गतिविधियों का संकलन है जिन्हें किसी शैक्षिक उद्देश्य के अंतर्गत तैयार किया जाता है व लागू किया जाता है. यह उद्देश्य हैं – विषय वस्तु जिसमें क्या पढाया जाना है और ज्ञान , कौशल और अभिरुचियों का विकास जिनको ध्यान में रखकर ही विषय वस्तु , शैक्षिक विधियाँ, पठन सामग्री व मूल्यांकन प्रक्रिया का निर्धारण किया जाता है.

5.4.2 पाठ्यक्रम के प्रकार

पाठ्यक्रम को मुख्यतः निम्न भागों में बांटा जा सकता है.

i. **औपचारिक (Official) पाठ्यक्रम** – जो प्रत्यक्ष और लिखी होता है.
ii. **पढाया गया (The tought) पाठ्यक्रम** – तैयार किये गए पाठ्यक्रम को शिक्षक द्वरा पढाया जाना. जिसमें पाठ्यक्रम की दिशा निर्देशन के अनुसार प्रत्यय व विषय – वस्तु का कक्षाओं में आना. जिसमें शिक्षण, परिवेश, शिक्षण रणनीतियां व शिक्षण सामग्री आती है. इस प्रक्रिया में लिखित पाठ्यक्रम को बच्चों तक संचारित किया जाता है.
iii. **सीखा गया (learned) पाठ्यक्रम** – इस तरह के पाठ्यक्रम से अभिप्राय नियत या अनियत पाठ्यक्रम से अधिगम कर्ताओं ने क्या सीखा. इस पाठ्यक्रम में देखा जाता है कि बच्चों ने कक्षा में क्या सिखा, कैसे सीखा और वे सीखे हुए कैसे लागू करेंगे व उस सीखे गए ज्ञान का संगठन कैसे करेंगे. यहाँ शिक्षण-अधिगम को देखा जाता है.

iv. **प्रच्छन्न / छिपा पाठ्यक्रम** – इस पाठयक्रम से अभिप्राय ऐसे पाठ्यक्रम से है जो कही लिखित नहीं होता लेकिन स्कूल की गतिविधियों में परोक्ष रूप से शामिल होता है. (Dwyer 1982 and Print 1987) के अनुसार पाठ्यक्रम के औपचारिक व लिखित रूप से इतर भी एक रूप है जिसे ‘छिपा पाठयक्रम’ कहा जाता है. इस तरह के पाठ्यक्रम के अनियत प्रभाव शामिल होते हैं परन्तु यह कभी स्पष्ट कहें नहीं जाते. इसमें सीखने के अनौपचारिक तत्व शामिल होते हैं. छिपा पाठ्यक्रम नॉन अकादमिक व स्थापित मान्यताओं व अधिगम उत्पादों को आकार देता है.

(Witt(1997) ने बताया कि छिपा पाठ्यक्रम एक प्रकार का शक्तिशाली तरीका है जो सूक्ष्म रूप से शिक्षक और छात्रों को प्रभावित करता है. इन सूक्ष्म रूपों के प्रति शिक्षक व शिक्षार्थी सचेत भी नहीं होते हैं. छिपा पाठ्यक्रम एक समय पर उद्देशित पाठ्यक्रम से अलग होता है. यह स्कूल की सामान्य और विशेष प्रक्रियों में व्यक्त होता है. आइये अब कुछ उदहारण की मदद से छिपे पाठ्यक्रम के तत्वों को पहचानने का प्रयास करते हैं –

यहाँ कुछ ऐसी घटनायें दी गई हैं जिन्हें संभवतः आपने अपने शूल के समय या आस-पास के स्कूल के परिवेश में होते हुए देखा होगा-इन्हें ध्यान से पढ़िए और सोचिये -

i. स्कूल में सुबह प्रार्थना सभा के दौरान लड़के व लड़कियों का अलग-अलग पंक्तियों में खड़ा होना.
ii. कक्षा में बैठने के दौरान लड़के व लडकियों की अलग- अलग व्यवस्था का होना .
iii. स्कूल में साज सज्जा के कार्य सामन्यत: लड़कियों द्वरा किया जाना.
iv. स्कूल में भरी भरकम सामान्यत: लड़कों द्वरा किया जाना.
v. स्कूल में राष्ट्रीय त्योहारों के अतिरक्त किन त्योहारों को विशेष रूप से मनाया जाता है.
vi. स्कूल में जो बच्चे उनके घर में बोली जाने वाली भाषा का इस्तेमाल करते हैं उनको किस तरह से देखा जाता है.
vii. स्कूल में जब छात्रवृति के बटवारे के लिए ‘आरक्षित’ श्रेंणी के छात्रों/छात्राओं को किस तरह का संबोधित किया जाता है.
viii. स्कूल में गृह विज्ञान का विषय कौन से बच्चे ले सकते हैं. आदि- आदि .

जब इन घटनाओं पर विचार करेंगे तो समभवत : इस तरह के जबाव पाए कि सभा में लड़के व लड़कियों की पंक्तियाँ अलग – अलग बनाई जाती है, कक्षा में लड़के व लड़कियां अलग-अलग बैठती हैं , भारी भरकम कार्य लड़के करते हो और लड़कियां साज सज्जा के कार्य करती थी , स्कूल में प्राय : उन त्योहारों को मनाया जाता हो जिस त्यौहार

को मनाने वाले शिक्षक व बच्चें ज्यादा हो और अल्पसंख्यक वर्ग के त्यौहार नहीं मनायें जाते हो.स्कूल में जो बच्चें अपने घर पर बोली जाने वाली भाषा उसका का प्रयोग करते हैं उन्हें व्यवहारिक रूप से कमतर होने का बोध किया जाता हो.

छात्रवृति वितरण के समय बच्चों को उनकी जाति के आधार पर 'निम्न' होने का बोध कराया जाता हो और गृह विज्ञान विषय को केवल लड़कियों के लिए अनिवार्य किया जाता हो.

यह कुछ ऐसी घटनायें हैं जो संभवतः आपने अपने स्कूल के दिनों में या सामान्यत: स्कूलों की दैनिक प्रक्रिया में अवलोकन की हो. इस तरह का व्यवहार किसी इस राष्ट्रीय नीतिगत व दिशानिर्देशक दस्तावेज में लिखित नहीं हैं लेकिन व्यवहारगत रूप से स्कूल में इस तरह के व्यवहार को जा सकता हैं.स्कूल में व्यवहारगत स्तर पर की जाने वाली ये चीज़े समाज की पारंपरिक मान्यताओं को ही पुष्ट करती हैं. यदि जेंडर भेदभाव के संदर्भ में बात करें तो स्कूल में होने वाली दैनिक क्रियाओं से लेकर पाठ्यपुस्तकों की विषय वस्तु, चित्र और भाषा में यह भेद दिखाई देता है – यदि आप 2005 के पहले की किसी भी पुस्तक को देखें तो आप इस अंतर स्वयं भी देख सकते है. जिनमें आप देख पायेगें विशेषत: भाषा की पाठय पुस्तकों में पुरुषों से सम्बन्धित कहानियां , जीवनियाँ व वृतांत है, इसके अतिरिक्त 'पुरुषत्व' (masculine) चित्र अधिक हैं. जो कक्षा और शिक्षा के क्षेत्र में 'लड़की' व 'स्त्रियों' के स्थान को सीमित करती हैं और

जेंडर पूर्वाग्रह और मान्यताओं को बढ़ावा देती हैं प्राय:पाठ्य-पुस्तकों से किसी विशेष समूह को अदृश्य रखा जाता है और महिलाओं को भी अदृश्य रखा जाता है.(Schau; 1994) , पाठ्य-पुस्तकें पूर्वाग्रहों से भरी होती हैं जिनमें पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का चित्र कम होता है. इस तरह लगातार महिलाओं का बहिष्करण होता रहता है .(Koza; 1994)

अधिकांश देशों की 51 प्रतिशत नागरिक स्त्रियाँ हैं और उन्हें ही पाठ्य-पुस्तकों से बाहर रखा जाता है (Yin,;1990).इस प्रकार छिपा पाठ्यक्रम गतिविधयों व पाठ्य –पुस्तकों के माध्यम से तमाम तरह से यथास्तिथि(अर्थात समाज के ढांचे को ज्यों का त्यों बनाये रखना) को स्थापित करने का कार्य करता है. जैसे की माइकल एप्पल ने अपने लेख 'आइडियोलॉजी एंड करिकुलम' में कहा है कि – छिपा पाठ्यक्रम पूंजी वादी व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने में मदद करता है.(1982)

5.5 जीवन कौशल व यौनिकता

जीवन कौशलों से तात्पर्य उन कौशलों से है जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन व परिवेश में मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ और सामाजिक व्यवहारों को विकसित करने में सहायक होते हैं जैसे – स्वयं की क्षमताओं को समझना, दूसरों से जुड़ना, सहयोग, जिम्मेदारी और स्वायत्ता व अध्यात्म आदि ऐसे जीवन कौशल हैं जो व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक रूप से संतुलित होने में सहायक होते हैं . स्कूल में जीवन कौशलों की शिक्षा द्वंद और असंतुलित होते किशोर जीवन को स्कूल में स्वास्थ्य और कल्याण को प्राप्त करने में सहायक हो.आज विश्व का स्वरूप तेजी से बदल रहा है. वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं मिडिया के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं जिससे हमारा युवा वर्ग सर्वाधिक प्रभावित हो रहा है. विकास वादी मनोविज्ञानिको ने मानव के नैतिक, सामाजिक,संज्ञानाताम्क, भावात्मक तथा शारीरिक विकास की ही तरह 'यौन विकास' को मौलिक एवं सार्वभौमिक स्वीकार किया हैं. किशोरावस्था में होने वाले यौन विकास का प्रभाव व्यक्तित्व के सभी पक्षों पर पड़ता है.(अरोड़ा.पंकज 2012;15,21).जीवन के विकास में किशोरावस्था एक ऐसा निर्णायक क्षण है जहाँ बच्चों की रुचियाँ बनती हैं. विषयों का चयन तय होता है.व्यावसायिक अभिरुचियाँ तय होती हैं. इन सबके के साथ एक महत्वपूर्ण परिवर्तन इस अवस्था में आता वह है किशोर/ किशोरियों में आने वाले शारीरिक और संवेगात्मक परिवर्तन. इस अवस्था में अपने से विपरीत जेंडर के प्रति आकर्षण होने शुरू हो जाते हैं. इस अवस्था में बच्चे/ बच्चियां कई तरह के मानसिक और शारीरिक संवेगों से

गुज़रते हैं और कई बार उचित दिशा न मिलने पर वह हिंसा का सहारा लेते हैं, मानसिक तनाव में रहते हैं व कुंठा ग्रस्त हो जाते हैं. इसलिए पाठ्यक्रम में यौन सम्बन्धी मुद्दों पर शिक्षा और जीवन कौशलों की शिक्षा का होना अनिवार्य बन जाता है.

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने जेंडर को एक सामाजिक संस्था के रूप में जानते हुए यह जानने का प्रयास किया कि किस तरह सामाजिक इकाई के रूप में परिवार रूपी सामाजिक संस्था जेंडर भेद को प्राथमिक समाजीकरण के माध्यम से व्यक्तियों की पहचान का हिस्सा बनाती है. इस प्रक्रिया में स्कूल और छिपा पाठ्यक्रम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. स्कूल में होने वाली गतिविधिया प्राय : जेंडर भेदों से भरी होती हैं जो जेंडर सम्बन्धी पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देती है और समाज में सामजिक- सांस्कृतिक पुनुरुत्पादन करती हैं तथा यथा-स्थिति को बनाये रखने में योगदान देती हैं. इसलिए आवश्यक है की पाठ्यक्रम में निहित उन तमाम बिदुओं को पहचाना जाये जो प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से

स्कूल में सामाजिक- सांस्कृतिक रूप से विभेदीकरण को बढ़ावा देते हैं. इस इकाई में जीवन कौशल के रूप में शिक्षा और यौन शिक्षा के शैक्षिक महत्व को भी समझाने का प्रयास किया गया.

5.7 शब्दावली

1. **जाति**-जाति एक सामाजिक व्यवस्था है जिसमे विशेष सामाजिक समूह श्रेणीबद्ध होते हैं.
2. **संस्था** – सामाजिक ढांचे में व्यक्ति विशेष के व्यवहारों को समुदायों के अनुसार अनुशासित और नियंत्रित करने की व्यवस्था
3. **क्षेत्रीयता** – एक भौगोलिक क्षेत्र विशेष में सजातीय होने की भावना
4. **वर्ग** – वर्ग से तात्पर्य उस सामाजिक समूह से है जो किसी सामाजिक ढांचे में सामान शक्ति व सामर्थ्य को साँझा करते हैं. यह अलग-अलग सामाजिक समूहों के बीच शक्ति व समृद्धि का बंटवारा है.
5. **पाठ्यक्रम**- पाठ्यक्रम एक प्रकार का योजित दिशानिर्देशन से तैयार किया गया है जिसमें सीखने अनुभवों अभीष्ट सीख के आउटकम को स्कूल में ज्ञान के निर्माण व अनुभवों में निर्मित व व्यवस्थित होते हैं.
6. **छिपा पाठ्यक्रम**- पाठयक्रम से अभिप्राय उस पाठ्यक्रम से है जो कही लिखित नहीं होता लेकिन स्कूल की गतिविधियों में परोक्ष रूप से शामिल होता है.
7. **जीवन कौशल** – जीवन कौशलों जो एक बेहतर सामाजिक स्वस्थ्य और मानसिक संतुलन के लिए आवश्यक होते हैं.

5.8 अभ्यास प्रश्न-उत्तर

1. सामाजिक संस्था के रूप में (जेंडर) की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये.

   उत्तर - जेंडर आधारित व्यवहार भातीय समाज में संस्थाबद्ध तरीके से संचालित होते हैं. यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि संस्कृतिजन्य लिंग भेदों के विषय में लगभग निरपवाद रूप से यह माना जाता है कि उनका मूल जीवविज्ञान में है.उन्हें प्राकृतिक व्यवस्था का हिस्सा समझा जाता है. यह भेद प्रक्रिया जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्रीय स्तर समान रूप से चलती है. भारतीयों की पहचान कई प्रकार से होती हैं. संदर्भ से ही यह निर्धारित होता है कि वह अपनी पहचान किस रूप में कर सकता है कुछ संदर्भो में धर्म,निवास स्थान या परिवार सूचक नाम पर्याप्त हो सकता है. अर्थात भारतीय व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान उसके धर्म, जाति, क्षेत्र आदि के आधार पर भी तय होती होती है और इन सभी संस्थाओं के भीतर जेंडर आधारित भेद व्याप्त होता है.
2. प्रश्न 2. पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर -पाठ्यक्रम किन्ही योजित गतिविधियों का संकलन है जिन्हें किसी शैक्षिक उद्देश्य के अंतर्गत तैयार किया जाता है व लागू किया जाता है. यह उद्देश्य हैं – विषय वस्तु जिसमें क्या पढाया जाना है और ज्ञान , कौशल और अभिरुचियों का विकास जिनको ध्यान में रखकर ही विषय वस्तु , शैक्षिक विधियाँ, पठन सामग्री व मूल्यांकन प्रक्रिया का निर्धारण किया जाता है.

3. छिपे पाठ्यक्रम की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - पाठयक्रम से अभिप्राय उस पाठ्यक्रम से है जो कही लिखित नहीं होता लेकिन स्कूल की गतिविधियों में परोक्ष रूप से शामिल होता है.

4. जीवन कौशलों व लैंगिकता के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये .

उत्तर - जीवन कौशलों से तात्पर्य उन कौशलों से है जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन व परिवेश में मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ और सामाजिक व्यवहारों को विकसित करने में सहायक होते हैं जैसे – स्वयं की क्षमताओं को समझना, दूसरों से जुड़ना, सहयोग, जिम्मेदारी और स्वायत्ता व अध्यात्म आदि ऐसे जीवन कौशल हैं जो व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक रूप से संतुलित होने में सहायक होते हैं . स्कूल में जीवन कौशलों की शिक्षा द्वंद और असंतुलित होते किशोर जीवन को स्कूल में स्वास्थ्य और कल्याण को प्राप्त करने में सहायक हो.

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीनिवासन एम.एन (1967), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन ,राजकमल प्रकाशन , नयी – दिल्ली .
2. कुमार कृष्ण (2010), कल्चर, स्टेट एंड गर्ल्स: एन एजुकेशनल पर्सपेक्टिव, इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली वोलुम 17,
3. कुमार कृष्ण (2016), स्टडिंग चाइल्ड हुड इन इंडिया , इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली , वोलुम 23
4. कुमार कृष्ण (2014), चूड़ी बाज़ार में लड़की , राजकमल प्रकशन, दिल्ली .
5. दुबे एस.सी. (1985), भारतीय समाज , नेशनल बुक ट्रस्ट , नई दिल्ली
6. दुबे लीला(1988), ओन द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ जेंडर: हिन्दू गर्ल्स इन पेट्रीलिनेअल इंडिया, , इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली वोलुम 23, संख्या 18.
7. बर्क लौरा (2006), चाइल्ड डेव्लोपमेंट, पिअरसन एजुकेशन, साऊथ एशिया.
8. राष्ट्रीय पाठ्य चर्या (2005), एन.सी.इ.आर.टी. नई दिल्ली.

9. आधार पात्र
10. माइकल एप्पल
11. मोहमद हुसैन (2015), Analysis of Gender as Hidden Curriculum in primary urdu language text books jammu and Kashmir. Cie, department of education, delhi university, delhi .
12. अरोड़ा पंकज (2012), विद्यालयों में यौन शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 15,21
13. लखानी सुजाता (2001). STRESS MANAGEMENT FOR ADOLSCENT GIRLS : A LIFE SKILLS APPROACH , CIE, DELHI

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. छिपे पाठ्यक्रम किस लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा देता है? एक शिक्षक / शिक्षिका के रूप में छिपे पाठ्यक्रम को समझने के शैक्षिक निहितार्थ बताइए.

इकाई 6- यौन उत्पीड़न के निवारण हेतु कानून एवं पहल

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 भारतीय दंड संहिता (IPC) के अंतर्गत लैंगिक हिंसा/उत्पीड़न से संबन्धित धाराएँ

6.4 बलात्कार संबन्धित कानून व जानकारियां

6.5 महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013

6.6 बाल यौन शोषण संरक्षण अधिनियम, 2012 (POCSO Act, 2012)

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार “राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।”

अनुच्छेद 15 (1) के अनुसार “राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।”

अनुच्छेद 15 (3) कहता है: “इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।”

अनुच्छेद 16 (1) के अनुसार “राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबन्धित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी” व 16 (2) के अनुसार “राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा।“

अनुच्छेद 21 के अनुसार “किसी व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।“ सर्वोच्च न्यायालय के कई फैसलों ने यह स्थापित किया है कि

प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता में गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार तथा अपनी पसंद के पेशे को चुनने का अधिकार भी सम्मिलित है। संविधान के इसी दर्शन के अंतर्गत कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न का अर्थ होगा किसी को उसके जीवन एवं स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित रखना।

यौन उत्पीड़न क्या है ?

इस अध्याय में हम यौन उत्पीड़न और उससे जुड़े कानूनों व पहलों पर चर्चा करेंगे। आगे बढ़ने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'यौन उत्पीडन' से हमारा आशय क्या है। महिला विकास निगम, बिहार के एक पर्चे के अनुसार "किसी भी तरह का भेदभाव, बहिष्कार, अपमानजनक या अनादरपूर्ण टिप्पणी या कथन जो किसी की गोपनीयता और गरिमा का उल्लंघन करता है यह यौनिक उत्पीड़न कहलाता है, वह अनुचित और गैरकानूनी है। यौनिक उत्पीड़न महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ गंभीर अपराध है। यौनिक हिंसा के अंतर्गत ये सभी अनचाहे व्यवहार आते हैं: शारीरिक स्पर्श, यौनिक संवाद, यौन इच्छापूर्ति की माँग या अनुरोध, अश्लील फिल्म या पुस्तक दिखाना, किसी तरह का मौखिक या अमौखिक आचरण जो यौनिक प्रकृति का हो, जिससे आप परेशान होते हैं, आपको चोट पहुंचती है या हीन भावना महसूस करते हैं।"

संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा में यौनिक हिंसा को प्रमुखता से रखा है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा के उन्मूलन पर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र के अनुच्छेद 1 में महिला हिंसा की परिभाषा के अंतर्गत "लिंग आधारित हिंसा का कोई भी कार्य जिसका परिणाम है अथवा जिसमे महिलाओं को शारीरिक, यौनिक या मनोवैज्ञानिक पीड़ा होने की सम्भावना हो और जिसमें निजी या सार्वजानिक क्षेत्र में, धमकी, दबाव या स्वतंत्रता का जबरन हनन करने वाले" कार्यों को रखा गया है।

बहुचर्चित विशाखा बनाम राजस्थान राज्य केस के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार "यौन भावना से संचालित महिला की इच्छा के विरुद्ध किए गए व्यवहार को यौन प्रताड़ता माना जाएगा"

यौन उत्पीड़न को समाज में एक ऐसे अपराध के रूप में देखा जाता है जिसे कई कारणों से रिपोर्ट नहीं किया जाता है। अक्सर विभिन्न सांस्कृतिक-सामाजिक-आर्थिक कारणों से पीड़ित महिला या लड़की व उसके परिवार तथा नजदीक के लोग इसे बहुत तवज्जो नहीं देते हैं और 'सामान्य' घटना मानकर छोड़ देते हैं। इस सन्दर्भ में आवश्यक है कि पीड़िता को आवश्यक भावनात्मक, कानूनी, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सहयोग प्रदान किया जाए।

6.2 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययनोपरांत आप-

1. यौन उत्पीड़न के बारे में अपनी समझ विकसित कर पाएंगे।
2. यौन उत्पीड़न से सम्बंधित विभिन्न कानूनों व पहलों के बारे में जान सकेंगे।
3. यौन उत्पीड़न व इससे जुड़े मुद्दों पर स्वयं संवेदनशील होंगे तथा दूसरों को संवेदनशील बनाने में अपनी भूमिका का निर्वाह करे पाएंगे।

अध्याय के इस भाग में हम लैंगिक हिंसा/उत्पीड़न से सम्बंधित विभिन्न कानूनों व पहलों का अध्ययन करेंगे। इस कड़ी में सबसे पहले भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत लैंगिक हिंसा/उत्पीड़न से सम्बंधित विभिन्न धाराओं को देखते हैं।

6.3 भारतीय दंड संहिता (IPC) के अंतर्गत लैंगिक हिंसा/उत्पीड़न से संबन्धित धाराएँ

धारा 166-ए : यदि कोई लोक सेवक एसिड अटैक, लैंगिक हिंसा तथा बलात्कार के केस में दी गई जानकारी को रेकॉर्ड करने में असफल रहता है तो ऐसे लोक सेवक को 6 महीने से लेकर 2 वर्ष तक के कठोर कारावास तथ जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

धारा 294 : दूसरों को परेशान करने के इरादे से की जाने वाली अश्लील हरकतें व गाने। अगर कोई व्यक्ति सार्वजनिक जगह पर अश्लील हरकत अथवा अश्लील गाने, कविता या शब्दों का प्रयोग करता है तो उसके लिए जुर्माने के साथ, तीन महीने की कैद की सजा या दोनों का प्रावधान किया गया है।

धारा 354 : यदि कोईस्त्री की लज्जा भंग (Outrage her Modesty) करने के उद्देश्य से हमला या आपराधिक बल का प्रयोग करेगा उसे एक वर्ष से पाँच वर्ष तक का कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 354-ए : यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से शारीरिक संपर्क बनाने संबंधी प्रस्ताव या लैंगिक संबंध बनाने के लिए कोई मांग या अनुरोध या स्त्री की इच्छा के विरुद्ध अश्लील साहित्य दिखाने या लैंगिक टिप्पणी करने का अपराध करता है तो उसे तीन वर्ष के कठोर कारावास की सजा या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा। लैंगिक टिप्पणी के केस में सजा की अवधि एक वर्ष के कठोर कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 354-बी : ऐसा कोई पुरुष जो किसी स्त्री को सार्वजनिक स्थल पर निर्वस्त्र करने या ऐसा करने के लिए किसी स्त्री पर हमला या अपराधिक बल का प्रयोग करता है तो उसे तीन वर्ष से सात वर्ष तक के कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

धारा 354-सी : यदि कोई पुरुष किसी स्त्री को जब वो प्राइवेट कार्य (sexual act) में लिप्त हो, देखता है या उसका चित्र खींचता है या उस चित्र को प्रसारित करता है तो प्रथम बार एक वर्ष से तीन वर्ष का कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा और दूसरी या अनेक बार दोष सिद्ध होने पर तीन वर्ष से सात वर्ष के कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

धारा 354-डी : यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से संपर्क बढ़ाने का प्रयास उस स्त्री की इच्छा के विरुद्ध एवं बार-बार अनिच्छा प्रदर्शित किए जाने के बावजूद उस स्त्री का पीछा करता है या स्त्री द्वारा ई-मेल, इंटरनेट अथवा किसी अन्य इलैक्ट्रोनिक मीडियम का प्रयोग किए जाने को मॉनिटर करता है या किसी स्त्री को घूरता है या बिना शासन आदेश के उसकी जासूसी करता है तो ऐसे व्यक्ति को प्रथम बार तीन वर्ष का कारावास और जुर्माना या द्वितीय या अनेक बार दोष सिद्ध होने पर पाँच वर्ष के कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

धारा 509- शब्दों, इशारे, आवाज़ों या किसी आपत्तिजनक वस्तु प्रदर्शन से यदि औरत के सम्मान को ठेस पहुँचती हो तो इसके लिए तीन वर्ष के कारावास तथा जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

6.4 बलात्कार संबन्धित कानून व जानकारियां

बलात्कार संबन्धित कानून

- किसी भी लड़की या महिला के साथ जबरदस्ती, चालाकी या धोखे से उसकी सहमति के बिना उसके साथ शारीरिक संभोग करना बलात्कार है।
- ऐसे शारीरिक संभोग जो महिला यह समझ कर करती है कि वही पुरुष उसका पति है पर पुरुष को यह पता है कि यह सत्य नहीं है, भी बलात्कार के दायरे में आता है।
- चाहे रजामंदी भी हो फिर भी किसी पागल या कमजोर दिमाग वाली महिला से संभोग करना बलात्कार होगा।
- शराब या नशे की हालत में महिला चाहे रजामंद भी हो उससे संभोग करना बलात्कार है।

- 18 साल से कम उम्र की लड़की की रजामंदी भी हो तो भी उससे संभोग बलात्कार है।
- पति का उसकी पत्नी के साथ शारीरिक संभोग अगर पत्नी की उम्र 15 वर्ष से कम हो तो भी बलात्कार है।
- हिन्दू कानून में अलगाव के दौरान बिना पत्नी की सहमति के संभोग बलात्कार है।
- अगर कोई महिला अपनी मर्ज़ी से किसी भी पुरुष से संभोग करती है तो उसे बलात्कार नहीं कहा जाएगा। लेकिन किसी वेश्या से भी मर्जी के बिना संभोग करना बलात्कार होता है।

स्रोत: हमारे अधिकार दिल्ली महिला आयोग

बलात्कार की सजा

कोर्ट में अपराध सिद्ध होने पर अपराधी को सात से दस वर्ष की सजा या उम्र कैद हो सकती है।

गर्भवती महिला के साथ बलात्कार के लिए दोषी पुरुष को दस वर्ष से अधिक का कठोर कारावास या आजीवन कारावास तथा जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

12 वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार के लिए दोषी पुरुष को दस वर्ष से अधिक के कठोर कारावास से लेकर आजीवन कारावास तक की सजा और जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

कुछ व्यक्ति जैसे पुलिसकर्मी, सरकारी नौकर व अन्य संस्थाओं में काम करने वाले अगर अपनी निगरानी में रहने वाली महिला के साथ बलात्कार करे तो कम से कम 10 वर्ष से लेकर उम्र कैद की सजा तथा जुर्माना हो सकता है।

सामूहिक बलात्कार एक से अधिक लोगों द्वारा होता है तो उसकी सजा कम से कम बीस वर्ष का कठोर कारावास से लेकर आजीवन कारावास और जुर्माना हो सकता है। ये जुर्माना पीड़िता के पुनर्वास और चिकित्सकीय खर्चों के लिए दिया जाएगा।

अलगाव के दौरान बलात्कार की सजा दो वर्ष से सात वर्ष का कठोर कारावास और जुर्माना दोनों हो सकते हैं।

बलात्कार का प्रयास करने पर 5 वर्ष की कैद हो सकती है।

यदि बलात्कार से पीड़िता की मृत्यु या विकृतशील दशा हो जाती है तो ऐसे पुरुष को बीस वर्ष से अधिक के कठोर कारावास से लेकर आजीवन कारावास या मृत्युदंड से दंडित किया जाएगा।

यदि कोई पुरुष पूर्व में बलात्कार के लिए दंडित किया जा चुका है और फिर से बलात्कार करता है तो ऐसे व्यक्ति को आजीवन कारावास से लेकर मृत्युदंड तक की सजा से दंडित किया जा सकता है

स्रोत: हमारे अधिकार दिल्ली महिला आयोग

बलात्कार पीड़िता महिला को क्या करना चाहिए:

1- जब तक डॉक्टरी जांच पूरी न हो जाए तन पर पहने हुये कपड़े न तो बदले न ही उन्हें धोएँ।
2- खुद अथवा अपने परिजनों व दोस्तों की मदद से तुरंत पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट करवाए। यदि पुलिस मदद करने से इंकार या आनाकानी करे तो डॉक्टर से जांच करवाकर उसकी रिपोर्ट ले लें और किसी महिला आयोग या सामाजिक संस्था से मदद लें।
3- बलात्कारी का चेहरा या कोई निशानी याद रखनी चाहिए ताकि बाद में पुलिस के समक्ष उसे पहचान सके और पुलिस उस अपराधी को पकड़ सकें।
4- पीड़िता किसी समाजसेवी संस्था या स्थानीय या राष्ट्रीय समाचार पत्र को भी पत्र लिखकर हुई घटना की जानकारी दे सकती है।

महिलाओं के पुलिस से संबन्धित अधिकार

पुलिस को महिलाओं को यह बताना होगा कि उन्हें गिरफ्तार क्यों किया जा रहा है।

उन्हें उनके जुर्म अथवा अपराध के बारे में बताना होगा। सिर्फ यह कहना पर्याप्त नहीं है कि आपके खिलाफ शिकायत दर्ज हुई है बल्कि उन्हें उसके बारे में पूरी जानकारी देनी होगी। दिन ढलने के बाद किसी भी महिला को गिरफ्तार कर पुलिस स्टेशन में रखना गैर-कानूनी है। किसी महिला को गिरफ्तार करने के लिए केवल एक महिला पुलिस ही अधिकारी है।

गिरफ्तारी के समय किसी भी प्रकार कि ज़ोर जबरदस्ती करना गैर कानूनी है और पुलिस स्टेशन ले जाने के लिए हथकड़ी नहीं लगाई जा सकती। बिना वारंट के पुलिस किसी महिला को गिरफ्तार नहीं कर सकती साथ ही महिला को अपने साथ अपने किसी रिश्तेदार अथवा मित्र को ले जाने का अधिकार है। गिरफ्तार किए जाने के 24 घंटे के अंदर महिला को मजिस्ट्रेट के कोर्ट में पेश करना आवश्यक है और बिना मजिस्ट्रेट के आदेश के 24 घंटे से ज्यादा जेल में रखना गैर कानूनी है।

6.5 महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न उनकी गरिमा तथा जीविका कमाने के अधिकार और उनके मौलिक तथा मूलभूत मनवाधिकार का उल्लंघन है। सन 1979 में बीजिंग में हुये "International Convention on the elimination of all forms of discrimination against women (CEDAW)", जिसे भारत सरकार ने भी हस्ताक्षर कर अपनाया,में कार्यस्थल पर महिलाओं के समान अधिकारों को जगह दी गई तथा घोषणा की कि महिलाएं यौन उत्पीड़न का शिकार नहीं होनी चाहिए। कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से निवारण के लिए भारत की संसद ने 2013 में एक कानून पास किया जिसका नाम 'महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम 2013 है। इस अधिनियम के अनुसार "यह कानून कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न से संरक्षण देने, रोकथाम व शिकायत निवारण के लिए बना है। यौन उत्पीड़न के कारण महिला के संविधान में निहित समानता के अधिकार (धारा 14, 15) व जीवन की रक्षा व सम्मान से जीने के अधिकार (धारा 21) व व्यवसाय करने की आज़ादी के लिए तथा कार्यस्थल पर सुरक्षित वातावरण के न होने से उसके कार्य करने में बाधा को रोकने के लिए यह कानून है।"

इस अधिनियम के अनुसार यौनिक प्रताड़ना के तहत निम्न में से कोई एक या अनेक स्वीकार्य कार्य या व्यवहार शामिल हैं चाहे वो प्रत्यक्ष रूप से हो या निहित हो।

- शारीरिक संपर्क या उसका प्रयास करना
- यौनिक रिश्ते बनाने का प्रयास या उसकी माँग
- यौनिक शब्दों वाली बातें या टिप्पणी करना
- अन्य कोई भी ऐसा शारीरिक, मौखिक, इशारे आदि से ऐसा व्यवहार व आचरण जो यौनिक प्रकृति का हो और अस्वीकार्य हो

इस अधिनियम के अनुसार:

1. किसी भी महिला का किसी कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न नहीं होगा।
2. अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ यदि निम्न परिस्थितियां जो यौनिक उत्पीड़न के साथ-साथ यदि विद्यमान है तो वह यौनिक उत्पीड़न कहलाएगा:

- नौकरी में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष, निहित या स्पष्ट वादा करके पक्षपातपूर्ण व्यवहार करना।
- नौकरी में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष, निहित या स्पष्ट रूप से नुकसान पहुँचाने की धमकी देना।

- वर्तमान व भविष्य की नौकरी के संबंध में नुकसान पहुंचाने की धमकी देना।
- उसके कार्य में हस्तक्षेप करना या ऐसा वातावरण बनाना कि उसका कार्य करना मुश्किल हो जाए।
- ऐसा उपहासपूर्ण या अपमानजनक व्यवहार जो उसके स्वास्थ्य व सुरक्षा को प्रभावित करे।

यह अधिनियम कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम के लिए एक आंतरिक शिकायत समिति के गठन को प्रस्तावित करता है। इसके अनुसार कार्यस्थल का प्रत्येक नियोक्ता लिखित में आदेश निकालकर एक आंतरिक शिकायत समिति का गठन करेगा। इस समिति के अंतर्गत 1) एक वरिष्ठ महिला पीठासीन अधिकारी होगी 2) कर्मचारियों में से 2 से कम सदस्यों का चयन नहीं होगा। इसमें सामाजिक व कानूनी मुद्दों से जुड़े व अनुभव रखने वाले ऐसे लोगों को लिया जायेगा जो महिला मुद्दों की समझ रखते हों। 3) एक सदस्य गैर सरकारी संगठन से होगा जो महिला मुद्दों से परिचित तथा प्रतिबद्ध हो। यह आवश्यक है कि नामजद किये गए कुल सदस्यों में से कम से कम आधी महिलाएं हों। इस समिति के सदस्यों तथा पीठासीन अधिकारी का कार्यकाल 3 वर्ष तक का होगा।

आंतरिक शिकायत समिति के अतिरिक्त इस अधिनियम में एक स्थानीय शिकायत समिति के गठन का भी प्रावधान है. इसके तहत "हर जिला स्तर का अधिकारी जिले के लिए एक समिति का गठन करेगा, जिसमें उन शिकायतों को लिया जायेगा जहाँ आंतरिक शिकायत समिति का गठन 10 से कम कर्मचारी होने के कारण नहीं हुआ है या शिकायत नियोक्ता के खिलाफ है।" इसके अंतर्गत जिलाधिकारी एक नोडल अधिकारी की नियुक्ति करेगा. यह ब्लॉक, तालुका, तहसील और नगरपालिका स्तर पर होगा। नोडल अधिकारी शिकायत प्राप्त कर स्थानीय शिकायत समिति को भेजेगा। स्थानीय शिकायत समिति के अध्यक्ष के रूप में सामाजिक क्षेत्र में महिला मुद्दों पर कार्य करने वाली कोई प्रतिष्ठित महिला होगी। जिले में ब्लॉक, तालुका, तहसील, वार्ड या नगरपालिका स्तर पर कार्यरत महिलाओं में से कोई एक इसकी सदस्य होगी। दो सदस्य उन गैर सरकारी संगठनों से चुने जाएँगे जो महिला मुद्दों के प्रति संवेदनशील हो तथा यौनिक प्रताड़ना के मुद्दों की समझ रखते हों। इन नामजद सदस्यों में से एक महिला अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग या अल्पसंख्यक समुदाय से सम्बंधित हो.

यौनिक प्रताड़ना की शिकायत:

कोई भी पीड़ित महिला कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की शिकायत लिखित में आंतरिक शिकायत समिति को देगी। यदि आंतरिक शिकायत समिति का गठन नहीं हुआ है तो स्थानीय शिकायत समिति को दी जाएगी। पीड़िता को शिकायत घटना घटने के 3 महीने के अन्दर करनी होगी। अगर पीड़िता शिकायत को लिखित में देने में असमर्थ है तो समिति के सदस्य या पीठासीन अधिकारी अथवा अध्यक्ष उसे शिकायत लिखने में आवश्यक मदद प्रदान करेंगे।

यदि पीड़िता 3 महीने में शिकायत नहीं कर पाती हैं और समिति को लगता है कि देरी का कारण उचित और तर्कसंगत है तो समिति उसे 3 महीने का अतिरिक्त समय दे सकती है। यदि पीड़ित महिला शारीरिक, मानसिक या किसी अन्य कारण से शिकायत नहीं लिखवा पा रही है तो उसका वैधानिक उत्तराधिकारी उसकी शिकायत दर्ज करवा सकता है।

मुआवजे के निर्धारण

पीड़ित महिला को मुआवजे के निर्धारण के सम्बन्ध में निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए:

- मानसिक तनाव, दर्द, परेशानी, भावनात्मक तनाव महिला को पहुंचा हो।
- यौन प्रताड़ना के कारण व्यवसाय के अवसरों का नुकसान।
- दूसरे पक्ष की आय व वित्तीय स्थिति ।

नियोक्ता के दायित्व :

अधिनियम के अनुसार नियोक्ता के निम्नलिखित दायित्व हैं:

- स्वच्छ कार्य वातावरण प्रदान करना चाहिए तथा सुरक्षा की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए।
- कार्यालय के सार्वजनिक स्थान पर इस कानून के दंडात्मक प्रावधान व आंतरिक समिति का आदेश नोटिस बोर्ड पर होना चाहिए।
- अपने कर्मचारियों में जागरूकता के लिए सेमिनार, गोष्ठियों की व्यवस्था करते रहना चाहिए ताकि उन्हें यौन उत्पीड़न व इससे जुड़े मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाया जा सके।
- आंतरिक व स्थानीय शिकायत समिति को विशेष सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
- जिस कानून या धारा के तहत मामला जहाँ दर्ज हो सकता है उसे वहां करवाया जाना चाहिए. अगर पीड़ित करने वाला कर्मचारी नहीं है तो जिस जगह घटना हुई है उस जगह केस दर्ज करवाने में मदद करनी चाहिए।

यौन उत्पीड़न के प्रभाव-

यौन उत्पीड़न से पीड़ित स्त्री को निम्नलिखित परेशानियों का सामना करना पड़ता है:

- भारत जैसे पितृसत्तात्मक समाज में करियर में जहाँ यौन पीड़िता को एक ‘मुजरिम’ के तौर पर देखा जाता है वहां उसे आगे बढ़ने के और नौकरी के अवसर का कम मिलते हैं।
- यौन उत्पीड़न के परिणामस्वरूप पीड़िता को कई प्रकार की शारीरिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक परेशानी उठानी पड़ती है।
- पीड़िता बहुत बार आत्महत्या करने या कोई ऐसा कदम उठाने की सोचती है जिसके भयंकर परिणाम होते हैं।
- यौन उत्पीड़न के कारण उसके पारिवारिक जीवन को नुकसान को नुकसान पहुँचता है।
- बहुत बार यौन उत्पीड़न से पीड़ित स्त्री को या तो स्वयं अपनी नौकरी छोड़नी पड़ती है अथवा उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है।
- पीड़िता को सामाजिक दबाव के कारण अपने कार्यस्थल पर जाने और बाहर निकलने में कठिनाई का अनुभव होता है और वह अपने कार्यालय से अनुपस्थित रहने लगती है जिसके कारण उत्पादकता में कमी आती है।

6.6 बाल यौन शोषण संरक्षण अधिनियम, 2012 (POCSO Act, 2012)

बच्चे समाज का कमज़ोर वर्ग होने के कारण शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और यौन संबंधी दुरुपयोग के लिए शीघ्र प्रभावित होने वाले होते हैं। भारत सरकार ने बच्चों के विरुद्ध यौन अपराधों की रोकथाम हेतु एक विशेष कानून “बाल यौन शोषण संरक्षण अधिनियम, 2012” (POCSO Act, 2012) बनाया है, जिसका मुख्य उद्देश्य बच्चों को विभिन्न यौन संबंधी अपराधों से बचना है तथा त्वरित निर्णय के लिए विशेष अदालत का गठन करना है, ताकि यौन अपराधियों को सख्त सज़ा मिल सकें। इस अधिनियम के तहत कोई भी व्यक्ति जिसकी उम्र 18 साल से कम है बच्चे की श्रेणी में रखा गया है।

इस अधिनियम के अंतर्गत 5 प्रकार के यौन अपराध माने गए हैं। जिनमें भेदन यौन हमला (Penetrative Sexual Assault) (धारा 3), उत्तेजित भेदन यौन हमला (Aggravated Penetrative Sexual Assault) (धारा 5), यौन हमला (Sexual Assault) (धारा 7), उत्तेजित यौन हमला (Aggravated Sexual Assault) (धारा 9) व यौन उत्पीड़न (Sexual Harassment) (धारा 11) हैं।

अधिनियम की धारा 11 के अनुसार बार-बार या लगातार पीछा करना, निगरानी रखना, सीधा इलेक्ट्रोनिक व अंकीय या किसी साधन से बालक से संबंध स्थापित करना, यौन उत्पीड़न है जो कि इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध है। इसी प्रकार किसी बालक को अश्लील सामग्री के लिए प्रयुक्त करना जैसे यौन अंगों का प्रदर्शन करना, उत्तेजित यौन कार्य मे बालक को संलिप्त कर प्रयोग करना, बालक का अभद्र एवं अश्लील प्रदर्शन करना भी इस अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत अपराध है।

सजा का प्रावधान

अधिनियम की धारा 4 के तहत भेदन संबंधी यौन आक्रमण के लिए कम से कम 7 वर्ष व अधिकतम आजीवन कारावास की सजा तथा जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसी प्रकार धारा 6 के अंतर्गत उत्तेजित भेदन यौन हमलों के लिए कम से कम 10 वर्ष की कैद से लेकर आजीवन कारावास व जुर्माने का प्रावधान है। धारा 8 के अंतर्गत यौन हमला करने वाले पर कम से कम 3 वर्ष व अधिक से अधिक 5 वर्ष की सजा और जुर्माना प्रस्तावित है। धारा 10 के तहत उत्तेजित यौन हमला करने वाले को कम से कम 5 वर्ष व अधिकाधिक 7 वर्ष व जुर्माने की सजा का प्रावधान किया गया है। अधिनियम की धारा 12 के तहत यौन उत्पीड़न से संबन्धित अपराधी को 3 साल तक की सजा व जुर्माने का प्रावधान है।

इस अधिनियम की धारा 28 के तहत विशेष अदालत का गठन किए जाने का प्रावधान है जो बाल मैत्री पूर्ण वातावरण में मुकदमों की त्वरित सुनवाई करतीहै । इस अधिनियम के अंतर्गत मुकदमे की कार्यवाही करने के लिए राज्य सरकार उच्च न्यायालय के मुख्यन्यायाधीश की मंत्रणा के अनुसार प्रत्येक जिले की सत्र अदालत को विशेष अदालत के रूप में गठित करती है। मुकदमे की सुनवाई के दौरान विशेष न्यायालय को निम्न विशेष इंतजाम करने चाहिए-

- बाल मैत्रीपूर्ण वातावरण तैयार करना जिसमें परिवार के सदस्य को, संरक्षक को, मित्र व रिश्तेदार को जिसमें की बच्चे का विश्वास हों, इजाजत देना सम्मिलित है।
- बच्चे को बीच-बीच में विराम देना।
- बच्चे की गवाही के लिए बार-बार अदालत में न बुलाना।
- आक्रामक एवं चरित्र हनन वाले प्रश्न बच्चे से ना पूछे जायें।
- बच्चे की इज्ज़त को बरकरार रखा जाये।
- बच्चे की पहचान सार्वजनिक ना की जाये।

- माता-पिता व अन्य व्यक्ति जिसमें बच्चे को विश्वास हों की मौजूदगी में मुकदमे की सुनवाई कैमरे में होनी चाहिए।
- बच्चों से हुये यौन अपराध के मामले केवल महिला सब-इंस्पेक्टर ही देखेगी।
- बच्चों से पूछताछ ठाणे के अंदर नहीं की जाएगी।
- पुलिस बच्चों से जब भी मिलेगी पुलिस वर्दी मेन नहीं होगी।
- बच्चों के मामलों में बेहद संवेदनशीलता और गोपनीयता से काम लिया जाएगा।
- कोर्ट का माहौल बच्चों के अनुकूल होना चाहिए।
- बच्चों के प्रारम्भिक उपचार, दवाइयों और पोषक आहार के लिए कोर्ट द्वारा अन्तरिम मुआवजा भी दिया जाएगा।
- जब भी बच्चे के लिए जरूरत होगी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता भी उपलब्ध कराये जाएंगे।

यदि उपर्युक्त सभी रक्षात्मक उपायों का कड़ाई और सख्ती से पालन किया जाता है तो पीड़ित या पीड़िता के लिए जांच और सुनवाई एक डरावना अनुभव नहीं होगी और इससे पीड़ित या पीड़िता की गरिमा को भी कायम रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता है कि ऐसा समाज में ऐसा संवेदनशील माहौल का निर्माण किया जाए जिससे इस प्रकार के अपराधों को कम किया जा सके तथा रोका जा सके।

6.7 सारांश

किसी भी तरह का भेदभाव, बहिष्कार, तिरस्कार, आपत्तिजनक या अपमानजनक कथन अथवा गोपनीयता का हनन गैरकानूनी और अवैध होता है जिसे यौन उत्पीड़न व यौन हिंसा के दायरे में रखा जा सकता है। यह आवश्यक है कि हम दूसरों की आज़ादी और उनके चुनावों (choices) को समझें और उनका सम्मान करें तथा उनके प्रति किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह और असहजता दिखने वाले व्यवहारों पर रोक लगाएँ। हमें यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि इस तरह के सभी लोगों के अधिकार और चुनावों की सुरक्षा और गरिमा की रक्षा की जा सके।

जरूरी है कि महिलाएं अपने साथ हो रहे अपराध का मजबूती से सामना करें और अधिकारों की जानकारी रखें। यौन उत्पीड़न जैसी समस्याओं को छुपाने से वो खत्म होने की बजाए बढ़ती है। आपके चुप रहने से एक तो आप खुद के साथ अन्याय करेंगी और दूसरा अन्य लड़कियों के साथ भी दुर्व्यवहार करने के लिए अपराधी की हिम्मत

बढ़ाएंगी। साथ ही पीड़िता के घरवाले और सहकर्मचारी भी उसका साथ दें। महिलाओं को उत्पीड़ित करने की इस मानसिकात को इसके खिलाफ आवाज उठाकर ही रोका जा सकता है। महिलाओं के साथ कभी भी यौन उत्पीड़न होने की स्थिति में वो अपने ऑफिस और पुलिस में शिकायत अवश्य करें।

6.8 शब्दावली

1. **यौन उत्पीड़न :**किसी भी तरह का भेदभाव बहिष्कार, अपमानजनक या अनादरपूर्ण टिप्पणी या ,कथन जो किसी की गोपनीयता और गरिमा का उल्लंघन करता है यह यौनिक उत्पीडन कहलाता है।
2. **कार्यस्थल :** कार्यस्थल का मतलब सिर्फ चारदीवार से घिरा कार्यालय, कचहरी, फैक्ट्री या कारखाना ही नहीं है अपितु कार्य के सिलसिले में जहाँ जहाँ आवागमन होता है वह सब कार्यस्थल के अंतर्गत आते हैं।
3. **नियोक्ता :** नियोक्ता (employer) का अर्थ है किसी भी विभाग, संगठन, प्रतिष्ठान, संस्था, कार्यालय, शाखा या इकाई जो प्राधिकृत अधिकार या स्थानीय सत्ता से है. इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति जो वहां की व्यवस्था निगरानी व नियंत्रण के लिए जिम्मेदार हो।

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिल्ली महिला आयोग (वर्ष अनुपलब्ध) हमारे अधिकार। नई दिल्ली : दिल्ली महिला आयोग।
2. जागोरी (2013). यौन उत्पीड़न : युवाओं व किशोरों के लिए नुस्खे. नई दिल्ली : जागोरी.
3. महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013
4. भारत का संविधान, भारत सरकार.
5. बाल यौन शोषण संरक्षण अधिनियम, 2012 (POCSO Act, 2012).
6. NCPCR. Frequently Asked Questions. New Delhi: National Commission for Protection of Child Rights.
7. Jacol, Reny. (n.a.). Sexual harassmet at the Workplace : A manual. New Delhi: Delhi Commission for Women.

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. यौन हिंसा क्या है ? इसे किस प्रकार रोका जा सकता है?
2. बाल यौन शोषण संरक्षण अधिनियम, 2012 के विभिन्न प्रावधानों की चर्चा कीजिये।

3. लैंगिक उत्पीड़न से सम्बंधित विभिन्न कानूनों की चर्चा कीजिये।
4. एक शिक्षक के रूप में आप अपने विद्यार्थियों को यौन हिंसा/उत्पीड़न के बारे में कैसे जागरूक करेंगे?
5. कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को किस प्रकार रोका या कम किया जा सकता है? महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013 के सन्दर्भ में चर्चा कीजिये।

इकाई: 7 लैंगिक समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान (constitutional provision for gender equality)

7.1 प्रस्तावना

7.2 लैंगिक समानता की संकल्पना और महत्त्व

7.3 भारत में लैंगिक असमानता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

7.3.1 वैदिक काल

7.3.2 उत्तरवैदिक काल

7.3.3 मध्यकाल

7.4 आधुनिक काल व सुधार आंदोलन

7.5 स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका

7.6 संविधान सभा की बहसें और दृष्टिकोण

7.7 संविधान में लैंगिक समानता के लिए मौलिक अधिकार

7.7.1 राज्य के नीति-निर्देशक तत्व और लैंगिक समानता

7.7.2 अन्य संवैधानिक प्रावधान (73वाँ, 74वाँ संशोधन, मौलिक कर्तव्य)

7.8 न्यायपालिका और लैंगिक समानता

7.9 लैंगिक समानता हेतु बनाए गए प्रमुख कानून

7.10 महिला सशक्तिकरण से संबंधित सरकारी योजनाएँ व नीतियाँ

7.11 अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य (CEDAW, SDGs आदि)

7.12 भारत में लैंगिक समानता की चुनौतियाँ

7.13 लैंगिक समानता सुनिश्चित करने हेतु सुझाव व उपाय

7.14 निष्कर्ष

अपनी प्रगति जानिए

7.15 निबन्धात्मक प्रश्न

7.16 संदर्भ ग्रन्थ / Reference Books

7.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल शासन संचालन की रूपरेखा ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि नागरिकों के अधिकारों, कर्तव्यों तथा उनके जीवन स्तर की गरिमा को सुरक्षित रखने का भी संकल्प लेता है। संविधान निर्माताओं का विश्वास था कि यदि देश को एक सशक्त और प्रगतिशील राष्ट्र बनाना है तो समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और अधिकार प्रदान करना अनिवार्य है। भारत जैसे बहुजातीय, बहुभाषी और बहुधार्मिक समाज में समानता की अवधारणा विशेष महत्व रखती है। परंतु समानता की चर्चा तब तक अधूरी मानी जाएगी जब तक उसमें लैंगिक समानता शामिल न हो।

लैंगिक समानता का तात्पर्य है कि स्त्री और पुरुष दोनों को समाज में समान अधिकार, अवसर और सम्मान प्राप्त हों। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, संपत्ति, रोजगार, राजनीतिक भागीदारी, सामाजिक गरिमा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता सब कुछ सम्मिलित है। भारतीय समाज में लंबे समय से महिलाओं को दोयम दर्जे का स्थान दिया जाता रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अवसरों से वंचित रखा। यही कारण था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब संविधान की रचना की गई, तो संविधान निर्माताओं ने महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता स्थापित करने के लिए विशेष प्रावधानों को शामिल किया।

भारतीय समाज विविधताओं से परिपूर्ण है। यहाँ अनेक धर्म, जातियाँ, भाषाएँ और संस्कृतियाँ एक साथ सह-अस्तित्व में रहती हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों। समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व—ये चार आदर्श भारतीय संविधान की आत्मा माने जाते हैं। लेकिन समानता की चर्चा तब तक अधूरी रहती है जब तक उसमें **लैंगिक समानता** को विशेष रूप से शामिल न किया जाए।

लैंगिक असमानता भारत के सामाजिक ढाँचे की एक गहरी जड़ रही है। लंबे समय तक महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और राजनीतिक भागीदारी से वंचित रखा गया। उन्हें केवल परिवार और घरेलू कार्यों तक सीमित समझा गया। स्वतंत्रता संग्राम ने महिलाओं की क्षमताओं को उजागर किया, और स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि महिलाओं और पुरुषों के बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव न रहे।

संविधान ने न केवल **समानता का अधिकार** दिया, बल्कि महिलाओं के लिए विशेष संरक्षणात्मक प्रावधान भी जोड़े, ताकि सदियों से चले आ रहे अन्याय को दूर किया जा सके। इस प्रकार संविधान भारतीय समाज को पितृसत्तात्मक सोच से बाहर निकालकर समानता और न्याय आधारित समाज की ओर ले जाने का प्रयास करता है।

7.2. लैंगिक समानता की संकल्पना और महत्त्व

लैंगिक समानता का अर्थ है – स्त्री और पुरुष दोनों को जीवन के हर क्षेत्र में समान अवसर, अधिकार और सम्मान मिलना। इसका दायरा केवल कानून तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक स्वतंत्रता और राजनीतिक भागीदारी तक फैला हुआ है।

महत्व के कुछ प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं –

1. **मानवाधिकार का पहलू** – लैंगिक समानता मूल रूप से मानवाधिकारों का हिस्सा है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह महिला हो या पुरुष, उसे गरिमामय जीवन जीने का अधिकार है।
2. **आर्थिक विकास** – जब समाज का आधा हिस्सा (महिलाएँ) आर्थिक गतिविधियों से बाहर रह जाता है तो देश की प्रगति अधूरी रह जाती है। महिला-पुरुष दोनों की सक्रिय भागीदारी से ही सतत विकास संभव है।
3. **सामाजिक न्याय** – समान अवसर के बिना सामाजिक न्याय की कल्पना अधूरी है। लैंगिक समानता से ही समाज में न्याय और संतुलन कायम होता है।
4. **लोकतंत्र की मजबूती** – लोकतंत्र तभी सफल होगा जब सभी नागरिक समान रूप से उसमें सहभागी हों। महिलाओं की भागीदारी लोकतंत्र को सशक्त बनाती है।
5. **अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताएँ** – भारत ने अंतरराष्ट्रीय संधियों (जैसे CEDAW, SDGs) में लैंगिक समानता सुनिश्चित करने का संकल्प लिया है।

इस प्रकार लैंगिक समानता केवल एक सामाजिक मुद्दा नहीं, बल्कि राष्ट्रीय विकास और लोकतांत्रिक मूल्यों की मजबूती के लिए अनिवार्य तत्व है।

7.3. भारत में लैंगिक असमानता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में महिलाओं की स्थिति समय और युग के अनुसार बदलती रही है। इसे मुख्यतः चार चरणों में बाँटा जा सकता है –

7.3.1 (क) वैदिक काल

वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर थी। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। ऋग्वेद में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। धार्मिक अनुष्ठानों और वाद-विवाद सभाओं में उनकी भागीदारी सामान्य मानी जाती थी। विवाह में भी स्त्रियों की सहमति आवश्यक समझी जाती थी।

7.3.2 (ख) उत्तरवैदिक काल

उत्तरवैदिक काल में धीरे-धीरे पितृसत्ता का प्रभाव बढ़ा। स्त्रियों की शिक्षा सीमित होने लगी और उनकी स्वतंत्रता में कमी आई। धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी भूमिका घटती चली गई। यद्यपि इस काल में भी कुछ विदुषी महिलाओं का उल्लेख मिलता है, लेकिन उनकी संख्या कम हो गई।

7.3.3 (ग) मध्यकालीन भारत

मध्यकालीन भारत में महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। इस काल में पर्दा प्रथा, बाल विवाह और सती प्रथा जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित हुईं। महिलाओं की शिक्षा लगभग समाप्त हो गई। मुस्लिम शासन और सामंती व्यवस्था के कारण महिलाओं को और अधिक घर की चारदीवारी में कैद कर दिया गया। यद्यपि कुछ शासक महिलाओं (जैसे रज़िया सुल्तान, रानी दुर्गावती, झाँसी की रानी) ने असाधारण साहस दिखाया, परंतु सामान्य महिला की स्थिति बहुत ही कमजोर रही।

7.4 आधुनिक काल और सुधार आंदोलन

ब्रिटिश काल में जब पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और समाज सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए, तब महिलाओं की स्थिति सुधारने के प्रयास हुए।

- **राजा राममोहन राय** ने सती प्रथा का विरोध किया।
- **ईश्वरचंद्र विद्यासागर** ने विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया।
- **ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले** ने महिला शिक्षा की नींव रखी।
- **महात्मा गांधी** ने स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया।

7.5 स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ़ अली, भीकाजी कामा जैसी महिलाओं ने न केवल आंदोलन का नेतृत्व किया, बल्कि यह भी सिद्ध कर दिया कि महिलाएँ राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं।

इसी पृष्ठभूमि ने संविधान निर्माताओं को प्रेरित किया कि स्वतंत्र भारत के संविधान में महिलाओं और पुरुषों की समानता सुनिश्चित करने के लिए ठोस प्रावधान किए जाएँ।

7.6. संविधान सभा में लैंगिक समानता पर बहसें और दृष्टिकोण

भारतीय संविधान की रचना के समय संविधान सभा ने समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार देने का संकल्प लिया था। महिलाओं की समानता को लेकर संविधान सभा में गंभीर बहसें हुईं।

संविधान सभा में लगभग 15 महिलाएँ सदस्य थीं, जिनमें हंसा मेहता, दुर्गाबाई देशमुख, सरोजिनी नायडू, अमृत कौर, राजकुमारी अमृत कौर, भी शामिल थीं। इन महिलाओं ने न केवल स्त्रियों के अधिकारों की वकालत की, बल्कि संविधान की दिशा तय करने में महत्वपूर्ण योगदान भी दिया।

- **डॉ. भीमराव अंबेडकर** ने स्पष्ट कहा था कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति तभी संभव है जब महिलाएँ पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त करें। उन्होंने विशेष रूप से अनुच्छेद 15(3) जैसे प्रावधानों का समर्थन किया, जिनसे महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष सुरक्षा दी जा सके।
- **हंसा मेहता** ने कहा कि भारतीय समाज में महिलाओं को सदियों से दबाया गया है, इसलिए संविधान को केवल समानता की घोषणा भर नहीं करनी चाहिए, बल्कि व्यवहारिक रूप से उन्हें सशक्त करने के लिए विशेष कदम उठाने चाहिए।

- **दुर्गाबाई देशमुख** ने महिलाओं की शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी को सुनिश्चित करने पर बल दिया।

इस प्रकार संविधान सभा की बहसों से यह स्पष्ट हुआ कि संविधान निर्माताओं की दृष्टि केवल औपचारिक समानता तक सीमित नहीं थी, बल्कि वे वास्तविक और व्यावहारिक समानता सुनिश्चित करना चाहते थे।

7.7. संविधान में लैंगिक समानता के लिए मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के **भाग III** में मौलिक अधिकार दिए गए हैं। इनमें से कई सीधे तौर पर लैंगिक समानता से संबंधित हैं।

1. **अनुच्छेद 14: कानून के समक्ष समानता**
    - प्रत्येक व्यक्ति को कानून के समक्ष समान माना जाएगा।
    - यह अनुच्छेद स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार देता है।
2. **अनुच्छेद 15: भेदभाव का निषेध**
    - अनुच्छेद 15(1): राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।
    - अनुच्छेद 15(3): राज्य महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। यह एक सकारात्मक भेदभाव (positive discrimination) का उदाहरण है।
3. **अनुच्छेद 16: सार्वजनिक रोजगार में समान अवसर**
    - सभी नागरिकों को सरकारी नौकरियों में समान अवसर।
    - इसका उद्देश्य महिलाओं को भी रोजगार के क्षेत्र में समान भागीदारी दिलाना है।
4. **अनुच्छेद 19(1)(g): किसी भी पेशे को अपनाने की स्वतंत्रता**
    - महिला और पुरुष दोनों को अपने इच्छानुसार व्यवसाय करने की स्वतंत्रता।
5. **अनुच्छेद 21: जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार**
    - इसमें गरिमामय जीवन शामिल है। सुप्रीम कोर्ट ने इसे महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान से जोड़ा है।
6. **अनुच्छेद 23: मानव तस्करी और जबरन श्रम का निषेध**
    - यह विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों को शोषण से बचाने हेतु महत्वपूर्ण है।

इन मौलिक अधिकारों ने महिलाओं के लिए समानता और सुरक्षा का मजबूत आधार प्रदान किया है।

7.7.1 राज्य के नीति-निर्देशक तत्व और लैंगिक समानता

भारतीय संविधान के **भाग IV** में राज्य के नीति-निर्देशक तत्व दिए गए हैं। ये न्यायालय में प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं होते, लेकिन राज्य की नीतियों को निर्देशित करते हैं।

1. **अनुच्छेद 39(a): समान आजीविका का अधिकार**
    - राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि पुरुष और महिला दोनों को समान रूप से जीविका के साधन उपलब्ध हों।
2. **अनुच्छेद 39(d): समान कार्य के लिए समान वेतन**
    - महिलाओं और पुरुषों के लिए समान कार्य का समान वेतन।
    - इसे लागू करने के लिए 1976 में "समान पारिश्रमिक अधिनियम" बनाया गया।
3. **अनुच्छेद 39(e): श्रमिकों की सुरक्षा**
    - यह प्रावधान महिलाओं और बच्चों को आर्थिक शोषण से बचाने पर बल देता है।
4. **अनुच्छेद 42: प्रसूति अवकाश और मातृत्व संरक्षण**
    - महिलाओं के लिए सुरक्षित और मानवीय कार्य परिस्थितियाँ तथा मातृत्व अवकाश का प्रावधान।
5. **अनुच्छेद 45: प्रारंभिक शिक्षा**
    - सभी बच्चों, विशेषकर बालिकाओं को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा।
6. **अनुच्छेद 46: कमजोर वर्गों की उन्नति**
    - महिलाओं सहित सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों की उन्नति का निर्देश।

राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों ने महिलाओं की सुरक्षा और उन्नति के लिए सरकार को नीति बनाने की दिशा दी।

7.7.2 अन्य संवैधानिक प्रावधान

लैंगिक समानता को और मजबूत बनाने हेतु संविधान में अन्य प्रावधान भी शामिल किए गए हैं।

1. **अनुच्छेद 51(A) (e): मौलिक कर्तव्य**

- हर नागरिक का कर्तव्य है कि वह महिलाओं की गरिमा को ठेस न पहुँचाए और भ्रातृत्व की भावना को बढ़ावा दे।

2. **73वाँ संशोधन (1992): पंचायतों में आरक्षण**
    - पंचायत स्तर पर एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित।
    - कई राज्यों ने इसे 50% तक बढ़ा दिया है।
3. **74वाँ संशोधन (1992): नगरपालिकाओं में आरक्षण**
    - नगरपालिकाओं और नगर निगमों में भी महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित।
4. **अनुच्छेद 243D और 243T**
    - पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु आरक्षण।
5. **राष्ट्रीय महिला आयोग (1990)**
    - महिलाओं से संबंधित मामलों की जाँच और सुझाव देने हेतु स्थापित।

इन प्रावधानों ने महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर दिया, जिससे उनकी स्थिति में सुधार हुआ।

7.8. न्यायपालिका और लैंगिक समानता

भारतीय न्यायपालिका ने समय-समय पर अपने निर्णयों के माध्यम से संविधान में निहित लैंगिक समानता को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया है। अनेक बार सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालयों ने यह स्पष्ट किया है कि महिलाओं को संविधान में मिले अधिकार केवल कागज़ पर नहीं, बल्कि व्यवहार में भी लागू होने चाहिए।

कुछ प्रमुख निर्णय इस प्रकार हैं –

1. **विषाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997)**
    - यह मामला कार्यस्थलों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से संबंधित था।
    - सुप्रीम कोर्ट ने "विषाखा दिशानिर्देश" जारी किए, जिसमें प्रत्येक संस्था को आंतरिक शिकायत समिति गठित करने का निर्देश दिया गया।

- बाद में इन्हीं दिशानिर्देशों के आधार पर **यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, 2013** बनाया गया।

2. **एयर इंडिया बनाम नर्गेश मिर्ज़ा (1981)**
    - एयर इंडिया की सेवा शर्तों में यह प्रावधान था कि एयर होस्टेस के विवाह करने पर सेवा समाप्त कर दी जाएगी।
    - सुप्रीम कोर्ट ने इसे लैंगिक समानता के विरुद्ध बताया और असंवैधानिक घोषित किया।
3. **सी.बी. मुथम्मा बनाम भारत सरकार (1979)**
    - विदेश सेवा में महिला अधिकारी को पदोन्नति न देने के नियम को कोर्ट ने भेदभावपूर्ण ठहराया।
4. **शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017)**
    - तीन तलाक (तलाक-ए-बिद्दत) को असंवैधानिक घोषित किया गया।
    - यह फैसला मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों की रक्षा हेतु ऐतिहासिक माना गया।
5. **नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (2018)**
    - धारा 377 के अंतर्गत सहमति से बने समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया।
    - यह निर्णय लैंगिक समानता की व्यापक अवधारणा को दर्शाता है।
6. **सुप्रिया चक्रवर्ती बनाम भारत संघ (2023)**
    - समान लिंग विवाह पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संसद को इस विषय पर कानून बनाने की आवश्यकता है।
    - यद्यपि विवाह का अधिकार सीधे तौर पर मान्यता नहीं दी गई, लेकिन यह निर्णय लैंगिक न्याय पर चल रही बहस को और मजबूत करता है।

इन निर्णयों से स्पष्ट है कि न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या करते हुए महिलाओं के अधिकारों को संरक्षण देने और समानता की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं।

7.9. लैंगिक समानता हेतु बनाए गए प्रमुख कानून

भारतीय संविधान की भावना को व्यवहार में उतारने के लिए समय-समय पर अनेक कानून बनाए गए। ये कानून महिलाओं की सुरक्षा, समान वेतन, शिक्षा और सम्मान को सुनिश्चित करते हैं।

1. **समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976**
   - पुरुष और महिला दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन।
2. **दहेज निषेध अधिनियम, 1961**
   - दहेज की प्रथा को अपराध घोषित किया गया।
3. **गर्भावस्था लाभ अधिनियम, 1961 (संशोधित 2017)**
   - महिलाओं को प्रसूति अवकाश और आर्थिक लाभ का प्रावधान।
   - संशोधन के बाद मातृत्व अवकाश 26 सप्ताह तक कर दिया गया।
4. **घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005**
   - महिलाओं को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और यौन शोषण से सुरक्षा प्रदान करता है।
5. **यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, 2013**
   - कार्यस्थलों पर महिलाओं की सुरक्षा हेतु।
   - प्रत्येक संस्था में आंतरिक शिकायत समिति गठित करने का प्रावधान।
6. **बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006**
   - बाल विवाह को अपराध माना गया।
7. **महिला आरक्षण से संबंधित विधेयक**
   - 2023 में संसद ने "नारी शक्ति वंदन अधिनियम" पारित किया, जिसके तहत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान किया गया।

इन कानूनों ने संविधान के प्रावधानों को मजबूती प्रदान की और महिलाओं को वास्तविक सुरक्षा दी।

7.10. महिला सशक्तिकरण से संबंधित सरकारी योजनाएँ

भारत सरकार और राज्य सरकारों ने समय-समय पर महिलाओं की स्थिति सुधारने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ शुरू कीं।

1. **बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना (2015)**
   - कन्या भ्रूण हत्या रोकने और बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु।
   - नारा: *"बेटी पढ़ाओ, देश बढ़ाओ"*।

2. **सुकन्या समृद्धि योजना (2015)**
    - बालिकाओं के लिए बचत खाता योजना।
    - माता-पिता अपनी बेटी की शिक्षा और विवाह हेतु धनराशि जमा कर सकते हैं।
3. **प्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना (2017)**
    - गर्भवती महिलाओं को आर्थिक सहायता।
    - प्रसव पूर्व और प्रसव के बाद देखभाल हेतु ₹5000 की सहायता राशि।
4. **महिला शक्ति केंद्र योजना (2017-18)**
    - ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु।
5. **स्टैंड अप इंडिया योजना (2016)**
    - महिलाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता के लिए ऋण सुविधा।
6. **उज्ज्वला योजना**
    - महिलाओं को धुआँ रहित रसोई उपलब्ध कराने हेतु गैस कनेक्शन।
7. **नारी शक्ति पुरस्कार**
    - महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाली महिलाओं को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित करना।

इन योजनाओं ने महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभाई।

7.11. अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और भारत की भूमिका

भारत ने लैंगिक समानता के क्षेत्र में कई अंतरराष्ट्रीय संधियों और घोषणाओं को स्वीकार किया है।

1. **समान अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948)**
    - संयुक्त राष्ट्र ने सभी को समान अधिकार देने की घोषणा की।
    - भारत ने इसका समर्थन किया।
2. **स्त्री के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन (CEDAW, 1979)**
    - भारत ने 1993 में इसे अनुमोदित किया।

   - इसके तहत भारत ने महिलाओं के खिलाफ भेदभाव समाप्त करने का वादा किया।
3. **बीजिंग घोषणा और कार्ययोजना (1995)**
   - महिलाओं की समान भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में।
4. **सतत विकास लक्ष्य (SDGs, 2015-30)**
   - लक्ष्य 5: लैंगिक समानता और महिलाओं का सशक्तिकरण।
   - भारत ने इन लक्ष्यों को अपनाया और नीतियों में शामिल किया।

इस प्रकार भारत न केवल अपने संविधान में बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी लैंगिक समानता की दिशा में प्रतिबद्ध है।

7.12. लैंगिक समानता की चुनौतियाँ

यद्यपि भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता का अधिकार दिया है और अनेक कानून व योजनाएँ भी लागू हैं, फिर भी व्यावहारिक जीवन में कई चुनौतियाँ मौजूद हैं।

(क) सामाजिक चुनौतियाँ

1. **पितृसत्तात्मक व्यवस्था** – समाज के अधिकांश हिस्सों में पुरुष प्रधान मानसिकता गहराई से जमी हुई है। निर्णय लेने की शक्ति पुरुषों तक ही सीमित रहती है।
2. **लिंग आधारित भेदभाव** – जन्म से लेकर जीवन के हर क्षेत्र में लड़कियों को अलग नजरिए से देखा जाता है।
3. **बाल विवाह** – कानूनन निषेध होने के बावजूद ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में अब भी प्रचलित।
4. **दहेज प्रथा** – सामाजिक बुराई के रूप में यह महिलाओं के लिए अभिशाप है।

(ख) आर्थिक चुनौतियाँ

1. **समान कार्य के लिए असमान वेतन** – यद्यपि समान पारिश्रमिक अधिनियम लागू है, फिर भी व्यवहार में महिलाएँ कम वेतन पाती हैं।
2. **रोजगार के अवसरों की कमी** – कार्यस्थलों पर महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है।

3. **आर्थिक निर्भरता** – अधिकांश महिलाएँ अब भी आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर हैं।

(ग) राजनीतिक चुनौतियाँ

1. **राजनीति में सीमित भागीदारी** – पंचायत स्तर पर 33% आरक्षण ने महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई है, लेकिन उच्च स्तर पर संख्या बहुत कम है।
2. **निर्णय लेने वाली भूमिकाओं में कमी** – संसद, मंत्रालय, न्यायपालिका और नौकरशाही में महिलाओं का प्रतिनिधित्व न्यूनतम है।

(घ) शैक्षिक चुनौतियाँ

1. **शिक्षा में असमानता** – ग्रामीण और गरीब परिवारों में लड़कियों की शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाता है।
2. **ड्रॉप-आउट दर अधिक** – किशोरावस्था में लड़कियाँ शिक्षा बीच में छोड़ने को मजबूर हो जाती हैं।
3. **सुरक्षा की समस्या** – स्कूल और कॉलेज जाने में असुरक्षा की भावना लड़कियों की शिक्षा में बाधा है।

(ङ) सांस्कृतिक और मानसिक चुनौतियाँ

1. **लैंगिक पूर्वाग्रह** – लड़के-लड़कियों के कार्यों को लेकर रूढ़िवादी धारणाएँ।
2. **महिलाओं पर दोहरा बोझ** – घर की जिम्मेदारी और बाहर का काम दोनों संभालना।
3. **महिलाओं के खिलाफ अपराध** – बलात्कार, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा जैसी घटनाएँ महिलाओं को बराबरी से आगे बढ़ने नहीं देतीं।

7.13. लैंगिक समानता सुनिश्चित करने हेतु सुझाव व उपाय

इन चुनौतियों को समाप्त करने और लैंगिक समानता स्थापित करने के लिए बहुआयामी प्रयास आवश्यक हैं।

(क) कानूनी उपाय

1. **कानूनों का कड़ाई से पालन** – दहेज निषेध, घरेलू हिंसा, बाल विवाह और समान पारिश्रमिक अधिनियम को कड़ाई से लागू किया जाए।

2. **त्वरित न्याय प्रणाली** – महिलाओं से जुड़े मामलों का शीघ्र निपटारा सुनिश्चित करना।
3. **नए कानूनों की आवश्यकता** – समान लिंग विवाह और ट्रांसजेंडर अधिकारों पर ठोस कानून बनाए जाएँ।

(ख) सामाजिक उपाय

1. **जन-जागरूकता अभियान** – बालिका शिक्षा और महिला अधिकारों पर व्यापक जागरूकता फैलाना।
2. **रूढ़िवादी सोच में बदलाव** – परिवार और समाज में महिलाओं को समान अवसर देने की मानसिकता विकसित करना।
3. **सामुदायिक भागीदारी** – पंचायत और स्थानीय निकायों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना।

(ग) शैक्षिक उपाय

1. **बालिकाओं की शिक्षा सुनिश्चित करना** – प्रत्येक बच्ची को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. **पाठ्यक्रम में लैंगिक संवेदनशीलता** – शिक्षा प्रणाली में लैंगिक समानता और संवेदनशीलता का समावेश।
3. **महिला छात्रवृत्ति** – लड़कियों को उच्च शिक्षा हेतु विशेष छात्रवृत्ति।

(घ) आर्थिक उपाय

1. **स्वरोजगार और उद्यमिता को बढ़ावा** – महिलाओं को ऋण और प्रशिक्षण की सुविधा।
2. **महिला सहकारी समितियाँ** – आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए।
3. **समान वेतन की गारंटी** – कार्यस्थलों पर समान पारिश्रमिक की निगरानी।

(ङ) राजनीतिक उपाय

1. **महिला आरक्षण** – संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का 33% आरक्षण शीघ्र लागू किया जाए।
2. **राजनीतिक दलों की भूमिका** – टिकट वितरण में महिलाओं को प्राथमिकता।

3. **महिला नेतृत्व का विकास** – पंचायत स्तर पर चुनी गई महिलाओं को नेतृत्व प्रशिक्षण।

7.14. निष्कर्ष

भारतीय संविधान ने महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए हैं। अनुच्छेद 14 से 16 तक समानता का अधिकार, अनुच्छेद 39 और 42 जैसे निदेशक तत्व, और अनुच्छेद 51(ए) में नागरिक कर्तव्य – ये सब मिलकर भारत को लैंगिक समानता की दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाते हैं। न्यायपालिका ने अनेक ऐतिहासिक निर्णय देकर महिलाओं के अधिकारों को मजबूती दी है। सरकार द्वारा लागू किए गए कानून और योजनाएँ भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

फिर भी, व्यावहारिक स्तर पर चुनौतियाँ शेष हैं – पितृसत्तात्मक सोच, आर्थिक निर्भरता, शिक्षा में असमानता और कार्यस्थलों पर भेदभाव। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए सरकार, समाज और नागरिक – तीनों का संयुक्त प्रयास आवश्यक है। यदि हम संविधान की भावना को सही अर्थों में लागू कर सकें तो "लैंगिक समानता" केवल एक आदर्श न होकर वास्तविकता बन सकती है। यही भारत के लोकतांत्रिक और समतामूलक समाज का आधार है।

अपनी प्रगति जानिए।

प्रश्न 1 भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति किस अनुच्छेद में दी गई है?

a) अनुच्छेद 14

b) अनुच्छेद 15(3)

c) अनुच्छेद 16

d) अनुच्छेद 21

प्रश्न 2 निम्नलिखित में से कौन सा कानून कार्यस्थलों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करता है?

a) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976

b) घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005

c) यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, 2013

d) बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006

प्रश्न 3. भारत में पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण कितनी प्रतिशत निर्धारित है?

a) 25%

b) 33%

c) 40%

d) 50%

प्रश्न 4 समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित करने वाला कानून कौन सा है?

a) दहेज निषेध अधिनियम, 1961

b) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976

c) गर्भावस्था लाभ अधिनियम, 1961

d) नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023

प्रश्न 5 "तीन तलाक" को असंवैधानिक घोषित करने वाला सुप्रीम कोर्ट का फैसला किस वर्ष में आया?

a) 2015

b) 2016

c) 2017

d) 2018

सही उत्तर: 1. b) अनुच्छेद 15(3), 2. c) यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, 2013, 3. b) 33%, 4. b) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976, 5. c) 2017

7.15 निबन्धात्मक प्रश्न:

प्रश्न 1: भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानों की व्याख्या करें। साथ ही यह बताइए कि ये प्रावधान महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों को कैसे सशक्त बनाते हैं।

प्रश्न 2: भारत में लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के लिए न्यायपालिका ने किन-किन महत्वपूर्ण फैसलों द्वारा योगदान दिया है? उदाहरण सहित समझाइए।प्रश्न

3: भारत में महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु लागू किए गए प्रमुख कानून और योजनाओं पर चर्चा कीजिए। यह बताइए कि इन कानूनों और योजनाओं ने महिलाओं की स्थिति में क्या बदलाव लाया है।प्रश्न

4: भारत में लैंगिक समानता के सामने आने वाली मुख्य चुनौतियों और उनके समाधान पर विस्तृत चर्चा कीजिए। समाज, शिक्षा, राजनीति और अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से अपने उत्तर को समझाइए।

7.16 संदर्भ ग्रन्थ / Reference Books

1. डॉ. उमा चक्रवर्ती – *जाति का लैंगिकीकरण*
2. डॉ. नीरजा अवस्थी – *शिक्षा में लैंगिक समानता*
3. प्रो. कृष्ण कुमार – *शिक्षा और समाज*
4. एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) – *लैंगिक मुद्दे और शिक्षा पर स्थिति पत्र*
5. डॉ. ममता कौर – *स्त्री अध्ययन और शिक्षा*
6. **Nanda, B.R. (Ed.)** – *Indian Women: From Purdah to Modernity*
7. **Nayar, Usha** – *Gender Equity: Issues and Challenges*
8. **Desai, Neera & Krishnaraj, Maithreyi** – *Women and Society in India*
9. **Chanana, Karuna** – *Interrogating Women's Education: Bounded Visions, Expanding Horizons*
10. **Forbes, Geraldine** – *Women in Modern India*
11. **Butler, Judith** – *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*
12. **Connell, R.W.** – *Gender and Power: Society, the Person and Sexual Politics*
13. **Nussbaum, Martha C.** – *Women and Human Development: The Capabilities Approach*
14. **Gandhi, N. & Shah, N.** – *The Issues at Stake: Theory and Practice in the Contemporary Women's Movement in India*

इकाई – 8 लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में शिक्षकों की भूमिका (Role of teachers in Promoting gender equality)

8.1 प्रस्तावना – **शिक्षकों की भूमिका और लैंगिक समानता का महत्त्व**

8.2 लैंगिक समानता की संकल्पना और शिक्षा का योगदान

8.3 शिक्षक और सामाजिक दृष्टिकोण: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

8.4 संविधान और शिक्षा में लैंगिक समानता

8.5 शिक्षकों की जिम्मेदारियाँ

8.6 विद्यालय में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के उपाय

8.7 शिक्षक द्वारा पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में समानता का समावेश

8.8 शिक्षक और छात्र-छात्राओं के साथ व्यवहार में समानता

8.9 नैतिक शिक्षा और लैंगिक समानता का संवर्धन

8.10 सकारात्मक उदाहरण और सर्वोत्तम प्रथाएँ

8.11 अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण और भारत में शिक्षा में लैंगिक समानता

8.12 समाधान और सुझाव

8.13 निष्कर्ष

अपनी प्रगति जानिये

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.15 संदर्भ ग्रन्थ

8.1. प्रस्तावना

आज के आधुनिक समाज में **लैंगिक समानता** केवल एक नैतिक या सामाजिक आवश्यकता नहीं, बल्कि शिक्षा और राष्ट्रनिर्माण का मूल आधार बन गई है। शिक्षकों का समाज में एक विशेष स्थान है। वे न केवल ज्ञान प्रदान करते हैं, बल्कि छात्रों के मनोविकास, मूल्य-बोध और नैतिकता को भी आकार देते हैं। इसलिए शिक्षक ही वे मुख्य प्रेरक हैं जो लैंगिक समानता का संदेश कक्षा में, स्कूल में और समाज में फैला सकते हैं।

शिक्षक न केवल शिक्षण कार्य करते हैं, बल्कि वे सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देने, समान अवसरों का वातावरण बनाने और लिंग आधारित पूर्वाग्रहों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि शिक्षक लैंगिक समानता के सिद्धांतों को सही रूप में विद्यार्थियों के जीवन में उतारने में सक्षम हों, तो यह समाज में दीर्घकालिक परिवर्तन ला सकता है। इस प्रकरण में हम देखेंगे कि शिक्षकों का योगदान क्यों और कैसे महत्त्वपूर्ण है, वे किन-किन माध्यमों से लैंगिक समानता को बढ़ावा दे सकते हैं, और उनके सामने कौन-सी चुनौतियाँ हैं।

8.2 लैंगिक समानता की संकल्पना और शिक्षा का योगदान

लैंगिक समानता का अर्थ है पुरुष और महिला दोनों को जीवन के हर क्षेत्र में समान अवसर, सम्मान और अधिकार प्रदान करना। शिक्षा इसी समानता की नींव रखती है।

शिक्षा में लैंगिक समानता का योगदान

1. **ज्ञान और जागरूकता का प्रसार** – शिक्षा के माध्यम से छात्र लड़कियों और लड़कों में समानता की भावना विकसित करते हैं।
2. **पूर्वाग्रहों का उन्मूलन** – शिक्षक समाज में गहरे बसे लिंग आधारित पूर्वाग्रहों को चुनौती दे सकते हैं।
3. **सशक्तिकरण** – शिक्षा लड़कियों को आत्मनिर्भर बनाती है और उन्हें निर्णय लेने की क्षमता देती है।
4. **रोल मॉडल का निर्माण** – शिक्षक अपने व्यवहार और दृष्टिकोण के माध्यम से छात्रों के लिए सकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।
5. **समान अवसरों की संवर्धना** – शिक्षक कक्षा में सभी छात्रों को समान अवसर देते हुए प्रतिस्पर्धा, खेलकूद और नेतृत्व के अवसर सुनिश्चित कर सकते हैं।

महत्त्व: यदि शिक्षक स्वयं लैंगिक समानता के प्रति संवेदनशील हैं, तो छात्र स्वाभाविक रूप से इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं। यह एक दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन की नींव रखता है।

8. 3 शिक्षक और सामाजिक दृष्टिकोण: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में शिक्षक का स्थान हमेशा ही सम्मानजनक रहा है। परंपरागत समाज में गुरु केवल शैक्षणिक ज्ञान ही नहीं देते थे, बल्कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों का मार्गदर्शन भी करते थे।

प्राचीन और मध्यकालीन दृष्टिकोण

- वैदिक काल में गुरुकुल प्रणाली में लड़कियों और लड़कों दोनों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर था, हालांकि महिलाओं की संख्या कम थी।
- शिक्षक न केवल शास्त्रीय ज्ञान देते थे, बल्कि सामाजिक मर्यादाओं और नैतिकता की शिक्षा भी देते थे।
- मध्यकाल में पितृसत्तात्मक प्रभाव बढ़ने के कारण लड़कियों की शिक्षा सीमित हो गई। इस समय शिक्षक सामाजिक धारणाओं का वाहक बन गए।

आधुनिक भारत में शिक्षक की भूमिका

- स्वतंत्रता संग्राम के समय शिक्षकों ने महिलाओं को जागरूक किया और उनके अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाया।
- आज शिक्षक केवल पाठ्यपुस्तक तक सीमित नहीं हैं, बल्कि छात्रों में सामाजिक चेतना, समानता और अधिकारों की भावना विकसित करने वाले मार्गदर्शक हैं।
- शिक्षक महिला शिक्षा, छात्राओं की भागीदारी, खेल, विज्ञान और कला के क्षेत्र में समान अवसर सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाते हैं।

शिक्षक का प्रभाव

शिक्षक केवल ज्ञान प्रदान करने वाले नहीं, बल्कि छात्रों के मानसिक, भावनात्मक और नैतिक विकास के प्रेरक हैं। यदि शिक्षक लैंगिक समानता के मूल्यों को कक्षा में सक्रिय रूप से लागू करें, तो छात्र अपने परिवार और समाज में इसे फैलाते हैं।

8.4. संविधान और शिक्षा में लैंगिक समानता

भारतीय संविधान ने प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्रदान किए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक इस समानता को व्यावहारिक रूप से लागू करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संवैधानिक प्रावधान

1. **अनुच्छेद 14** – सभी नागरिक कानून के समक्ष समान हैं। शिक्षक कक्षा में सभी छात्र-छात्राओं को समान अवसर दें।
2. **अनुच्छेद 15(3)** – महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान। शिक्षक विशेष ध्यान देकर छात्राओं को आगे बढ़ाने का कार्य कर सकते हैं।
3. **अनुच्छेद 16** – समान अवसर सार्वजनिक रोजगार में। शिक्षक करियर मार्गदर्शन के दौरान लैंगिक समानता सुनिश्चित करें।
4. **अनुच्छेद 21** – जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता। शिक्षक छात्रों में आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की भावना विकसित करें।

शिक्षक संविधान की इन व्यवस्थाओं को कक्षा में व्यवहार में उतारने वाले मुख्य माध्यम हैं।

8.5. शिक्षकों की जिम्मेदारियाँ

शिक्षक केवल ज्ञान का वाहक नहीं हैं, बल्कि मानविकी मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों के मार्गदर्शक भी हैं। लैंगिक समानता के संदर्भ में उनकी जिम्मेदारियाँ निम्न हैं –

1. **पूर्वाग्रह रहित शिक्षण** – कक्षा में किसी भी छात्र या छात्रा के साथ भेदभाव न करना।

2. **समान अवसर देना** – पाठ्यक्रम, खेलकूद, प्रयोगशाला, कला और नेतृत्व में लड़कियों और लड़कों को समान अवसर।
3. **सशक्तिकरण** – लड़कियों को आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता और नेतृत्व कौशल सिखाना।
4. **मूल्य शिक्षा** – लैंगिक समानता के नैतिक और सामाजिक पहलुओं को पाठ्यक्रम के माध्यम से शामिल करना।
5. **सकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करना** – शिक्षक का व्यवहार और दृष्टिकोण छात्रों के लिए प्रेरक होना चाहिए।
6. **अभिभावकों को मार्गदर्शन देना** – माता-पिता को भी लैंगिक समानता की आवश्यकता और लाभ समझाना।

शिक्षक का यह दृष्टिकोण न केवल कक्षा तक सीमित रहना चाहिए, बल्कि विद्यालय और समुदाय तक फैलना चाहिए।

8.6. विद्यालय में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के उपाय

शिक्षक विभिन्न माध्यमों से विद्यालय स्तर पर लैंगिक समानता को बढ़ावा दे सकते हैं।

(क) पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री

- पाठ्यपुस्तकों में लैंगिक पूर्वाग्रह को समाप्त करना।
- महिलाओं के योगदान और ऐतिहासिक भूमिका को शामिल करना।
- उदाहरण और कहानियों में लड़कियों और लड़कों को समान अवसर दिखाना।

(ख) कक्षा प्रबंधन

- प्रश्न पूछने, प्रयोग करने और नेतृत्व गतिविधियों में सभी छात्रों को समान अवसर देना।
- छात्राओं के विचारों और प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करना।

(ग) खेलकूद और सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ

- खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों में लैंगिक भेदभाव न करना।
- लड़कियों को खेल, विज्ञान मेला, कला प्रदर्शनी में सक्रिय रूप से शामिल करना।

(घ) छात्र-शिक्षक संवाद

- कक्षा में खुला और समान संवाद।
- लड़कियों को उनके अधिकार और भविष्य की संभावनाओं के बारे में जागरूक करना।

(ङ) स्कूल प्रशासन में भूमिका

- स्कूल नीतियों में लैंगिक समानता सुनिश्चित करना।
- महिला शिक्षकों और स्टाफ की भागीदारी बढ़ाना।

8.7. शिक्षक द्वारा पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में समानता का समावेश

पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में लैंगिक समानता का समावेश छात्रों के दृष्टिकोण को बदलने में निर्णायक भूमिका निभाता है।

1. **साहित्य और इतिहास में संतुलन** – पुरुष और महिला दोनों के योगदान को समान रूप से दिखाना।
2. **सकारात्मक रोल मॉडल** – महिलाओं के सफलता के उदाहरण देना।
3. **सहभागी शिक्षा** – परियोजना कार्य और ग्रुप एक्टिविटी में सभी छात्रों को समान जिम्मेदारी देना।
4. **सांस्कृतिक और सामाजिक संवेदनशीलता** – लैंगिक समानता पर आधारित कहानी, नाटक और चर्चा सत्र।
5. **तकनीकी और विज्ञान शिक्षा** – STEM क्षेत्र में लड़कियों को सक्रिय रूप से शामिल करना।

शिक्षक यदि इन उपायों को निरंतर अपनाएं, तो छात्र धीरे-धीरे लैंगिक समानता को सामाजिक मानक के रूप में अपनाने लगते हैं।

8.8. शिक्षक और छात्र-छात्राओं के साथ व्यवहार में समानता

शिक्षक का व्यवहार छात्रों के मानसिक और सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव डालता है। लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षक का दृष्टिकोण और व्यवहार नितांत महत्वपूर्ण है।

समानता सुनिश्चित करने के उपाय

1. **सभी छात्रों को समान अवसर देना** – कक्षा में किसी छात्र या छात्रा को प्राथमिकता या भेदभाव न देना।
2. **प्रश्न और चर्चाओं में सहभागिता** – लड़कियों और लड़कों दोनों को प्रश्न पूछने और उत्तर देने का समान अवसर देना।
3. **प्रशंसा और पुरस्कार में समानता** – परीक्षा, खेलकूद और सांस्कृतिक गतिविधियों में सभी छात्रों की योग्यता के अनुसार समान पहचान।
4. **विवाद और शिकायतों का निष्पक्ष समाधान** – लैंगिक पूर्वाग्रह को दूर रखते हुए समस्याओं का समाधान करना।
5. **सकारात्मक संवाद** – छात्राओं को आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना।

शिक्षक का यह व्यवहार छात्र-छात्राओं में **समानता की भावना** पैदा करता है और सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाता है।

8.9. नैतिक शिक्षा और लैंगिक समानता का संवर्धन

शिक्षक नैतिक शिक्षा के माध्यम से समानता और सामाजिक न्याय की भावना विकसित कर सकते हैं।

उपाय:

1. **मानवाधिकार और समानता पर पाठ** – कक्षा में छात्रों को महिलाओं के अधिकार और समानता की आवश्यकता समझाना।
2. **आत्मसम्मान और जिम्मेदारी** – लड़कियों को आत्मनिर्भर और लड़कों को समानता के समर्थक बनाना।
3. **सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियाँ** – नाटक, वार्ता, परियोजनाएँ जो लैंगिक समानता पर आधारित हों।

4. **सकारात्मक प्रेरणा** – छात्राओं और छात्रों को उनके योगदान और प्रयास के लिए समान रूप से मान्यता देना।

इस प्रकार शिक्षक नैतिक शिक्षा और व्यवहार के माध्यम से छात्रों में समानता और संवेदनशीलता का विकास कर सकते हैं।

8.10. सकारात्मक उदाहरण और सर्वोत्तम प्रथाएँ

सफल प्रथाएँ

1. **लैंगिक संवेदनशील पाठ्यक्रम** – कुछ स्कूलों में पाठ्यक्रम में महिलाओं के योगदान और समान अवसर की कहानियाँ शामिल की जाती हैं।
2. **परियोजना और समूह गतिविधियाँ** – STEM और कला के क्षेत्रों में लड़कियों और लड़कों को समान अवसर देना।
3. **नेतृत्व प्रशिक्षण** – छात्राओं को छात्र परिषद और क्लबों में सक्रिय भूमिकाएँ देना।
4. **शिक्षक रोल मॉडल** – महिला और पुरुष दोनों शिक्षक समान अवसर और सम्मान का उदाहरण प्रस्तुत करें।
5. **सकारात्मक पुरस्कार प्रणाली** – समान उपलब्धि और उत्कृष्टता के आधार पर पुरस्कार।

प्रभाव

- छात्र और छात्रा दोनों ही समानता और निष्पक्षता के मूल्य अपनाते हैं।
- समाज में लैंगिक समानता का संदेश फैलता है।
- महिलाओं और पुरुषों के बीच सहयोग और समन्वय बढ़ता है।

8.11. अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण और भारत में शिक्षा में लैंगिक समानता

भारत ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता को स्वीकार किया है। शिक्षक इस दृष्टिकोण को अपने कक्षा व्यवहार में शामिल कर सकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय पहल

1. **UNICEF और UNESCO** – बालिकाओं की शिक्षा और समान अवसर सुनिश्चित करने के कार्यक्रम।
2. **Beijing Declaration (1995)** – लैंगिक समानता को शिक्षा और समाज में बढ़ावा देने के लिए मार्गदर्शन।
3. **Sustainable Development Goals (SDG 5)** – लैंगिक समानता और महिलाओं का सशक्तिकरण।

भारत में प्रभाव

- राष्ट्रीय नीति के अनुसार शिक्षकों को लैंगिक संवेदनशील शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य।
- सरकारी और निजी विद्यालयों में समान शिक्षा, खेल, विज्ञान और कला के अवसर सुनिश्चित किए जाते हैं।
- शिक्षक अंतरराष्ट्रीय मानकों और स्थानीय जरूरतों के बीच संतुलन बनाकर छात्रों में समानता की भावना विकसित करते हैं।

शिक्षक यदि इस अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपने शिक्षण और गतिविधियों में शामिल करें, तो छात्र वैश्विक परिप्रेक्ष्य के साथ **समानता और न्याय** की मूल्यवत्ता सीखते हैं।

8.12. समाधान और सुझाव

शिक्षक कई उपायों और रणनीतियों के माध्यम से इन चुनौतियों का सामना कर सकते हैं और लैंगिक समानता को बढ़ावा दे सकते हैं।

(क) कानूनी और नीतिगत उपाय

1. कानूनी जागरूकता – शिक्षक छात्रों को संविधान और कानून में महिलाओं के अधिकारों के बारे में शिक्षित करें।
2. समान अवसर नीति – स्कूल में समानता सुनिश्चित करने के लिए नियम और प्रक्रियाएँ।

(ख) सामाजिक उपाय

1. समाज और परिवार को जागरूक करना – अभिभावकों और समुदाय को लैंगिक समानता की महत्ता समझाना।
2. सकारात्मक रोल मॉडल – छात्रों को प्रेरक व्यक्तियों और सफल महिलाओं के उदाहरण देना।

(ग) शैक्षिक उपाय

1. समान पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री – महिला योगदान और सफलता की कहानियों को शामिल करना।
2. सहभागी और सक्रिय शिक्षा – परियोजनाओं, ग्रुप कार्यों और प्रयोगों में सभी को समान भागीदारी देना।
3. सुरक्षा और संरक्षण – छात्राओं के लिए सुरक्षित वातावरण और समर्थन प्रणाली।

(घ) आर्थिक और नेतृत्व उपाय

1. उद्यमिता और स्वरोजगार प्रशिक्षण – लड़कियों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए।
2. नेतृत्व और निर्णय क्षमता का विकास – छात्राओं को छात्र परिषद, क्लब और खेलकूद गतिविधियों में सक्रिय भूमिका देना।

8.13. निष्कर्ष

शिक्षक न केवल ज्ञान देने वाले हैं, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन के प्रेरक भी हैं। यदि शिक्षक लैंगिक समानता के सिद्धांतों को कक्षा में लागू करें, तो छात्र इसे अपने जीवन में अपनाते हैं और समाज में सकारात्मक बदलाव लाते हैं। भारत का संविधान, न्यायपालिका और अंतरराष्ट्रीय मानक सभी महिलाओं को समान अधिकार और सम्मान प्रदान करते हैं। शिक्षक इन अधिकारों को व्यवहार में उतारने का मुख्य स्तंभ हैं।

शिक्षकों के प्रभाव से छात्र-छात्राएं लैंगिक समानता की समझ विकसित करते हैं, और भविष्य में वे समान अवसर, सम्मान और न्याय की भावना के साथ समाज में योगदान देते हैं। इस प्रकार, शिक्षकों की भूमिका लैंगिक समानता के प्रचार-प्रसार, नैतिक शिक्षा, नेतृत्व विकास और सामाजिक जागरूकता के लिए निर्णायक है। यदि यह दृष्टिकोण

निरंतर अपनाया जाए तो शिक्षा केवल ज्ञान ही नहीं, बल्कि समानता और न्याय का मजबूत आधार भी बन सकती है।

अपनी प्रगति जानिए।

प्रश्न 1 शिक्षक लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में किस भूमिका में सबसे प्रभावशाली होते हैं?

a) केवल पाठ्यपुस्तक ज्ञान देने में
b) सामाजिक और नैतिक मूल्यों के मार्गदर्शन में
c) परीक्षा के अंक निर्धारित करने में
d) केवल विद्यालय प्रशासन में

प्रश्न 2 शिक्षक किस अनुच्छेद के अनुसार छात्रों में लैंगिक समानता की भावना विकसित करने का प्रयास कर सकते हैं?

a) अनुच्छेद 19
b) अनुच्छेद 14 और 15(3)
c) अनुच्छेद 370
d) अनुच्छेद 32

प्रश्न 3 कक्षा में शिक्षक कैसे लैंगिक समानता को प्रोत्साहित कर सकते हैं?

a) लड़कियों और लड़कों को अलग-अलग कक्षा में रखना
b) सभी छात्रों को समान अवसर देना
c) केवल लड़कों को खेलकूद में भाग लेने देना
d) लड़कियों को केवल सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल करना

प्रश्न 4 निम्न में से कौन-सा उपाय शिक्षक द्वारा नैतिक शिक्षा के माध्यम से लैंगिक समानता बढ़ाने में मदद करता है?

a) छात्राओं को कम महत्व देना
b) सकारात्मक रोल मॉडल और प्रेरक उदाहरण देना

c) केवल लड़कों को पुरस्कार देना

d) लड़कियों को अतिरिक्त गृहकार्य देना

प्रश्न 5 शिक्षक विद्यालय में लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के लिए किस माध्यम का उपयोग कर सकते हैं?

a) पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में समावेश

b) केवल परीक्षा में अंक देना

c) स्कूल में लड़कियों को अलग रखना

d) छात्रों को बिना मार्गदर्शन छोड़ देना

सही उत्तर: 1. b) सामाजिक और नैतिक मूल्यों के मार्गदर्शन में,

2. b) अनुच्छेद 14 और 15

(3), 3. b) सभी छात्रों को समान अवसर देना,

4. b) सकारात्मक रोल मॉडल और प्रेरक उदाहरण देना,

5. a) पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में समावेश।

8.14 निबंधात्मक प्रश्न :

प्रश्न 1: शिक्षक लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में क्यों महत्वपूर्ण हैं? अपने उत्तर में शिक्षक की सामाजिक, नैतिक और शैक्षिक भूमिका स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2: भारत में शिक्षा और संविधान के माध्यम से लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के तरीके स्पष्ट कीजिए। शिक्षक इसे कक्षा में कैसे लागू कर सकते हैं?

प्रश्न 3:विद्यालय में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों द्वारा अपनाए जाने वाले मुख्य उपायों पर चर्चा कीजिए।

प्रश्न 4:शिक्षकों के सामने आने वाली चुनौतियाँ और उनके समाधान पर विस्तार से चर्चा कीजिए। समाज, शिक्षा और आर्थिक दृष्टिकोण से अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 5:अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुसार भारत में शिक्षक लैंगिक समानता के लिए किस प्रकार योगदान दे सकते हैं?

8.15 संदर्भ ग्रन्थ:

1. **विमला, वी.** – *भारतीय समाज और स्त्री शिक्षा*
2. **कुमुद शर्मा** – *स्त्री और शिक्षा: समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण*
3. **अनिता रमपाल (संपादक)** – *लैंगिक समानता और शिक्षा* (NCERT प्रकाशन)
4. **डॉ. अर्चना सिंह** – *लैंगिक अध्ययन और शिक्षा शास्त्र*
5. **डॉ. मीनाक्षी गुप्ता** – *समाज, शिक्षा और स्त्री विमर्श*
6. **भारतीय महिला अध्ययन संघ** – *स्त्री अध्ययन पाठ्य सामग्री*
7. National Policy on Education (NPE), 1986, 1992, 2020 – Gender और School Education से जुड़े प्रावधान
8. UNICEF Reports on Gender and Education
9. UNDP – Human Development Reports (HDR) (विशेषकर Gender Development Index पर आधारित)

इकाई: 9 बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनाएँ (बेटी बचाओ बेटी पढाओं, कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय) Government Schemes for Girls' Education (Beti Bachao Beti Padhao, Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 उद्देश्य (Objective)

9.3 बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनायें (Government Schemes for Girls' Education)

9.4 बेटी बचाओ बेटी पढाओं (Beti Bachao Beti Padhao)

9.5 बालिका शिक्षा का महत्व (Importance of Girls' Education)

9.6 कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय (Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya)

स्वमूल्यांकन हेत प्रश्न

9.7 सारांश (Summary)

9.8 मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

9.10 निबंधात्मक प्रश्न (Long Answar Type Questions)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)-

भारत में शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है, परंतु लंबे समय तक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों से लड़कियाँ शिक्षा से वंचित रही हैं। समाज में व्याप्त लिंग भेदभाव, बाल विवाह, गरीबी, अशिक्षा और सुरक्षा की चिंता जैसे कारकों ने लड़कियों की शिक्षा को बाधित किया। इस स्थिति को सुधारने और शिक्षा के क्षेत्र में लिंग असमानता को दूर करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों ने समय-समय पर अनेक योजनाएँ शुरू की हैं जिन्हें सामूहिक रूप से बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनाएँ कहा जाता है। इन योजनाओं का उद्देश्य लड़कियों को शिक्षा के अवसर प्रदान करना, उन्हें स्कूल तक पहुँचाना, उनकी शिक्षा को निरंतर बनाए रखना तथा उच्च शिक्षा तक प्रोत्साहित करना है। इन सभी योजनाओं का उद्देश्य स्पष्ट है कि लड़कियों को शिक्षा से जोड़ना और उनके अधिकारों की रक्षा करना। शिक्षा से लड़कियाँ न केवल आत्मनिर्भर बनती हैं बल्कि समाज और राष्ट्र की प्रगति में भी योगदान करती हैं। जब लड़कियाँ पढ़ती हैं तो वे परिवार को सशक्त बनाती हैं, समाज को जागरूक करती हैं और राष्ट्र को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करती हैं। इस प्रकार बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनाएँ भारतीय समाज में सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम बन रही हैं। ये योजनाएँ एक ओर लड़कियों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ती हैं तो दूसरी ओर उन्हें भविष्य के लिए सक्षम और सशक्त बनाती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनाएँ केवल लड़कियों की पढ़ाई का साधन नहीं हैं, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, लैंगिक समानता और राष्ट्रीय विकास की दिशा में एक मजबूत कदम हैं।

9.2 उद्देश्य (Objective)-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र –

1. छात्र बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनाओं के बारे में जान सकेंगे,
2. छात्र बालिका शिक्षा के महत्व को समझ सकेंगें,
3. छात्र बेटी बचाओं बेटी पढाओं अभियान के बारें में जान सकेंगे,
4. छात्र कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों के बारे में जानकारी रख सकेंगें,

9.3 बालिका शिक्षा हेतु सरकारी योजनायें-

भारत सरकार ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने और समाज में लैंगिक असमानताओं को कम करने के लिए समय-समय पर अनेक योजनाएँ शुरू की हैं, क्योंकि लंबे समय तक ग्रामीण, पिछड़े और गरीब वर्ग की लड़कियाँ शिक्षा से वंचित रहीं और उनका नामांकन व साक्षरता दर बहुत कम रहा, इसीलिए शिक्षा को सुलभ और समान बनाने हेतु **बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना (2015)** आरंभ की गई जिसका उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या पर रोक लगाना, घटते लिंगानुपात में सुधार करना और बालिकाओं को शिक्षा व सुरक्षा प्रदान करना था, यह योजना केवल शिक्षा ही नहीं बल्कि सामाजिक जागरूकता का भी अभियान है जिसने समाज को यह संदेश दिया कि बेटियाँ परिवार और देश की धरोहर हैं, इसी क्रम में **कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना (2004-05)** लाई गई जिसमें पिछड़े जिलों की 6वीं से 12वीं तक की छात्राओं के लिए निःशुल्क आवासीय विद्यालय खोले गए जहाँ शिक्षा के साथ आवास, भोजन, वस्त्र, पुस्तकें और स्वास्थ्य सुविधाएँ भी दी जाती हैं, विशेष रूप से SC, ST, OBC, अल्पसंख्यक और गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली बालिकाएँ इसका लाभ ले रही हैं, बाद में भारत सरकार द्वारा **समग्र शिक्षा अभियान (2018)** को लाया गया जिसमें सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान और शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को मिलाकर एकीकृत प्रयास किया गया और प्राथमिक से उच्च माध्यमिक स्तर तक शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने, डिजिटल शिक्षा उपलब्ध कराने और बालिकाओं को छात्रवृत्तियाँ देने पर बल दिया गया, वहीं **राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (2009)** ने माध्यमिक स्तर पर नामांकन बढ़ाने के लिए बालिकाओं को छात्रवृत्ति, शौचालय, महिला शिक्षकों की नियुक्ति, पुस्तकालय और प्रयोगशालाओं की सुविधा दी जिससे शिक्षा का वातावरण अनुकूल बना, गरीब परिवारों की लड़कियों को पढ़ाई के लिए प्रेरित करने हेतु **बालिका समृद्धि योजना** लागू हुई जिसमें बेटी के जन्म पर नकद राशि और कक्षा 1 से 10 तक छात्रवृत्ति दी जाती है ताकि बाल विवाह रोका जा सके और माता-पिता अपनी बेटियों को पढाने के लिए उत्साहित हों, इसी तरह **सुकन्या समृद्धि योजना (2015)** भी बालिका शिक्षा व भविष्य को सुरक्षित करने के लिए बनाई गई जिसमें बैंक/डाकघर में बालिका के नाम पर खाता खोलकर उच्च ब्याज दर पर बचत की जाती है और यह राशि उनकी उच्च शिक्षा या विवाह में सहायक बनती है, साथ ही **राष्ट्रीय प्रोत्साहन छात्रवृत्ति योजना** ने 9वीं से 12वीं तक की पढ़ाई कर रही SC, ST, OBC और अल्पसंख्यक समुदाय की लड़कियों को आर्थिक सहायता प्रदान की ताकि आर्थिक संकट पढ़ाई में बाधा न बने, पहले चलाया गया **सर्व शिक्षा अभियान (2001-2018)** भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु एक बड़ा कदम था जिसमें लड़कियों के लिए मुफ्त किताबें, गणवेश, आवासीय विद्यालय, मिड-डे मील और समुदाय में जागरूकता अभियान चलाए गए, आज के डिजिटल युग में **DIKSHA, ई-पाठशाला और SWAYAM प्लेटफॉर्म** ने दूरस्थ और ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियों को गुणवत्तापूर्ण डिजिटल सामग्री और ऑनलाइन पाठ्यक्रम उपलब्ध कराकर उनकी शिक्षा को और सुगम बनाया है, इसके अलावा देश के

कई राज्य सरकारों ने भी बालिकाओं के लिए विशेष योजनाएँ चलाई हैं जैसे **मध्य प्रदेश की लाड़ली लक्ष्मी योजना** जिसमें जन्म से लेकर उच्च शिक्षा तक वित्तीय सहायता मिलती है, **बिहार की साइकिल योजना** जिसने कक्षा 9 की छात्राओं को साइकिल देकर विद्यालय जाने की सुविधा प्रदान की और ड्रॉपआउट दर घटाई, **राजस्थान की मुख्यमंत्री बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना** जिसमें मेधावी छात्राओं को छात्रवृत्ति व पुरस्कार दिए जाते हैं, तथा **उत्तर प्रदेश की रानी लक्ष्मीबाई आत्मरक्षा प्रशिक्षण योजना** जिसमें विद्यालयों की लड़कियों को आत्मरक्षा का प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे सुरक्षित रह सकें। इन सभी योजनाओं का संयुक्त उद्देश्य यही है कि लड़कियाँ शिक्षा से जुड़ें, आत्मनिर्भर बनें और समाज में समान अधिकार प्राप्त करें। इन पहलों का प्रभाव भी दिखाई देने लगा है जिसमें विद्यालयों में नामांकन दर बढ़ी है, विद्यालय त्याग दर घटी है, अभिभावकों की सोच बदली है और बालिकाएँ शिक्षा के माध्यम से अपने जीवन को नई दिशा दे रही हैं, यद्यपि चुनौतियाँ अभी भी हैं जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों का अभाव, योग्य शिक्षकों की कमी और सामाजिक रूढ़िवादिता, लेकिन इन योजनाओं ने यह साबित किया है कि भारत सरकार बालिका शिक्षा को लेकर गंभीर है और शिक्षा ही उनके सशक्त भविष्य की कुंजी है।

9.4 बेटी बचाओं बेटी पढाओं-

भारत एक ऐसा देश है जहाँ बेटियों को "लक्ष्मी", "सरस्वती" और "दुर्गा" का स्वरूप मानकर पूजा जाता है, फिर भी लंबे समय तक यहाँ बेटियों की स्थिति उपेक्षित रही है। सामाजिक कुरीतियाँ, लिंग भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा और अशिक्षा ने मिलकर लड़कियों को समाज में पिछड़ेपन और असमानता की स्थिति में खड़ा कर दिया। बेटियों के प्रति यह असमान दृष्टिकोण केवल पारिवारिक या सामाजिक स्तर पर ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय विकास को भी प्रभावित करता है, क्योंकि यदि आधी आबादी को शिक्षा, सम्मान और अवसर नहीं मिलेंगे तो राष्ट्र प्रगति के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। इसी चुनौतीपूर्ण परिस्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2015 में "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" नामक महत्वाकांक्षी अभियान की शुरुआत की। यह योजना न केवल बेटियों को जन्म से पहले और बाद में सुरक्षा प्रदान करने का संकल्प है बल्कि उन्हें शिक्षा और सशक्तिकरण के अवसर उपलब्ध कराने का भी व्यापक प्रयास है।

योजना का प्रारंभ एवं उद्देश्य-

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत जिले से इस योजना का शुभारंभ किया। हरियाणा उस समय देश के सबसे खराब लिंगानुपात वाले राज्यों में से एक था। यहाँ प्रति 1000 लड़कों पर मात्र

830 लड़कियाँ थीं। यह स्थिति न केवल चिंताजनक थी बल्कि समाज में असंतुलन और अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देने वाली थी। सरकार ने इस गंभीर संकट को दूर करने के लिए बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम, लिंगानुपात में सुधार, बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन तथा महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देना है।

योजना की प्रमुख विशेषताएँ-

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान को सम्पूर्ण देश में बहु-आयामी स्वरूप में चलाया गया। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

लिंगानुपात सुधार-

इस अभियान का मुख्य उद्देश्य देश में कन्या भ्रूण हत्या पर रोक, जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन, चिकित्सा संस्थानों पर निगरानी, अवैध लिंग जांच केंद्रों के विरुद्ध कार्रवाई हैं, जिस कारण से देश भर में लिंगानुपात में सुधार देखा गया हैं।

- 2011 की जनगणना में भारत का बाल लिंगानुपात (0–6 वर्ष आयु वर्ग) मात्र 918 था। हरियाणा जैसे राज्य, जो कन्या भ्रूण हत्या के लिए कुख्यात था और जहाँ 2011 में लिंगानुपात मात्र 830 था, वहाँ यह योजना लागू होने के बाद 2020 तक यह बढ़कर 914 तक पहुँच गया।
- राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019–21) के अनुसार भारत का कुल लिंगानुपात 1020 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष दर्ज किया गया, जो ऐतिहासिक सुधार माना जाता है।

शिक्षा प्रोत्साहन-

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान के तहत बालिकाओं के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था, बालिकाओं के लिए निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, विद्यालयों में शौचालय निर्माण, सुरक्षा व्यवस्था, पुस्तक और ड्रेस वितरण आदि के द्वारा देश भर में बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन मिला हैं।

- इस अभियान के बाद से स्कूलों में लड़कियों के नामांकन की दर में वृद्धि हुई। जिसमें प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक उनकी उपस्थिति बढ़ी है।

- इस अभियान के बाद से विद्यालय छोड़ने की दर में कमी आई है। विशेष रूप से कक्षा 6 से 12 तक की छात्राओं में पढ़ाई बीच में छोड़ने की प्रवृत्ति घटने लगी है।

- इस अभियान के तहत सरकार द्वारा बालिकाओं के लिए अलग शौचालय, मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, यूनिफॉर्म और छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध कराई गई हैं।

जागरूकता अभियान-

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान के तहत आंगनबाड़ी केन्द्रों, पंचायत भवनों, विद्यालयों की व्यवस्था, मीडिया और स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से बेटी के महत्व को समझाने के लिए रैलियाँ, नाटक, कार्यशालाएँ और पोस्टर अभियान आदि चलाया जा रहा हैं।

- इस अभियान ने समाज में लोगों में मानसिक परिवर्तन की शुरुआत की।

- लोगों ने बेटियों को "बोझ" मानने के बजाय उन्हें परिवार की धरोहर समझना शुरू किया।

- कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह और दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों के विरुद्ध जन-जागरूकता बढ़ी।

- पंचायतों, आंगनबाड़ी केंद्रों, विद्यालयों और मीडिया के माध्यम से रैलियाँ, नारे, नुक्कड़ नाटक और पोस्टर अभियान चलाए गए।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में कदम-

बेटी बचाओं बेटी पढाओं अभियान के बाद से समाज में महिलाओं की स्थितिं में सुधार देखने को मिला हैं जिसके तहत समाज में लोगों की मानसिकता में सुधार हुआ हैं,

- इस अभियान के बाद से जब बेटियाँ पढ़ाई में आगे बढ़ीं तो उन्होंने उच्च शिक्षा, प्रतियोगी परीक्षाओं, खेलकूद, कला, विज्ञान और प्रशासनिक सेवाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई हैं।

- इस अभियान के बाद से बालिकाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के कारण वे परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी सहभागी बनने लगीं।

- इस अभियान के बाद से महिलाओं के आत्मविश्वास और सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ हैं।

संस्थागत एवं वित्तीय सहयोग-

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान के तहत महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय) संयुक्त रूप से कार्य कर रहें हैं। इस अभियान हेतु सरकार के द्वारा विभिन्न राज्यों को विशेष बजट प्रदान किया जा रहा है तथा "सुकन्या समृद्धि योजना" के माध्यम से बेटियों की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित की जा रही है।

अतः बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान ने समाज में कई सकारात्मक परिवर्तन लाए हैं। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव देश में लिंगानुपात में सुधार के रूप में सामने आया हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) और जनगणना आंकड़ों के अनुसार 2015 के बाद कई राज्यों में कन्या जन्म दर में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। तथा, बालिकाओं की शिक्षा को लेकर समाज एवं परिवारों का दृष्टिकोण भी बदल रहा हैं। पहले जहाँ कई परिवार बेटियों को दसवीं या बारहवीं के बाद पढ़ाना बंद कर देते थे, वहीं अब उच्च शिक्षा तक बेटियों को आगे बढ़ाने की सोच मजबूत हुई। इस योजना ने महिला सशक्तिकरण की दिशा में नींव रखी, क्योंकि जब बेटियाँ पढ़ेंगी तो वे आत्मनिर्भर बनेंगी और समाज में निर्णय लेने की क्षमता पाएँगी।

9.5 बालिका शिक्षा का महत्व-

भारत जैसे प्रगतिशील राष्ट्र के लिए शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की आधारशिला है। किसी भी समाज की उन्नति उसके नागरिकों की शिक्षा पर निर्भर करती है, और जब समाज के आधे हिस्से यानी महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता है, तो विकास की गति स्वतः ही बाधित हो जाती है। इसीलिए बालिका शिक्षा का महत्व केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह परिवार, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास से भी जुड़ा हुआ है।

1. व्यक्तित्व विकास और आत्मनिर्भरता-

शिक्षा किसी भी बालिका को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और सशक्त बनाती है। शिक्षा प्राप्त कर लड़की अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकती है, समस्याओं का समाधान खोज सकती है और जीवन की चुनौतियों का

सामना कर सकती है। एक शिक्षित महिला केवल घर तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भी योगदान दे सकती है।

2. परिवार और समाज का उत्थान-

समाज में यह कहा जाता है कि यदि आप एक पुरुष को शिक्षित करते हैं तो केवल एक व्यक्ति शिक्षित होता है, लेकिन यदि आप एक महिला को शिक्षित करते हैं तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। शिक्षित बालिका आगे चलकर एक शिक्षित माँ बनती है, जो अपने बच्चों को संस्कार, अनुशासन और शिक्षा प्रदान करती है। इस प्रकार एक महिला की शिक्षा से पूरे समाज का बौद्धिक स्तर ऊँचा होता है।

3. स्वास्थ्य और पोषण में सुधार-

शिक्षा बालिका को स्वास्थ्य, स्वच्छता और पोषण के महत्व को समझने में सक्षम बनाती है। एक शिक्षित महिला अपने परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य का ध्यान रखती है, संतुलित आहार, स्वच्छता और समय पर इलाज की जानकारी रखती है। इस कारण परिवार के बच्चों और सदस्यों का स्वास्थ्य बेहतर होता है और कुपोषण तथा शिशु मृत्यु दर में कमी आती है।

4. लैंगिक समानता की स्थापना-

समाज में लंबे समय से लड़कों और लड़कियों के बीच असमानता रही है। शिक्षा इस असमानता को कम करने का सबसे प्रभावी साधन है। शिक्षित बालिका अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहती है और किसी भी प्रकार के शोषण या भेदभाव का विरोध करने में सक्षम होती है। इस प्रकार बालिका शिक्षा लैंगिक समानता स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

5. आर्थिक सशक्तिकरण-

शिक्षा के माध्यम से लड़कियाँ उच्च शिक्षा और तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर विभिन्न व्यवसायों और सेवाओं में योगदान देती हैं। जब महिलाएँ कार्यक्षेत्र में सक्रिय होती हैं, तो परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है और देश की अर्थव्यवस्था को भी गति मिलती है। महिला श्रमशक्ति का प्रभावी उपयोग राष्ट्र की उन्नति के लिए अत्यंत आवश्यक है।

6. जनसंख्या नियंत्रण-

शिक्षा महिलाओं को विवाह और परिवार नियोजन संबंधी निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। एक शिक्षित महिला कम उम्र में विवाह नहीं करती और बच्चों की संख्या और उनके पालन-पोषण के प्रति जिम्मेदार रहती है। इससे न केवल जनसंख्या नियंत्रण में मदद मिलती है बल्कि जनसंख्या की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

7. सामाजिक कुरीतियों का अंत-

बालिका शिक्षा अंधविश्वास, दहेज प्रथा, बाल विवाह और घरेलू हिंसा जैसी सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षित महिलाएँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों को जानती हैं तथा समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में सक्षम होती हैं।

8. लोकतांत्रिक मूल्यों का संरक्षण-

एक शिक्षित महिला लोकतंत्र के महत्व को समझती है और उसमें सक्रिय भागीदारी निभाती है। वह मतदान के अधिकार का सही उपयोग करती है और समाज में जागरूक नागरिक के रूप में योगदान देती है। इस प्रकार बालिका शिक्षा लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा और सशक्तिकरण का आधार है।

9. राष्ट्रीय विकास में योगदान-

राष्ट्र निर्माण में महिला और पुरुष दोनों की समान भागीदारी आवश्यक है। यदि आधी जनसंख्या यानी महिलाएँ अशिक्षित रहेंगी तो राष्ट्र का विकास अधूरा रहेगा। बालिका शिक्षा से महिलाएँ विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, प्रशासन, राजनीति और उद्योग जैसे क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं। इस प्रकार बालिका शिक्षा राष्ट्र को आत्मनिर्भर और विकसित बनाने में सहायक है।

अतः बालिका शिक्षा का महत्व केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा से सशक्त हुई महिला समाज की प्रगति, बच्चों के उज्ज्वल भविष्य और राष्ट्र की मजबूती का आधार बनती है। अतः आवश्यक है कि समाज और सरकार मिलकर हर बालिका को शिक्षा का अवसर प्रदान करें। शिक्षा ही वह कुंजी है जो बालिकाओं के जीवन को उज्ज्वल बनाएगी और एक समृद्ध राष्ट्र की नींव रखेगी।

9.6 कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय-

भारत में शिक्षा को समानता, अवसर और सामाजिक न्याय का आधार माना गया है। संविधान ने सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार प्रदान किया है, किंतु स्वतंत्रता के दशकों बाद भी समाज के हाशिये पर रहने वाले वर्गों, विशेषकर ग्रामीण एवं वंचित वर्ग की लड़कियों के लिए शिक्षा का मार्ग आसान नहीं हो पाया। इस संदर्भ में बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित करने और उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से जोड़ने हेतु भारत सरकार ने कई पहल की हैं। इन्हीं पहलों में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV) योजना एक मील का पत्थर सिद्ध हुई है। यह योजना उन क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय स्थापित करने पर आधारित है, जहाँ लड़कियों की शिक्षा में गंभीर चुनौतियाँ हैं।

स्थापना-

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना की घोषणा 2004-05 में भारत सरकार द्वारा की गई थी। इसका प्रारंभ मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा मंत्रालय) के तहत हुआ। इस योजना का नाम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पत्नी कस्तूरबा गांधी के नाम पर रखा गया, जिन्होंने महिला शिक्षा, आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

स्थापना के मुख्य कारण-

- ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में लड़कियों की कम साक्षरता दर का होना ।
- अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक और गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की लड़कियों का विद्यालयों से वंचित रहना।
- सामाजिक बंधन, बाल विवाह और लैंगिक भेदभाव के कारण लड़कियों का विद्यालय छोड़ देना।
- शैक्षणिक अवसरों में असमानता तथा विद्यालयों तक पहुँच की समस्या।

समाज में व्याप्त इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, सरकार ने निर्णय लिया कि ऐसे अल्प-विकसित जिलों में आवासीय विद्यालय स्थापित किए जाएँ, जहाँ लड़कियों की शिक्षा को लेकर स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। जिससे बालिका शिक्षा को बढ़ावा इया जा सकें।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के उद्देश्य-

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना का मूल उद्देश्य निम्नवत है –

1. ग्रामीण, पिछड़े और वंचित वर्ग की बालिकाओं को आवासीय शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक समुदाय और गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों की बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ना।
3. छात्राओं को मुफ्त आवास, भोजन, वस्त्र, पुस्तकों, स्वास्थ्य और सुरक्षा की व्यवस्था प्रदान करना।
4. शिक्षा के साथ-साथ आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान और जीवन-कौशल का विकास करना।
5. सामाजिक, आर्थिक या पारिवारिक कारणों से स्कूल छोड़ चुकी बालिकाओं को पुनः शिक्षा की ओर प्रेरित करना।
6. बालिकाओं में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता का विकास करना।
7. बालिकाओं को विद्यालयों में सुरक्षित और प्रोत्साहनकारी वातावरण देकर बाल विवाह की प्रवृत्ति पर नियंत्रण पाना।
8. छात्राओं को व्यावसायिक शिक्षा, कंप्यूटर कौशल और जीवनोपयोगी प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाना।
9. बालिकाओं के शैक्षिक, शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना।

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों की उपलब्धियाँ-

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों की स्थापना के बाद से इन विद्यालयों ने निरंतर समाज में शिक्षा के प्रसार को तथा बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं जो निम्नवत हैं-

- ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों की लाखों बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ा गया।
- अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक समुदाय की बालिकाओं की शिक्षा सुनिश्चित की गयी।

- छात्राओं को निःशुल्क आवास, भोजन, वस्त्र, पुस्तकें, स्वास्थ्य सुविधा और सुरक्षित वातावरण प्रदान किया गया।
- समाज में बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं में कमी आई और विवाह की आयु में वृद्धि हुई।
- समाज में बालिकाओं में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ।
- उच्च शिक्षा और प्रोफेशनल कोर्स की ओर बालिकाओं को प्रेरित किया गया।
- इन विद्यालयों की पूर्व छात्राएँ शिक्षण, नर्सिंग, प्रशासन, खेल, कला और उद्यमिता में सफलता प्राप्त कर रही हैं।
- बालिकाओं को डिजिटल शिक्षा, कंप्यूटर प्रशिक्षण और व्यावसायिक कौशल विकास की सुविधाएँ दी गईं।
- समाज में बालिकाओं की शिक्षा के प्रति जागरूकता और सकारात्मक दृष्टिकोण बढ़ा।
- महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता को बढ़ावा मिला।
- समग्र शिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यालयों की संख्या बढ़ी और अधिक छात्राएँ लाभान्वित हुईं।
- बालिकाओं को सुरक्षित, अनुशासित और प्रेरणादायी वातावरण उपलब्ध कराया गया।

अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1- बेटी बचाओं बेटी पढाओं अभियान की शुरुआत कहाँ से हुई थी

प्रश्न 2- बेटी बचाओं बेटी पढाओं अभियान की शुरुआत किस प्रधानमंत्री ने की

प्रश्न 3- बेटी बचाओं बेटी पढाओं अभियान की शुरुआत कब हुई थी

प्रश्न 4- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों की शुरुआत कब की गयी थी

प्रश्न 5- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय किसके नाम से रखे गये थे

9.7 सारांश -

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में शिक्षा को मानव संसाधन विकास और सामाजिक प्रगति का सबसे सशक्त साधन माना गया है। किसी भी समाज या देश की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ महिलाओं और पुरुषों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। लंबे समय तक भारतीय समाज में बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रखा गया, जिसके परिणामस्वरूप महिला साक्षरता दर, रोजगार के अवसर, स्वास्थ्य सुविधाएँ और सामाजिक सम्मान में असमानता देखी गई। इस स्थिति को बदलने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों ने समय-समय पर कई योजनाएँ चलाईं, जिनमें बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ और कस्तूरबा गांधी आवासीय बालिका विद्यालय जैसी योजनाएँ अत्यंत प्रभावी साबित हुई हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ और कस्तूरबा गांधी आवासीय बालिका विद्यालय जैसी योजनाएँ बालिका शिक्षा की दृष्टि से मील का पत्थर साबित हुई हैं। इन्होंने बालिकाओं को शिक्षा, समान अवसर और सुरक्षित वातावरण प्रदान किया है तथा समाज में लिंग समानता और महिला सशक्तिकरण की नींव को मजबूत किया है। हालाँकि अभी भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, बेहतर अधोसंरचना और सामाजिक मानसिकता में बदलाव जैसी चुनौतियाँ शेष हैं, लेकिन इन योजनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि सरकार, समाज और परिवार मिलकर कार्य करें तो बालिकाएँ शिक्षा के क्षेत्र में किसी से पीछे नहीं रह सकतीं। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि इन योजनाओं ने न केवल बालिकाओं के जीवन को दिशा दी है बल्कि भारत के उज्ज्वल भविष्य की आधारशिला भी रखी है।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

उत्तर-1- हरियाणा से,

उत्तर-2- नरेन्द्र मोदी जी,

उत्तर-3- हरियाणा से,

उत्तर-4- 2004 -2005,

उत्तर-5- गाँधी जी की पत्नी के नाम पर,

9.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न.1- सरकार द्वारा चलायें जा रहें बालिका शिक्षा हेतु कार्यक्रमों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

प्रश्न.2- बेटी बचाओं बेटी पढाओं अभियान का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

प्रश्न.3- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों के उद्देश्यों एवं उपलब्धियों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

प्रश्न.4- बालिका शिक्षा के महत्वों का वर्णन कीजिये।

9.10 सन्दर्भ-

1. NCERT (2006). Position Paper on Gender Issues in Education. National Focus Group, NCERT, New Delhi.
2. NCERT (2014). Gender Issues in Education. National Council of Educational Research and Training, New Delhi.
3. Nayar, Usha (2011). Gender Equity and Education. New Delhi: UNESCO.
4. Sharma, Archana (2012). Gender, School and Society. Shipra Publications, New Delhi.

इकाई: 10 लैंगिक संवेदनशीलता में मीडिया की भूमिका

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 उद्देश्य (Objectives)

10.3 लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा

10.4 मीडिया की अर्थ

10.5 मीडिया के प्रकार

10.6 लैंगिक संवेदनशीलता में मीडिया की भूमिका

10.7 लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियाँ

10.8 लैंगिक संवेदनशीलता के समाधान और सुझाव

अपनी उन्नति जानिए

10.9 सारांश (Summary)

10.10 शब्दावली (Vocauolary)

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practices Question)

10.12 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

10.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

10.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

10.1 प्रस्तावना

मानव समाज में पुरुष और महिला दोनों की समान भूमिका और योगदान है, लेकिन ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो महिलाओं को हमेशा हाशिए पर रखा गया है। पितृसत्तात्मक सोच ने स्त्रियों को केवल घर तक सीमित करने का प्रयास किया और शिक्षा, राजनीति, अर्थव्यवस्था जैसे क्षेत्रों में उन्हें अवसरों से वंचित रखा। समय के साथ–साथ जब शिक्षा और सामाजिक सुधार आंदोलनों का प्रसार हुआ, तब महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आने लगा। आज के दौर में मीडिया (समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविज़न, फ़िल्में, सोशल मीडिया आदि) समाज का दर्पण कहा जाता है। यह केवल सूचना का माध्यम नहीं है, बल्कि यह विचारधारा, संस्कृति और मान्यताओं को गढ़ने का सबसे सशक्त उपकरण है। मीडिया यह तय करता है कि कौन–सा मुद्दा समाज के लिए महत्वपूर्ण है और किसे अनदेखा किया जाना चाहिए। ऐसे में लैंगिक संवेदनशीलता का प्रश्न मीडिया के केंद्र में होना चाहिए।

लैंगिक संवेदनशीलता का अर्थ है कि स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार, अवसर और सम्मान मिले। जब मीडिया इस संवेदनशीलता को बढ़ावा देता है तो समाज में समानता, न्याय और समान अवसरों की स्थापना होती है। लेकिन जब मीडिया रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों को प्रस्तुत करता है तो लिंगभेद और गहरा हो जाता है। इसलिए मीडिया की भूमिका इस दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

10.2 लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा

लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitivity) से तात्पर्य ऐसे दृष्टिकोण, व्यवहार और समझ से है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के प्रति समान अवसर, सम्मान और अधिकारों की स्वीकृति हो। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति के साथ उसके लिंग (पुरुष, स्त्री या अन्य) के आधार पर भेदभाव न किया जाए, बल्कि सभी को समान रूप से महत्व और अवसर प्रदान किया जाए।

मुख्य बिंदु –

1. समानता का भाव – लैंगिक संवेदनशीलता यह सुनिश्चित करती है कि समाज में महिलाओं और पुरुषों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, निर्णय लेने तथा सामाजिक भागीदारी के अवसर समान रूप से मिलें।

2. पूर्वाग्रह का निवारण – यह अवधारणा उन परंपरागत रूढ़ियों (stereotypes) को चुनौती देती है, जिनके आधार पर महिलाओं को कमजोर या पुरुषों को श्रेष्ठ माना जाता रहा है।

3. सम्मान और स्वीकार्यता – इसमें प्रत्येक लिंग की गरिमा, भूमिकाओं और योगदान का सम्मान किया जाता है।

4. नीतियों और प्रक्रियाओं में समावेशन – शिक्षा, कानून, कार्यस्थल और सामाजिक संस्थाओं में ऐसे उपाय करना कि लिंग आधारित भेदभाव समाप्त हो और समान अवसर उपलब्ध हों।

5. संवेदनशील दृष्टिकोण – लैंगिक संवेदनशीलता का तात्पर्य केवल बराबरी की बात करना नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन स्थितियों में सहानुभूतिपूर्ण और न्यायपूर्ण व्यवहार अपनाना भी है। संक्षेप में, लैंगिक संवेदनशीलता एक ऐसी सामाजिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जो लैंगिक समानता को व्यवहार में लाने, भेदभाव को कम करने और सभी लिंगों को न्यायपूर्ण अवसर प्रदान करने पर केंद्रित है।

लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitivity) एक ऐसी सोच है जो स्त्री और पुरुष को समान दृष्टि से देखती है। यह केवल "महिला अधिकार" का प्रश्न नहीं, बल्कि मानवाधिकार और सामाजिक न्याय का मुद्दा है।

- **परिभाषा** : लैंगिक संवेदनशीलता का आशय है सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक ढाँचे में इस तरह से व्यवहार करना कि किसी भी व्यक्ति के साथ केवल उसके लिंग के आधार पर भेदभाव न हो।
- **उद्देश्य** :
    1. समाज में महिलाओं और पुरुषों को समान अवसर उपलब्ध कराना।
    2. लैंगिक भेदभाव को समाप्त करना।
    3. महिला सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना।
- **महत्व** : जब समाज में लैंगिक संवेदनशीलता होती है तो वहाँ विकास की प्रक्रिया संतुलित और न्यायपूर्ण होती है। शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, खेल और मीडिया में महिलाओं की समान भागीदारी से राष्ट्र की प्रगति सुनिश्चित होती है।

10.4 मीडिया की अर्थ

"मीडिया" शब्द अंग्रेज़ी के शब्द Media से लिया गया है, जिसका अर्थ है – सूचना, विचार, संदेश अथवा ज्ञान को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या बड़े समूह तक पहुँचाने का माध्यम। सरल शब्दों में कहा जाए तो –मीडिया वह साधन है जिसके द्वारा समाज में संचार (Communication) स्थापित होता है। मीडिया केवल समाचार देने का ही साधन नहीं है, बल्कि यह जनमत निर्माण, शिक्षा, मनोरंजन और सामाजिक जागरूकता का एक प्रभावशाली उपकरण है।

मीडिया आज के समय में समाज का चौथा स्तंभ माना जाता है। यह सूचना, ज्ञान और विचारों का सबसे सशक्त माध्यम बनकर जन-जीवन को प्रभावित करता है। डिजिटल क्रांति और सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने मीडिया को और अधिक व्यापक, त्वरित तथा प्रभावशाली बना दिया है।

मीडिया की भूमिका

1. सूचना का प्रसार – मीडिया लोगों तक देश-दुनिया की घटनाओं, वैज्ञानिक प्रगति, राजनीति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक परिवर्तनों की जानकारी तुरंत पहुँचाता है।

2. जन-जागरूकता – मीडिया सामाजिक बुराइयों, भ्रष्टाचार, लैंगिक असमानता, पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं पर जनता को जागरूक करने में अहम भूमिका निभाता है।

3. लोकतंत्र का प्रहरी – लोकतंत्र में मीडिया जनमानस की आवाज़ सरकार तक पहुँचाता है और शासन की गतिविधियों पर निगरानी रखता है। इसे "जनता और सरकार के बीच सेतु" भी कहा जाता है।

4. शिक्षा और ज्ञान का संवाहक – समाचार पत्र, शैक्षिक कार्यक्रम, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और सोशल मीडिया शिक्षा व कौशल विकास को बढ़ावा देते हैं।

5. मनोरंजन का साधन – फ़िल्म, संगीत, खेल, धारावाहिक और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म आज के समाज के लिए प्रमुख मनोरंजन साधन हैं।

6. आर्थिक महत्व – विज्ञापन और ब्रांड प्रचार के माध्यम से मीडिया व्यापार और अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करता है।

7. सामाजिक एकता और वैश्विक दृष्टिकोण – मीडिया सीमाओं को तोड़कर विभिन्न संस्कृतियों, परंपराओं और विचारों को साझा करने का अवसर देता है, जिससे वैश्विक भाईचारा और समझ बढ़ती है।

संक्षेप में, वर्तमान समय में मीडिया केवल सूचना का साधन नहीं रहा, बल्कि यह समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और शिक्षा के हर क्षेत्र को प्रभावित करने वाला शक्तिशाली उपकरण बन चुका है।

10.5 मीडिया के प्रकार

मीडिया एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सूचना, विचार, ज्ञान और मनोरंजन लोगों तक पहुँचता है। इसके प्रकार इस प्रकार हैं:

मीडिया के प्रकार मुख्य रूप से उनकी प्रकृति, उपयोग और तकनीक के आधार पर वर्गीकृत किए जाते हैं। प्रमुख प्रकार इस प्रकार हैं –

1. पारंपरिक (Traditional) मीडिया

मौखिक परंपरा – लोकगीत, लोककथाएँ, नाटक, कथा-वार्ता

प्रिंट मीडिया – समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पम्पलेट, पोस्टर

जनसंचार के पारंपरिक माध्यम – कठपुतली, नौटंकी, भजन-कीर्तन, चित्रकला

2. आधुनिक (Modern) मीडिया

प्रिंट मीडिया – समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया – रेडियो, टेलीविज़न, सिनेमा

डिजिटल मीडिया – सोशल मीडिया (Facebook, WhatsApp, Instagram, Twitter/X), ब्लॉग, वेबसाइटें, पॉडकास्ट

3. दृश्य एवं श्रव्य (Visual & Audio) मीडिया

श्रव्य मीडिया (Audio Media) – रेडियो, ऑडियो कैसेट/सीडी, पॉडकास्ट

दृश्य मीडिया (Visual Media) – पोस्टर, पेंटिंग, फिल्म, टेलीविज़न, इंटरनेट

श्रव्य-दृश्य मीडिया (Audio-Visual Media) – टीवी, फिल्म, यूट्यूब, ऑनलाइन वेब सीरीज़

4. सामाजिक एवं सामुदायिक मीडिया

सामुदायिक रेडियो

स्थानीय समाचार पत्र

ग्रामीण/क्षेत्रीय नाटक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि मीडिया को प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, डिजिटल और पारंपरिक रूपों में बाँटा जा सकता है।

1. प्रिंट मीडिया – समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल।
2. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया – रेडियो, टेलीविज़न, फ़िल्में।
3. डिजिटल/सोशल मीडिया – इंटरनेट, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब आदि।
4. वैकल्पिक मीडिया – सामुदायिक रेडियो, ब्लॉग, पॉडकास्ट, वेब पोर्टल।

आज डिजिटल क्रांति ने मीडिया को सर्वसुलभ बना दिया है। हर व्यक्ति एक तरह से ''नागरिक पत्रकार'' बन गया है।

मीडिया में लैंगिक छवियाँ

मीडिया समाज का दर्पण कहा जाता है, लेकिन यह दर्पण हमेशा वास्तविकता नहीं दिखाता।

- **सकारात्मक छवियाँ** : महिला खिलाड़ियों, वैज्ञानिकों, लेखिकाओं, उद्यमियों की सफलता की कहानियाँ सामने लाना।
- **नकारात्मक छवियाँ** : विज्ञापनों और फिल्मों में महिला को केवल आकर्षण की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करना।
- **रूढ़िबद्ध छवियाँ** : टीवी धारावाहिकों में महिलाओं को केवल त्यागमयी माँ, आदर्श पत्नी या गृहिणी के रूप में ही दिखाना।

ये छवियाँ समाज की सोच को प्रभावित करती हैं। यदि मीडिया महिलाओं को केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित करेगा तो समाज में भी यही मानसिकता बनेगी।

मीडिया की सकारात्मक भूमिका

1. जागरूकता फैलाना – सरकार द्वारा चलाए गए ‘‘बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ’’, ‘‘सुकन्या समृद्धि योजना’’, ‘‘पोशण अभियान’’ आदि कार्यक्रमों को मीडिया ने आम जनता तक पहुँचाया।
2. महिला उपलब्धियों को प्रचारित करना – कल्पना चावला, पी.वी. सिंधु, मैरी कॉम, अवनी चतुर्वेदी जैसी महिलाओं की सफलता को मीडिया ने रोल मॉडल की तरह प्रस्तुत किया।
3. महिला अधिकारों पर बहस – टीवी डिबेट, समाचार रिपोर्ट और डॉक्यूमेंट्री के माध्यम से घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न और लैंगिक भेदभाव पर चर्चा होती है।
4. सोशल मीडिया आंदोलन – #MeToo, #SelfieWithDaughter, #GirlsCount जैसे अभियान समाज में महिलाओं की स्थिति को केंद्र में लाते हैं।
5. सकारात्मक आदर्श – कुछ धारावाहिकों और फिल्मों ने महिलाओं को सशक्त, आत्मनिर्भर और निर्णायक भूमिका में प्रस्तुत किया है।

मीडिया की नकारात्मक भूमिका

1. **वस्तुकरण (Objectification)** – विज्ञापनों और फिल्मों में महिलाओं को केवल सौंदर्य और आकर्षण के प्रतीक के रूप में दिखाया जाता है।

2. **हिंसा का सामान्यीकरण** – टीवी शो और फिल्मों में महिला पर हिंसा को मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
3. **पूर्वाग्रहों का प्रसार** – "लड़कियाँ पढ़–लिख कर भी अंततः घर के लिए ही हैं" जैसी सोच को बढ़ावा देना।
4. **महिला पत्रकारों की चुनौतियाँ** – मीडिया संस्थानों के भीतर भी महिलाएँ असमानता और उत्पीड़न का सामना करती हैं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत में मीडिया का इतिहास यह दर्शाता है कि महिला मुद्दों को समय–समय पर महत्व मिला है।

- **स्वतंत्रता संग्राम काल** – पत्र–पत्रिकाओं ने बाल विवाह, पर्दा प्रथा और महिला शिक्षा पर लेख प्रकाशित किए।
- **स्वतंत्र भारत** – रेडियो और टेलीविज़न ने महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवार नियोजन पर कार्यक्रम बनाए।
- **वर्तमान** – सोशल मीडिया ने महिला आंदोलनों को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर स्वर दिया।

शिक्षा और मीडिया का संबंध

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में मीडिया का प्रयोग लैंगिक संवेदनशीलता बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

- बालिकाओं की उपलब्धियों पर आधारित डॉक्यूमेंट्री और फिल्में दिखाना।
- सोशल मीडिया अभियानों में विद्यार्थियों की भागीदारी कराना।
- पाठ्यचर्या में मीडिया साक्षरता (Media Literacy) को शामिल करना ताकि विद्यार्थी लैंगिक भेदभावपूर्ण छवियों को पहचान सकें।

10.6 लैंगिक संवेदनशीलता में मीडिया की भूमिका

लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitization) का अर्थ है समाज के सभी वर्गों को स्त्री-पुरुष समानता, सम्मान, समान अवसर, और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति जागरूक बनाना। इस प्रक्रिया में मीडिया (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, डिजिटल और सोशल मीडिया) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समाज का दर्पण भी है और विचारों को गढ़ने वाला साधन भी।

नीचे लैंगिक संवेदनशीलता में मीडिया की भूमिका का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है—

1. जागरूकता फैलाना- मीडिया लैंगिक भेदभाव, हिंसा, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या जैसी समस्याओं पर लोगों को जागरूक करता है। अखबारों, टीवी चैनलों, रेडियो और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के माध्यम से महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के संदेश व्यापक जनमानस तक पहुँचते हैं।

2. महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना- मीडिया सफल महिलाओं की कहानियों को प्रस्तुत कर समाज में सकारात्मक उदाहरण स्थापित करता है। खेल, राजनीति, विज्ञान, कला और व्यवसाय में महिलाओं की उपलब्धियों को उजागर कर यह संदेश देता है कि महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं।

3. समानता आधारित दृष्टिकोण का निर्माण- टीवी धारावाहिक, फिल्मों और विज्ञापनों में लैंगिक समानता पर आधारित सामग्री दिखाकर मीडिया लोगों की सोच बदलने में मदद करता है। पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान अधिकार और अवसर देने की आवश्यकता को मीडिया निरंतर उजागर करता है।

4. भ्रांतियों और पूर्वाग्रहों को चुनौती देना- मीडिया पारंपरिक रूढ़िवादी सोच और लैंगिक असमानता को बढ़ाने वाले मिथकों को तोड़ता है। उदाहरण के लिए, घर का काम केवल महिलाओं का दायित्व है—इस तरह की धारणाओं को मीडिया सकारात्मक संदेशों द्वारा बदलने का प्रयास करता है।=

5. नीतिगत समर्थन और दबाव- मीडिया सरकारी नीतियों, कानूनों और योजनाओं जैसे—"बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ", "महिला हेल्पलाइन", "घरेलू हिंसा अधिनियम"—को प्रचारित कर जनसहभागिता बढ़ाता है।

साथ ही, यदि कहीं महिलाओं के साथ अन्याय या हिंसा होती है तो मीडिया उस मुद्दे को उठाकर प्रशासन और समाज पर कार्रवाई का दबाव बनाता है।

6. जनमत निर्माण- मीडिया चर्चाओं, वाद-विवादों, टॉक शो और लेखों के माध्यम से लैंगिक मुद्दों पर जनमत तैयार करता है। सोशल मीडिया पर चलने वाले अभियानों (#MeToo, #HeForShe आदि) ने वैश्विक स्तर पर लैंगिक समानता की आवाज़ बुलंद की है।

7. युवाओं और बच्चों पर प्रभाव- कार्टून, शैक्षिक कार्यक्रम, वेब-सीरीज़ और सोशल मीडिया प्लेटफार्म युवा पीढ़ी की सोच पर सीधा प्रभाव डालते हैं। लैंगिक संवेदनशीलता पर आधारित सामग्री बच्चों और युवाओं में समानता एवं सम्मान की संस्कृति विकसित करने में मदद करती है।

निष्कर्ष- मीडिया केवल सूचना का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी उपकरण है। यदि मीडिया लैंगिक संवेदनशीलता को अपनी प्राथमिकता बनाए रखे तो समाज में महिला-पुरुष समानता की दिशा में बड़ा बदलाव संभव है। यह न केवल लैंगिक भेदभाव को कम करेगा, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समानता-आधारित और प्रगतिशील समाज के निर्माण में भी अहम भूमिका निभाएगा।

10.7 लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियाँ

लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitization) का तात्पर्य है समाज में स्त्री-पुरुष, तृतीय लिंग और विभिन्न लैंगिक पहचानों के प्रति समान दृष्टिकोण, सम्मान और अवसर प्रदान करना। परंतु इसे व्यवहार में लाना अनेक चुनौतियों से भरा है। प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ- परंपरागत पितृसत्तात्मक सोच स्त्रियों को घरेलू भूमिकाओं तक सीमित रखती है। समाज में बेटा-बेटी के भेदभाव, दहेज प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ अब भी मौजूद हैं।

2. शैक्षिक क्षेत्र की चुनौतियाँ- विद्यालयों में लैंगिक संवेदनशील पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण-पद्धति की कमी। लड़कियों के लिए सुरक्षित व अनुकूल वातावरण का अभाव। शिक्षकों में लैंगिक मुद्दों की समझ और प्रशिक्षण की कमी।

3. आर्थिक बाधाएँ- स्त्रियों को बराबरी का रोजगार और वेतन नहीं मिलना। परिवारों द्वारा लड़कियों की शिक्षा को महत्व न देना। कार्यक्षेत्र में 'ग्लास सीलिंग' और असमान अवसर।

4. कानूनी व नीतिगत चुनौतियाँ- महिलाओं एवं लैंगिक अल्पसंख्यकों के संरक्षण हेतु कानून तो बने हैं, परंतु उनका प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो पाता। ग्रामीण व दूरस्थ क्षेत्रों में जागरूकता की कमी।

5. मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति- विज्ञापनों, फिल्मों और धारावाहिकों में लैंगिक रूढ़िवादिता का चित्रण। स्त्रियों को वस्तु के रूप में प्रस्तुत करना।

6. राजनीतिक एवं प्रशासनिक चुनौतियाँ- निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों की भागीदारी कम। नीतियों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन के बीच अंतर।

7. मानसिकता और दृष्टिकोण की समस्या- लैंगिक समानता को "सिर्फ महिला मुद्दा" मान लेना। पुरुषों में लैंगिक संवेदनशीलता की कमी और बदलाव का विरोध। तृतीय लिंग और अन्य लैंगिक पहचानों के प्रति पूर्वाग्रह।

संक्षेप में, लैंगिक संवेदनशीलता की चुनौतियाँ केवल कानून बनाने या योजनाएँ तैयार करने से दूर नहीं होतीं। इसके लिए समाज की मानसिकता में परिवर्तन, शिक्षा-व्यवस्था में सुधार, प्रशासनिक उत्तरदायित्व और परिवार स्तर पर बराबरी की संस्कृति विकसित करनी आवश्यक है।

10.8 लैंगिक संवेदनशीलता के समाधान और सुझाव

लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitization) समाज में समान अवसर, समान अधिकार और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण को स्थापित करने का माध्यम है। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। नीचे इसके प्रमुख समाधान और सुझाव दिए जा रहे हैं–

1. शैक्षिक स्तर पर समाधान- विद्यालयों और महाविद्यालयों में लैंगिक संवेदनशीलता पर आधारित पाठ्यक्रम और गतिविधियाँ शामिल की जाएँ। शिक्षकों को लैंगिक समानता पर विशेष प्रशिक्षण (Orientation & Training Programmes) दिया जाए। पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण सामग्री में लैंगिक भेदभावपूर्ण चित्रण से बचा जाए।

2. परिवार और समाज स्तर पर सुझाव- परिवार में बेटा–बेटी दोनों को समान अवसर और स्वतंत्रता प्रदान की जाए। विवाह, रोजगार और शिक्षा में लिंग आधारित भेदभाव की मानसिकता को समाप्त किया जाए। समाज में "लड़का-लड़की में भेदभाव" पर संवाद और जागरूकता अभियान चलाए जाएँ।

3. कानूनी और नीतिगत समाधान- महिलाओं एवं पुरुषों के अधिकारों की रक्षा के लिए बने कानूनों का सख्ती से पालन किया जाए। कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (Sexual Harassment) रोकने के लिए POSH Act का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए। सरकार लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियों (जैसे – बेटियों की शिक्षा, महिलाओं की भागीदारी) को मजबूती से लागू करे।

4. मीडिया और संचार स्तर पर सुझाव- मीडिया में महिलाओं और पुरुषों का संतुलित और सकारात्मक चित्रण किया जाए। फिल्मों, धारावाहिकों और विज्ञापनों में लैंगिक रूढ़ियों (Stereotypes) से बचा जाए। सोशल मीडिया पर लैंगिक समानता से जुड़े जागरूकता अभियान चलाए जाएँ।

5. कार्यस्थल और संस्थागत स्तर पर समाधान- महिलाओं को नेतृत्व की भूमिकाओं में प्रोत्साहन मिले। कार्यस्थल पर समान वेतन, समान अवसर और सुरक्षित माहौल सुनिश्चित किया जाए। लैंगिक विविधता (Gender Diversity) को संस्थागत नीतियों का हिस्सा बनाया जाए।

6. व्यक्तिगत स्तर पर सुझाव- अपने व्यवहार और भाषा में लिंगभेद से बचें। दूसरों के अधिकारों, भावनाओं और स्वतंत्रता का सम्मान करें। समानता और सहयोग की भावना को बढ़ावा दें।

संक्षेप में, लैंगिक संवेदनशीलता को व्यवहार, शिक्षा, कानून, नीतियों और मीडिया सभी स्तरों पर लागू करने से ही वास्तविक समानता स्थापित की जा सकती है। मीडिया साक्षरता को शिक्षा का हिस्सा बनाया जाए। नियामक संस्थाएँ (जैसे प्रेस काउंसिल, विज्ञापन परिषद) सख्ती से निगरानी करें। महिला पत्रकारों और संपादकों की भागीदारी बढ़ाई जाए। विज्ञापनों और कार्यक्रमों में लैंगिक संवेदनशीलता अनिवार्य हो। सरकार और गैर–सरकारी संगठन मिलकर जन–जागरूकता अभियान चलाएँ।

अपनी उन्नति जानिए

सही विकल्प का चयन कीजिये

प्रश्न 1. लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitivity) का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A) केवल महिला अधिकारों की रक्षा करना

B) स्त्री और पुरुष को समान अवसर व सम्मान देना

C) पुरुषों को अधिक अधिकार प्रदान करना

D) मीडिया में महिलाओं की संख्या बढ़ाना

प्रश्न 2. "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" अभियान को लोकप्रिय बनाने में किसकी अहम भूमिका रही है?

A) शिक्षा नीति

B) मीडिया

C) न्यायपालिका

D) पंचायत व्यवस्था

प्रश्न 3.

निम्न में से मीडिया की नकारात्मक भूमिका कौन-सी है?

A) महिला उपलब्धियों का प्रचार

B) महिला का वस्तुकरण

C) अधिकारों पर बहस

D) सोशल मीडिया आंदोलन

प्रश्न 4.

"#MeToo आंदोलन" मुख्य रूप से किससे संबंधित है?

A) महिला शिक्षा

B) महिला स्वास्थ्य

C) यौन उत्पीड़न और लैंगिक असमानता

D) महिला राजनीति

10.9 सारांश

मीडिया आज समाज को गढ़ने की सबसे प्रभावशाली शक्ति है। यह समाज की सोच को दिशा देता है। यदि मीडिया स्त्रियों की छवि को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत करे और लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा दे, तो समाज में समानता और न्याय स्थापित हो सकता है। लेकिन यदि मीडिया रूढ़िबद्ध छवियाँ और वस्तुकरण को ही बढ़ावा देगा तो लिंगभेद और गहराएगा। इसलिए आवश्यक है कि मीडिया अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को समझे और पुरुष व महिला दोनों को समान अवसर, सम्मान और पहचान दिलाने में सक्रिय भूमिका निभाए। यही सच्चे अर्थों में समाज को समानता और न्याय की ओर ले जाने वाला मार्ग होगा।

10.10 शब्दावली (Vocauolary)

लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitivity)- लैंगिक संवेदनशीलता (Gender Sensitivity) से तात्पर्य ऐसे दृष्टिकोण, व्यवहार और समझ से है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के प्रति समान अवसर, सम्मान और अधिकारों की स्वीकृति हो। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति के साथ उसके लिंग (पुरुष, स्त्री या अन्य) के आधार पर भेदभाव न किया जाए, बल्कि सभी को समान रूप से महत्व और अवसर प्रदान किया जाए।

मीडिया- "मीडिया" शब्द अंग्रेज़ी के शब्द Media से लिया गया है, जिसका अर्थ है – सूचना, विचार, संदेश अथवा ज्ञान को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या बड़े समूह तक पहुँचाने का माध्यम। सरल शब्दों में कहा जाए तो – मीडिया वह साधन है जिसके द्वारा समाज में संचार (Communication) स्थापित होता है। मीडिया केवल समाचार देने का ही साधन नहीं है, बल्कि यह जनमत निर्माण, शिक्षा, मनोरंजन और सामाजिक जागरूकता का एक प्रभावशाली उपकरण है।

जागरूकता - मीडिया लैंगिक भेदभाव, हिंसा, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या जैसी समस्याओं पर लोगों को जागरूक करता है। अखबारों, टीवी चैनलों, रेडियो और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के माध्यम से महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के संदेश व्यापक जनमानस तक पहुँचते हैं।

महिला सशक्तिकरण - मीडिया सफल महिलाओं की कहानियों को प्रस्तुत कर समाज में सकारात्मक उदाहरण स्थापित करता है। खेल, राजनीति, विज्ञान, कला और व्यवसाय में महिलाओं की उपलब्धियों को उजागर कर यह संदेश देता है कि महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं।

सकारात्मक छवियाँ : महिला खिलाड़ियों, वैज्ञानिकों, लेखिकाओं, उद्यमियों की सफलता की कहानियाँ सामने लाना।

नकारात्मक छवियाँ : विज्ञापनों और फिल्मों में महिला को केवल आकर्षण की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करना।

रूढ़िबद्ध छवियाँ : टीवी धारावाहिकों में महिलाओं को केवल त्यागमयी माँ, आदर्श पत्नी या गृहिणी के रूप में ही दिखाना।

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practices Question)

प्र01 **उत्तर:** B) स्त्री और पुरुष को समान अवसर व सम्मान देना,

प्र0 2 **उत्तर:** B) मीडिया,

उत्तर:3 B) महिला का वस्तुकरण,

उत्तर: 4 C) यौन उत्पीड़न और लैंगिक असमानता

10.12 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

1. माध्यम और समाज – **डॉ. संजय द्विवेदी**
2. मीडिया विमर्श और स्त्री – **डॉ. रमा शंकर तिवारी**
3. भारतीय समाज और लैंगिक समानता – **प्रो. प्रभा ठाकुर**
4. महिला और मीडिया – **डॉ. सुषमा** □ National Policy for Empowerment of Women, Government of India
5. Beti Bachao, Beti Padhao Scheme – Official Documents (GoI)
6. Press Council of India Reports on Gender Sensitivity in Media
7. समकालीन मीडिया और स्त्री विमर्श – **डॉ. अर्चना सिंह**

10.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

10.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

प्रश्न 1. लैंगिक संवेदनशीलता की अवधारणा स्पष्ट करते हुए मीडिया की सकारात्मक भूमिका पर विस्तृत प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2. मीडिया में महिलाओं की छवि (Image of Women in Media) पर चर्चा कीजिए और इसके समाज पर प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न 3. भारत में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में मीडिया द्वारा चलाए गए अभियानों एवं आंदोलनों का मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 4. मीडिया की नकारात्मक भूमिका एवं उससे उत्पन्न चुनौतियों पर चर्चा कीजिए तथा सुधार हेतु ठोस सुझाव प्रस्तुत कीजिए।

संदर्भग्रन्थ सूची:

इकाई 11– समाज सुधार आन्दोलन एवं भारत में लैंगिक न्याय

11.1 प्रस्तावना (Introduction)
11.2 उद्देश्य (Objectives)
11.3 समाज सुधार का अर्थ
11.4 समाज सुधार आन्दोलन
11.5 समाज सुधार आन्दोलनों की भूमिका
अपनी उन्नति जानिए
11.6 लैंगिक न्याय का अर्थ
11.7 समाज सुधार आन्दोलनों की लैंगिक न्याय में भूमिका
11.8 भारत में लैंगिक न्याय
अपनी उन्नति जानिए
11.9 सारांश (Summary)
11.10 शब्दावली (Vocauolary)
11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practices Question)
11.12 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)
11.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
11.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय समाज के विकासक्रम में समाज सुधार आंदोलनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। 19वीं और 20वीं शताब्दी में जब भारतीय समाज अनेक कुरीतियों, अंधविश्वासों, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा और स्त्रियों की उपेक्षा जैसी विषमताओं से ग्रस्त था, तब विभिन्न समाज सुधारकों और आंदोलनों ने इन चुनौतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इन आंदोलनों का प्रमुख उद्देश्य समाज को आधुनिक, न्यायसंगत और समानतापूर्ण दिशा में अग्रसर करना था।

विशेष रूप से स्त्रियों की स्थिति सुधारने और उन्हें शिक्षा, संपत्ति, विवाह एवं सामाजिक जीवन में समान अधिकार दिलाने के प्रयास समाज सुधार आंदोलनों की धुरी रहे। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई तथा महात्मा गांधी जैसे महान विचारकों और सुधारकों ने स्त्रियों के उत्थान, शिक्षा और स्वतंत्रता के लिए उल्लेखनीय योगदान दिया। यही प्रयास आगे चलकर भारतीय समाज में लैंगिक न्याय की अवधारणा के लिए आधारशिला सिद्ध हुए।

लैंगिक न्याय केवल स्त्रियों को अधिकार दिलाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज में स्त्री और पुरुष के बीच समानता, गरिमा और अवसरों की समान पहुँच सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है। स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान ने समानता और न्याय को मूल अधिकारों के रूप में प्रतिष्ठित किया, जिससे लैंगिक समानता के संवैधानिक और विधिक आयाम स्पष्ट हुए। आज शिक्षा, रोजगार, राजनीति और सामाजिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए किए जा रहे प्रयास इन्हीं ऐतिहासिक सुधार आंदोलनों की देन हैं।

यह पुस्तक पाठकों को भारतीय समाज सुधार आंदोलनों की पृष्ठभूमि, उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों और विशेष रूप से लैंगिक न्याय की दिशा में उनके योगदान से परिचित कराती है। साथ ही यह पुस्तक समकालीन समाज में लैंगिक समानता की चुनौतियों और संभावनाओं पर भी विमर्श करती है। आशा है कि यह पुस्तक शोधार्थियों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और समाज सुधार की प्रक्रिया में रुचि रखने वाले सभी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

भारतीय समाज में समय-समय पर चले समाज सुधार आंदोलनों ने केवल सामाजिक कुरीतियों को चुनौती ही नहीं दी, बल्कि एक न्यायपूर्ण और समानतामूलक व्यवस्था की नींव रखने का कार्य भी किया। 19वीं शताब्दी में जब भारतीय समाज सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा पर रोक, जातिगत भेदभाव तथा धार्मिक अंधविश्वासों से जकड़ा हुआ था, उस समय समाज सुधारकों ने इन कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इस प्रक्रिया ने आगे चलकर भारतीय समाज को आधुनिकता, प्रगतिशीलता और लोकतांत्रिक मूल्यों की ओर अग्रसर किया।

समाज सुधार आंदोलनों में लैंगिक प्रश्न विशेष महत्व का रहा। राजा राममोहन राय द्वारा सती प्रथा का विरोध, ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा का समर्थन, दयानंद सरस्वती का 'स्त्री–पुरुष समानता' का उद्घोष, ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले का स्त्री शिक्षा एवं दलित–वंचित वर्ग की upliftment की दिशा में कार्य, पंडिता रमाबाई का स्त्री स्वाधीनता और आत्मनिर्भरता पर बल—ये सभी प्रयास लैंगिक न्याय की अवधारणा की जड़ें गहराई तक स्थापित करते हैं। महात्मा गांधी ने भी स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं को सामाजिक–राजनीतिक नेतृत्व में स्थान देकर यह सिद्ध कर दिया कि लैंगिक न्याय केवल सामाजिक सुधार का मुद्दा नहीं, बल्कि राष्ट्रनिर्माण का आधार है।

स्वतंत्र भारत का संविधान लैंगिक समानता को मूलभूत अधिकार के रूप में सुनिश्चित करता है। अनुच्छेद 14, 15 और 16 सभी नागरिकों को समानता, भेदभाव निषेध और समान अवसर का अधिकार प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, समान वेतन का प्रावधान, और हाल ही में लिंग आधारित हिंसा, यौन उत्पीड़न तथा बालिकाओं की सुरक्षा संबंधी कानूनों ने लैंगिक न्याय की दिशा में संवैधानिक और विधिक आधार को मजबूत किया है।

हालाँकि, यह भी स्वीकार करना होगा कि आज के भारत में लैंगिक समानता की चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं—बालिका शिक्षा में असमानता, महिला श्रम भागीदारी का निम्न स्तर, दहेज, घरेलू हिंसा, स्त्री–भ्रूण हत्या और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कमी जैसे मुद्दे अब भी लैंगिक न्याय को पूर्ण रूप से साकार होने से रोकते हैं। इस दृष्टि से समाज सुधार आंदोलनों के ऐतिहासिक संदर्भ को समझना, उनकी उपलब्धियों और सीमाओं का विश्लेषण करना तथा समकालीन समाज में लैंगिक न्याय की दिशा में नई रणनीतियों पर विमर्श करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

यह पुस्तक इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। इसमें भारतीय समाज सुधार आंदोलनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख आंदोलनों के स्वरूप, उनके द्वारा उठाए गए सामाजिक–सांस्कृतिक प्रश्नों तथा विशेष रूप से लैंगिक न्याय की दिशा में उनके योगदान का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पुस्तक समकालीन संदर्भों में लैंगिक असमानताओं की प्रकृति, शिक्षा और रोजगार में महिलाओं की भूमिका, नीति–निर्माण एवं विधिक हस्तक्षेप की उपयोगिता तथा लैंगिक न्याय के भविष्य पर भी विमर्श करती है।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

1. समाज सुधार के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. समाज सुधार आन्दोलनों के बारे में जान सकेंगे।
3. समाज सुधार आन्दोलनों की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. लैंगिक न्याय के अर्थ को आत्मसात कर सकेंगे।
5. समाज सुधार आन्दोलनों की लैंगिक न्याय में भूमिका की चर्चा कर सकेगें।
6. भारत में लैंगिक न्याय की वास्तविक स्थिति का वर्णन कर सकेगें।

11.3 समाज सुधार का अर्थ

भारत के सन्दर्भ में समाज सुधार का अर्थ है – भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, असमानताओं और शोषणकारी प्रथाओं को दूर कर एक न्यायपूर्ण, समानतामूलक और प्रगतिशील समाज की स्थापना करना। समाज सुधार केवल परम्परागत बुराइयों को समाप्त करने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक सुधारों का व्यापक रूप से समावेश है।

भारत में समाज सुधार की पृष्ठभूमि

भारत में प्राचीन काल से ही धर्म और दर्शन के माध्यम से समाज सुधार के प्रयास होते रहे हैं। बौद्ध और जैन धर्म ने अहिंसा, समानता और करुणा का संदेश देकर सुधार की दिशा दी। मध्यकाल में संतों (कबीर, गुरु नानक, मीरा, रैदास आदि) ने जातिगत भेदभाव और पाखंड के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

आधुनिक काल में (19वीं शताब्दी से) समाज सुधार आंदोलनों का विशेष महत्व रहा, क्योंकि उस समय भारतीय समाज में सती प्रथा, बाल विवाह, जातिगत भेदभाव, पर्दा प्रथा, स्त्रियों की अशिक्षा, विधवा की दयनीय स्थिति जैसी समस्याएँ व्याप्त थीं।

प्रमुख समाज सुधारक और उनके योगदान

1. राजा राममोहन राय – सती प्रथा के विरुद्ध आंदोलन, स्त्री शिक्षा पर बल, ब्रह्म समाज की स्थापना।

2. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर – विधवा विवाह का समर्थन, बाल विवाह विरोध, स्त्री शिक्षा का प्रसार।

3. स्वामी दयानंद सरस्वती – आर्य समाज की स्थापना, वेदों की ओर लौटने का आह्वान, जाति-विरोध।

4. महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले – स्त्री एवं दलित शिक्षा का प्रसार, जाति प्रथा का विरोध।

5. स्वामी विवेकानंद – युवा जागरण, शिक्षा और आत्मनिर्भरता का संदेश।

6. महात्मा गांधी – अस्पृश्यता उन्मूलन, सामाजिक समानता, स्त्रियों की भागीदारी पर बल।

समाज सुधार के प्रमुख आयाम

धार्मिक सुधार – अंधविश्वास, कर्मकाण्ड और पाखंड के विरुद्ध आंदोलन।

सामाजिक सुधार – सती प्रथा, बाल विवाह, जातिगत भेदभाव, पर्दा प्रथा और दहेज प्रथा के खिलाफ संघर्ष।

शैक्षिक सुधार – स्त्री शिक्षा, जन शिक्षा और जाति-निरपेक्ष शिक्षा की स्थापना।

राजनीतिक-सामाजिक चेतना – सुधार आंदोलनों ने राष्ट्रीय आंदोलन को भी प्रेरित किया।

वर्तमान सन्दर्भ में समाज सुधार

आज भी भारत में समाज सुधार की आवश्यकता है। दहेज, लिंगभेद, महिला हिंसा, जातिगत भेदभाव, नशाखोरी, पर्यावरण प्रदूषण, अशिक्षा जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं। आधुनिक समाज सुधार अब मानवाधिकार, लैंगिक समानता, शिक्षा का अधिकार, सामाजिक न्याय और सतत विकास जैसे मुद्दों पर केन्द्रित है।

इस प्रकार, भारत में समाज सुधार एक सतत प्रक्रिया है जिसने भारतीय समाज को परम्पराओं और आधुनिकता के संतुलन के साथ प्रगतिशील दिशा प्रदान की है।

समाज सुधार से तात्पर्य उन प्रयासों और आंदोलनों से है जिनका उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, अन्यायपूर्ण प्रथाओं तथा असमानताओं को दूर करके समाज को अधिक न्यायपूर्ण, समतामूलक, नैतिक और प्रगतिशील बनाना होता है।

दूसरे शब्दों में, समाज सुधार वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत समाज की बुराइयों (जैसे—जातिगत भेदभाव, बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, लैंगिक असमानता, अस्पृश्यता आदि) को समाप्त कर सामाजि मूल्यों, आदर्शों और संस्थाओं को नवीन, तार्किक तथा मानवीय आधार पर स्थापित किया जाता है।

मुख्य बिंदु :

1. अर्थ – समाज को बुराइयों और कुरीतियों से मुक्त कर नैतिक और प्रगतिशील दिशा में ले जाना।

2. उद्देश्य – समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय और मानवाधिकारों की स्थापना करना।

3. प्रकृति – यह एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें विचारधारा, शिक्षा, आंदोलन और कानून सभी शामिल होते हैं।

4. उपाय – शिक्षा, सामाजिक आंदोलन, जनजागरण, कानूनों का निर्माण एवं धार्मिक-सांस्कृतिक पुनर्व्याख्या।

सरल भाषा में कहा जाए तो, समाज सुधार का अर्थ है समाज को बुराइयों और असमानताओं से मुक्त कर उसे सही दिशा में आगे बढ़ाना।

11.4 समाज सुधार आन्दोलन

भारत के इतिहास में समाज सुधार आंदोलन एक महत्वपूर्ण सामाजिक चेतना का परिणाम था। यह आंदोलन 19वीं और 20वीं शताब्दी में विशेष रूप से उभरा, जब भारतीय समाज अनेक कुरीतियों, अंधविश्वासों, जातिगत भेदभाव, बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा उत्पीड़न, अशिक्षा, स्त्रियों की हीन स्थिति और अस्पृश्यता जैसी समस्याओं से ग्रसित था।

समाज सुधार आंदोलन का उद्देश्य इन कुरीतियों को समाप्त कर एक समतामूलक, प्रगतिशील और आधुनिक समाज की स्थापना करना था। इसमें भारतीय पुनर्जागरण और पश्चिमी शिक्षा का बड़ा योगदान रहा।

प्रमुख विशेषताएँ:

1. सामाजिक कुरीतियों का विरोध – सती प्रथा, बाल विवाह, दहेज प्रथा और अस्पृश्यता का उन्मूलन।

2. महिला उत्थान – विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, महिला शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों को समान अधिकार दिलाने के प्रयास।

3. शिक्षा का प्रसार – समाज सुधारकों ने शिक्षा को सामाजिक जागरण का आधार माना।

4. धार्मिक सुधार – अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के विरोध में तार्किक और नैतिक आधार पर धर्म की व्याख्या।

5. समानता और न्याय की स्थापना – जाति-पाँति, ऊँच-नीच और छुआछूत की प्रथाओं का विरोध।

प्रमुख समाज सुधारक एवं आंदोलन:

राजा राममोहन राय – ब्रह्म समाज की स्थापना, सती प्रथा का विरोध, विधवा पुनर्विवाह और महिला शिक्षा के समर्थक।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर – विधवा पुनर्विवाह आंदोलन और महिला शिक्षा के प्रणेता।

स्वामी दयानंद सरस्वती – आर्य समाज की स्थापना, वेदों की ओर लौटने का आह्वान, अंधविश्वास का विरोध।

महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले – शिक्षा और स्त्री-शूद्र उत्थान के महान कार्यकर्ता।

महात्मा गांधी – छुआछूत और अस्पृश्यता के विरोधी, सामाजिक समानता और स्वच्छता के समर्थक।

निष्कर्ष:

समाज सुधार आंदोलन ने भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की। इसने सामाजिक बुराइयों को दूर करने, स्त्रियों और कमजोर वर्गों को अधिकार दिलाने तथा आधुनिक, शिक्षित और जागरूक समाज की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही आंदोलन आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्र निर्माण का आधार बना।

11.5 समाज सुधार आन्दोलनों की भूमिका

समाज सुधार आंदोलनों की भूमिका भारतीय समाज के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इन आंदोलनों ने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, असमानताओं और शोषणकारी प्रथाओं को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया। इनके प्रमुख योगदान और भूमिकाएँ इस प्रकार हैं –

1. सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन

सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों को समाप्त करने के लिए सुधारकों ने आंदोलन चलाए।

विधवाओं के पुनर्विवाह, महिलाओं की शिक्षा और उनके अधिकारों की रक्षा हेतु प्रयास किए गए।

2. महिला सशक्तिकरण

राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले और अन्य सुधारकों ने महिलाओं को शिक्षा और समानता का अधिकार दिलाने का प्रयास किया।

महिला शिक्षा और सामाजिक सहभागिता के अवसरों का मार्ग प्रशस्त हुआ।

3. जातिगत असमानता के विरुद्ध संघर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर, नारायण गुरु, ज्योतिबा फुले जैसे नेताओं ने अस्पृश्यता और जातिगत ऊँच-नीच की प्रथाओं के खिलाफ संघर्ष किया।

दलितों और पिछड़े वर्गों को सामाजिक न्याय और समान अधिकार दिलाने की दिशा में समाज सुधार आंदोलनों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

4. शिक्षा का प्रसार

समाज सुधार आंदोलनों ने शिक्षा को समाज सुधार का मुख्य साधन माना।

स्त्रियों, दलितों और वंचित वर्गों के लिए विद्यालयों की स्थापना की गई।

शिक्षा के माध्यम से सामाजिक चेतना और आत्मसम्मान की भावना विकसित की गई।

5. राष्ट्रीय चेतना का विकास

समाज सुधार आंदोलनों ने लोगों में समानता, स्वतंत्रता और न्याय की चेतना जगाई।

इस चेतना ने आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम को भी बल प्रदान किया।

6. धार्मिक और सांस्कृतिक सुधार

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज जैसे संगठनों ने धर्म में व्याप्त अंधविश्वासों और बाहरी दिखावे का विरोध किया।

समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किकता को बढ़ावा दिया गया।

7. आधुनिक भारत की नींव

इन आंदोलनों ने आधुनिक भारत में लोकतंत्र, समानता, न्याय और मानवाधिकारों की अवधारणा को मजबूत आधार प्रदान किया।

भारतीय समाज को पश्चिमी विचारधारा और आधुनिक मूल्यों के साथ संतुलित करने का कार्य किया।

निष्कर्षतः, समाज सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने, समानता और न्याय आधारित व्यवस्था स्थापित करने तथा आधुनिक भारत के निर्माण की दिशा में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. ब्रह्म समाज की स्थापना किसने की?
2. समाज सुधार आंदोलनों ने किसको समाज सुधार का मुख्य साधन माना?
3. आर्य समाज की स्थापना किसने की?

11.6 लैंगिक न्याय का अर्थ

लैंगिक न्याय (Gender Justice) का आशय समाज में स्त्री और पुरुष को समान अवसर, अधिकार तथा सम्मान प्रदान करने से है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के साथ उसके लिंग (Gender) के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए।

लैंगिक न्याय का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि—

स्त्री और पुरुष दोनों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, संपत्ति, निर्णय लेने और राजनीतिक सहभागिता में समान अवसर मिले।

महिलाओं के साथ होने वाले शोषण, हिंसा, असमानता और भेदभाव को समाप्त किया जाए।

सामाजिक, सांस्कृतिक और कानूनी ढाँचों में समानता और न्याय की गारंटी दी जाए।

अर्थात्, लैंगिक न्याय वह अवस्था है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में बराबरी का दर्जा और अवसर प्राप्त हो, ताकि वे अपने जीवन को स्वतंत्रता, समानता और गरिमा के साथ जी सकें।

शिक्षा में लैंगिक न्याय का अर्थ

शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक न्याय (Gender Justice in Education) का आशय यह है कि शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों में स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेदभाव न हो, और दोनों को अपनी क्षमता का विकास करने का समान अवसर मिले।

शिक्षा में लैंगिक न्याय की मुख्य बातें –

1. समान अवसर – लड़कियों और लड़कों को शिक्षा में प्रवेश, उच्च शिक्षा, छात्रवृत्ति, करियर आदि में समान अवसर मिलें।

2. भेदभाव का उन्मूलन – पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण पद्धति और विद्यालयी वातावरण में लिंग आधारित पूर्वाग्रह या रूढ़िवादिता न हो।

3. सुरक्षित वातावरण – विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्राओं के लिए सुरक्षित, सहायक और प्रोत्साहित करने वाला माहौल उपलब्ध कराया जाए।

4. निर्णय लेने की क्षमता – शिक्षा के माध्यम से स्त्रियों को अपने जीवन से जुड़े निर्णय लेने की स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता मिले।

5. समावेशी दृष्टिकोण – समाज के सभी वर्गों, विशेषकर ग्रामीण, आदिवासी, दलित एवं वंचित वर्ग की बालिकाओं को शिक्षा के समान अवसर प्रदान किए जाएँ।

लैंगिक न्याय और शिक्षा

लैंगिक न्याय का तात्पर्य स्त्री और पुरुष को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में समान अधिकार, अवसर और गरिमा प्रदान करना है। इसका मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी भी व्यक्ति के साथ उसके लिंग के आधार पर भेदभाव न किया जाए और प्रत्येक को अपनी प्रतिभा और क्षमताओं के विकास का समान अवसर मिले।

शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक न्याय की विशेष भूमिका है, क्योंकि शिक्षा ही व्यक्ति को जागरूक, आत्मनिर्भर और निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। यदि शिक्षा में असमानता बनी रहती है तो समाज में स्त्री-पुरुष के बीच असमानताएँ और गहरी हो जाती हैं। इसलिए शिक्षा में लैंगिक न्याय की स्थापना अत्यंत आवश्यक है।

शैक्षिक दृष्टि से लैंगिक न्याय का अर्थ है कि लड़कियों और लड़कों को विद्यालय में प्रवेश, शिक्षण की गुणवत्ता, छात्रवृत्ति, संसाधन, उच्च शिक्षा और करियर निर्माण में समान अवसर प्राप्त हों। पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण पद्धतियों से लिंग आधारित रूढ़ियों को हटाया जाए, ताकि स्त्री-पुरुष दोनों अपनी रुचि और योग्यता के आधार पर आगे बढ़ सकें। साथ ही, विद्यालयी वातावरण को सुरक्षित और सहयोगपूर्ण बनाया जाए, ताकि विशेष रूप से बालिकाएँ बिना किसी भय और बाधा के शिक्षा प्राप्त कर सकें।

लैंगिक न्याय शिक्षा के माध्यम से न केवल महिलाओं को आत्मनिर्भर और सशक्त बनाता है, बल्कि पूरे समाज में समानता, लोकतांत्रिक मूल्यों और सतत विकास की नींव रखता है। अतः यह कहा जा सकता है कि लैंगिक न्याय और शिक्षा एक-दूसरे के पूरक हैं, और इनकी सुनिश्चितता से ही वास्तविक सामाजिक प्रगति संभव है।

इस प्रकार, शिक्षा में लैंगिक न्याय केवल लड़कियों को पढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा प्रणाली को इस तरह तैयार करना है कि वह स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए समानता, गरिमा और आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित कर सके।

11.7 समाज सुधार आन्दोलनों की लैंगिक न्याय में भूमिका

भारतीय समाज में लैंगिक न्याय की स्थापना का श्रेय काफी हद तक समाज सुधार आंदोलनों को जाता है। इन आंदोलनों ने न केवल स्त्रियों के अधिकारों को लेकर चेतना जगाई, बल्कि समाज की जड़ परंपराओं और कुप्रथाओं को चुनौती भी दी।

1. बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए आंदोलन चलाया, जिसके परिणामस्वरूप 1829 में सती प्रथा का अंत हुआ।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह को वैध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1856 का विधवा पुनर्विवाह अधिनियम इसी का परिणाम था।

बाल विवाह निषेध के लिए भी सुधारकों ने समाज को जागरूक किया और अंततः 1929 में शारदा एक्ट लागू हुआ।

2. स्त्रियों की शिक्षा

ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा का बीड़ा उठाया और लड़कियों के लिए स्कूल खोले।

विद्यासागर और दयानंद सरस्वती ने स्त्रियों की शिक्षा को सामाजिक उत्थान का आधार माना।

शिक्षा के माध्यम से स्त्रियाँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त होने लगीं।

3. सामाजिक कुरीतियों का विरोध

प्रथाओं जैसे दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, और स्त्रियों की उपेक्षा के विरुद्ध सुधारकों ने आवाज़ उठाई।

आर्य समाज और ब्रह्म समाज ने स्त्रियों को समान अधिकार दिलाने के लिए व्यापक सामाजिक चेतना उत्पन्न की।

4. समानता और आत्मसम्मान की भावना

सुधार आंदोलनों ने यह विचार स्थापित किया कि स्त्रियाँ केवल परिवार और गृहस्थी तक सीमित न रहकर समाज में समान भागीदारी कर सकती हैं।

दलित और पिछड़ी जातियों में भी स्त्रियों की स्थिति सुधारने का प्रयास किया गया।

5. आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों की नींव-इन आंदोलनों ने लैंगिक समानता की बुनियाद रखी, जिसने आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्र भारत में महिला अधिकारों, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी को दिशा दी।

निष्कर्ष: समाज सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए न्याय, समानता और गरिमा सुनिश्चित करने की राह खोली। ये आंदोलन लैंगिक न्याय की प्राप्ति के लिए सामाजिक, धार्मिक और कानूनी सुधारों का आधार बने।

11.8 भारत में लैंगिक न्याय

लैंगिक न्याय (Gender Justice) का अर्थ है– समाज में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार, अवसर, स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करना ताकि कोई भी व्यक्ति अपने लिंग के आधार पर भेदभाव, असमानता या शोषण का शिकार न हो। यह केवल विधिक समानता तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में बराबरी सुनिश्चित करना है।

भारत में लैंगिक न्याय की स्थिति

भारत में लैंगिक न्याय का प्रश्न ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ है। प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा, संपत्ति और धार्मिक कार्यों में पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे, किन्तु समय के साथ यह स्थिति कमजोर होती गई और स्त्रियाँ परंपराओं, रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण पिछड़ती गईं।

लैंगिक न्याय के लिए संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में लैंगिक न्याय सुनिश्चित करने हेतु अनेक अधिकार और प्रावधान दिए गए हैं–

1. अनुच्छेद 14 – कानून के समक्ष समानता और विधि के समान संरक्षण का अधिकार।
2. अनुच्छेद 15(1) – धर्म, जाति, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव का निषेध।
3. अनुच्छेद 15(3) – महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार।
4. अनुच्छेद 16 – रोजगार और पदों में समान अवसर।

5. अनुच्छेद 39(क), (ड) – पुरुष और महिला को समान वेतन और आजीविका का अधिकार।

6. अनुच्छेद 42 – प्रसूति राहत और मानवोचित कार्य दशाओं का प्रावधान।

प्रमुख कानूनी और नीतिगत पहल

सती प्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1829

बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1929 (संशोधित 2006)

दहेज निषेध अधिनियम, 1961

गर्भधारण पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994 (PCPNDT Act)

घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005

यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, 2013 (कार्यस्थल पर)

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान

महिला आरक्षण विधेयक, 2023 (लोकसभा और विधानसभा में 33% आरक्षण)

वर्तमान चुनौतियाँ

दहेज प्रथा और घरेलू हिंसा

भ्रूण हत्या और लिंगानुपात असंतुलन

कार्यस्थल पर असमान वेतन और उत्पीड़न

शिक्षा और स्वास्थ्य में असमान अवसर

राजनीति और निर्णय-निर्माण में सीमित भागीदारी

लैंगिक न्याय की दिशा में प्रयास

लैंगिक न्याय केवल क़ानून बनाने से संभव नहीं है, इसके लिए समाज में मानसिकता और दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। शिक्षा, जनजागरूकता, महिला सशक्तिकरण, पुरुषों की साझेदारी और संस्थागत सुधारों से ही वास्तविक समानता संभव होगी।

निष्कर्षतः, भारत में लैंगिक न्याय एक सतत प्रक्रिया है, जो संविधान, कानून, सामाजिक सुधार आंदोलनों और सरकारी नीतियों के माध्यम से आगे बढ़ रही है। फिर भी इसकी पूर्ण प्राप्ति के लिए समाज को पारंपरिक लैंगिक भेदभाव की जड़ें समाप्त करनी होंगी।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

4. लैंगिक न्याय का मुख्य उद्देश्य क्या है?

5. लैंगिक न्याय केवल क़ानून बनाने से संभव नहीं है। सत्य/असत्य

6. 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान है ।

11.9 सारांश (Summary)

भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में समाज सुधार आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 19वीं शताब्दी से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक इन आंदोलनों ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास किया। इनमें बाल-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, स्त्री शिक्षा का अभाव और स्त्रियों की संपत्ति तथा उत्तराधिकार के अधिकारों से वंचित रखना प्रमुख थे।

राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, महात्मा गांधी और अन्य अनेक समाज सुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने और लैंगिक न्याय स्थापित करने हेतु कार्य किए। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप विधवा पुनर्विवाह, स्त्री शिक्षा का प्रसार, सती प्रथा का उन्मूलन तथा स्त्रियों के अधिकारों की कानूनी मान्यता जैसी ऐतिहासिक उपलब्धियां सामने आईं।

लैंगिक न्याय का अर्थ है – स्त्री और पुरुष दोनों को समान अवसर, सम्मान, स्वतंत्रता तथा अधिकार प्राप्त होना। समाज सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में लैंगिक न्याय की नींव रखी, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में समानता, स्वतंत्रता और न्याय के प्रावधान सुनिश्चित किए गए।

आज भी लैंगिक न्याय एक सतत प्रक्रिया है, जिसके लिए सामाजिक चेतना, शिक्षा, कानूनी प्रावधानों का क्रियान्वयन और सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक है। इस प्रकार समाज सुधार आंदोलनों ने भारत में लैंगिक समानता और न्याय की दिशा में क्रांतिकारी योगदान दिया।

11.7 शब्दावली (Glossary)

समाज सुधार- भारत के सन्दर्भ में समाज सुधार का अर्थ है – भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, असमानताओं और शोषणकारी प्रथाओं को दूर कर एक न्यायपूर्ण, समानतामूलक और प्रगतिशील समाज की स्थापना करना। समाज सुधार केवल परम्परागत बुराइयों को समाप्त करने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक सुधारों का व्यापक रूप से समावेश है।

समाज सुधार आंदोलन-भारत के इतिहास में समाज सुधार आंदोलन एक महत्वपूर्ण सामाजिक चेतना का परिणाम था। यह आंदोलन 19वीं और 20वीं शताब्दी में विशेष रूप से उभरा, जब भारतीय समाज अनेक कुरीतियों, अंधविश्वासों, जातिगत भेदभाव, बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा उत्पीड़न, अशिक्षा, स्त्रियों की हीन स्थिति और अस्पृश्यता जैसी समस्याओं से ग्रसित था।

लैंगिक न्याय (Gender Justice)- लैंगिक न्याय (Gender Justice) का अर्थ है– समाज में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार, अवसर, स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करना ताकि कोई भी व्यक्ति अपने लिंग के आधार पर भेदभाव, असमानता या शोषण का शिकार न हो। यह केवल विधिक समानता तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में बराबरी सुनिश्चित करना है।

का अर्थ है– समाज में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार, अवसर, स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करना ताकि कोई भी व्यक्ति अपने लिंग के आधार पर भेदभाव, असमानता या शोषण का शिकार न हो। यह केवल विधिक समानता तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में बराबरी सुनिश्चित करना है।

पाठ्यचर्या - यह शब्द प्रचलित शब्दों ने नया शब्द है। इसका प्रयोग किसी पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध, स्पष्ट, विषयवार एवं विस्तृत स्वरूप के लिए किया जाता है। पाठ्यचर्या में अन्तर्वस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोग के लिए सहायक सामग्री एवं कार्य विधि सम्मिलित होते हैं।पाठ्यचर्या में पाठ्यक्रम के लक्ष्य,

अपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री, सहायता सामग्री, शिक्षण विधियाँ, सहगामी क्रियाएँ आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practices Question)

भाग-1

उत्तर 1 राजा राममोहन राय।

उत्तर 2 शिक्षा को ।

उत्तर 3 स्वामी दयानंद सरस्वती ने की ।

भाग-2

उत्तर 4 स्त्री और पुरुष दोनों को शिक्षा ।

उत्तर 5 सत्य

उत्तर 6 लैंगिक न्याय के लिए संवैधानिक प्रावधान।

11.9 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

7. महावीर विश्वविधालय कोटा " पाठ्यक्रम विकास" ।

11.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें (Useful Books)

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

11.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. समाज सुधार का अर्थ से आप क्या समझते है? इसमें शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिये।
2. समाज सुधार आन्दोलनों की व्याख्या कीजिये।
3. समाज सुधार आन्दोलनों की भूमिका की भूमिका का वर्णन कीजिये।
4. लैंगिक न्याय का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके महत्व को समझाइए
5 समाज सुधार आन्दोलनों की लैंगिक न्याय में भूमिका की व्याख्या कीजिये।

इकाई–12 विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया एवं चुनौतियां

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 उद्देश्य (Objectives)

12.3 समावेशन का अर्थ

12.4 विद्यालय समावेशन की आवश्यकता

12.5 विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया

12.6 समावेशन का मानवीय जीवन व सामाजिक परिपेक्ष में महत्व

12.7 विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया एवं चुनौतियां

12.8 सारांश (Summary)

12.9 शब्दावली (Glossary)

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

12.12 सहायक/उपयोगी पुस्तकें (Useful Books)

12.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा मानव जीवन का मौलिक अधिकार तथा समग्र विकास का आधार है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का एक प्रमुख लक्ष्य प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता, रुचि, परिस्थिति और विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप सीखने का अवसर उपलब्ध कराना है। इसी परिप्रेक्ष्य में समावेशन (Inclusion) की संकल्पना विकसित हुई है, जिसके अंतर्गत यह सुनिश्चित किया जाता है कि विद्यालय में सभी बच्चे – चाहे वे सामान्य हों, दिव्यांग हों, सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित हों, या किसी विशेष पृष्ठभूमि से आते हों – समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकें।

समावेशी शिक्षा का उद्देश्य केवल शिक्षार्थियों को विद्यालय में नामांकित करना भर नहीं है, बल्कि उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सकारात्मक वातावरण, समान अवसर तथा आत्मसम्मान के साथ सीखने का अधिकार प्रदान करना भी है। विद्यालय में समावेशन से बच्चों में सहयोग, संवेदनशीलता, सहानुभूति और सामाजिक न्याय की भावना विकसित होती है। यह न केवल शिक्षार्थियों के शैक्षिक परिणामों में सुधार करता है, बल्कि उन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में भी सक्रिय भागीदारी हेतु सक्षम बनाता है।

हालाँकि, विद्यालयों में समावेशन की प्रक्रिया सरल नहीं है। इसमें अनेक चुनौतियाँ सामने आती हैं – जैसे कि संसाधनों की कमी, प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव, विद्यालयी अवसंरचना की सीमाएँ, शिक्षण-अधिगम सामग्री की अनुपलब्धता, अभिभावकों और समाज का दृष्टिकोण, तथा नीतियों के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाएँ। इन चुनौतियों के बावजूद समावेशन को शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तनकारी पहल माना जाता है, क्योंकि यह शिक्षा को वास्तव में सार्वभौमिक और न्यायसंगत बनाने की दिशा में अग्रसर करता है।

इसीलिए, विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया तथा उससे जुड़ी चुनौतियों का विश्लेषण करना न केवल शैक्षिक शोध के लिए आवश्यक है, बल्कि भावी नीति-निर्माण और शैक्षिक सुधार के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

1. समावेशन का अर्थ जान सकेंगे।
2. विद्यालय समावेशन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
3. विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया की विवेचना कर सकेंगे।

4. समावेशन का मानवीय जीवन व सामाजिक परिपेक्ष में महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

5. विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया एवं चुनौतियां की व्याख्या कर सकेंगे।

12.3 समावेशन का अर्थ

समावेशन (Inclusion) का शाब्दिक अर्थ है – सभी को अपने साथ जोड़ना, स्वीकार करना और समान अवसर प्रदान करना। शिक्षा एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समावेशन का तात्पर्य यह है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी जाति, वर्ग, लिंग, भाषा, धर्म, आर्थिक स्थिति, शारीरिक अथवा मानसिक अक्षमता आदि के आधार पर अलग-थलग न किया जाए, बल्कि उसे मुख्यधारा में लाकर समान अधिकार, अवसर और सहभागिता सुनिश्चित की जाए।

शिक्षा के क्षेत्र में समावेशी शिक्षा (Inclusive Education) का अर्थ है कि प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह सामान्य हो या विशेष आवश्यकता वाला, एक ही कक्षा और वातावरण में सीखने, बढ़ने तथा अपनी क्षमताओं का विकास करने का अवसर मिले।

संक्षेप में, समावेशन का अर्थ है भेदभाव रहित वातावरण का निर्माण, जहाँ विविधताओं को स्वीकार करते हुए सभी व्यक्तियों को सम्मान और अवसर प्रदान किए जाएँ।

शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में समावेशन का अर्थ

1. समान अवसर की व्यवस्था- समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि हर बच्चे को शिक्षा पाने का अधिकार मिले, चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या शारीरिक दृष्टि से किसी भी स्थिति में क्यों न हो।

उदाहरण: किसी विद्यालय में दृष्टिबाधित, श्रवण बाधित, आर्थिक रूप से कमजोर और सामान्य पृष्ठभूमि वाले बच्चे सभी एक साथ पढ़ाई कर सकें और उनके लिए आवश्यक सहयोगी साधन (Braille किताबें, सांकेतिक भाषा, स्कॉलरशिप आदि) उपलब्ध कराए जाएँ।

2. भेदभाव से मुक्ति- समावेशन का अर्थ है कि किसी भी विद्यार्थी के साथ जाति, धर्म, लिंग या भाषा के आधार पर भेदभाव न किया जाए। सभी बच्चों को कक्षा में सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाए।

उदाहरण: यदि एक बच्चा अनुसूचित जनजाति से है और दूसरा बच्चा शहरी पृष्ठभूमि से, तो दोनों को एक समान व्यवहार मिले और दोनों को अपनी क्षमताओं को प्रदर्शित करने का अवसर दिया जाए।

3. विविधताओं को स्वीकार करना- प्रत्येक बच्चा अपनी विशेषताओं, क्षमताओं और आवश्यकताओं के साथ विद्यालय आता है। समावेशन का अर्थ है कि इन विविधताओं को समस्या न मानकर एक संपदा समझा जाए।

उदाहरण: कुछ बच्चे खेलों में अच्छे होते हैं, कुछ कला या संगीत में, तो शिक्षा व्यवस्था सभी को प्रोत्साहित करे।

4. सहायक वातावरण का निर्माण- समावेशी शिक्षा तभी संभव है जब विद्यालय का वातावरण ऐसा हो कि हर बच्चा सुरक्षित, स्वीकार्य और सहयोगपूर्ण महसूस करे।

उदाहरण: कक्षा में रैंप बनाना, विशेष शिक्षकों की नियुक्ति करना, और सहपाठियों में सहयोग की भावना विकसित करना।

संक्षेप में शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में समावेशन का अर्थ है ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण जिसमें प्रत्येक बच्चा, उसकी भिन्नताओं और विशेष आवश्यकताओं के बावजूद, मुख्यधारा में सीखने और आगे बढ़ने का अवसर पाए।

बहुत अच्छा। आइए अब समावेशन के उद्देश्य (Objectives of Inclusion) को विस्तार से देखें –

समावेशन के उद्देश्य

1. समानता स्थापित करना- प्रत्येक बच्चे को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा और अवसर प्रदान करना ताकि समाज में समानता का वातावरण बने।

2. मुख्यधारा में लाना- जो बच्चे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक या आर्थिक कारणों से शिक्षा से वंचित हो जाते हैं, उन्हें विद्यालय की मुख्यधारा में शामिल करना।

3. व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करना- हर बच्चे की सीखने की गति और शैली अलग होती है। समावेशन का उद्देश्य है कि शिक्षण-प्रक्रिया को इस तरह ढाला जाए कि सभी की आवश्यकताएँ पूरी हों।

4. भेदभाव-मुक्त वातावरण का निर्माण- विद्यालय ऐसा माहौल बनाए जहाँ जाति, लिंग, धर्म, भाषा या अक्षमता के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न हो।

5. सहयोग और सहभागिता को बढ़ावा देना- बच्चों में आपसी सहयोग, टीम वर्क और एक-दूसरे को स्वीकार करने की भावना विकसित करना।

6. मानवाधिकार और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करना- शिक्षा का अधिकार हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। समावेशन का उद्देश्य है इस अधिकार को सुनिश्चित करना और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करना।

7. आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का विकास- समावेशी शिक्षा बच्चों को यह विश्वास दिलाती है कि वे भी समाज का अभिन्न हिस्सा हैं और अपनी क्षमताओं से आगे बढ़ सकते हैं।

संक्षेप में, समावेशन के उद्देश्य हैं –सभी को समान अवसर देना, विविधताओं को स्वीकार करना, शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना, और बच्चों को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी तथा सहयोगी नागरिक के रूप में विकसित करना।

12.4 विद्यालय समावेशन की आवश्यकता

विद्यालय समावेशन (School Inclusion) का तात्पर्य है – सभी बच्चों, चाहे वे सामाजिक, आर्थिक, भाषाई, सांस्कृतिक, भौगोलिक या शारीरिक दृष्टि से किसी भी प्रकार की विविधता रखते हों, उन्हें समान अवसर और सुविधाएँ उपलब्ध कराना, ताकि वे मुख्यधारा की शिक्षा में सम्मिलित होकर अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

विद्यालय समावेशन की आवश्यकता निम्न बिंदुओं में स्पष्ट होती है –

1. समान शिक्षा का अधिकार – शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE Act 2009) यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक बच्चा बिना किसी भेदभाव के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करे।

2. सामाजिक समानता और न्याय – समावेशी शिक्षा बच्चों में सामाजिक भेदभाव, असमानता और अलगाव की प्रवृत्ति को समाप्त कर लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में सहायक है।

3. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का विकास – दिव्यांग या विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य विद्यालय में शिक्षा देने से उनमें आत्मविश्वास, सहयोग और आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती है।

4. बहुसांस्कृतिक समझ – विभिन्न पृष्ठभूमि के बच्चे साथ पढ़ते हैं तो उनमें सहिष्णुता, सहयोग, परस्पर सम्मान और बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण विकसित होता है।

5. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा – समावेशन से शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया लचीली, रचनात्मक और बाल–केन्द्रित बनती है, जिससे सभी बच्चों को अपनी क्षमता के अनुसार सीखने का अवसर मिलता है।

6. आर्थिक और सामाजिक विकास – जब समाज के हर वर्ग के बच्चे शिक्षा से जुड़ते हैं, तो वे भविष्य में समाज और राष्ट्र के आर्थिक-सामाजिक विकास में योगदान दे सकते हैं।

7. संविधान की मूल भावना – समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय की संवैधानिक मूल्यों की पूर्ति समावेशी शिक्षा के माध्यम से होती है।

संक्षेप में, विद्यालय समावेशन की आवश्यकता इसीलिए है ताकि शिक्षा केवल कुछ बच्चों तक सीमित न रहे, बल्कि हर बच्चा समाज के साथ मिलकर समान रूप से सीख सके और आगे बढ़ सके।

12.5 विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया

विद्यालय में समावेशन (Inclusion) का अर्थ है – प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भाषाई, लिंग आधारित या शारीरिक-मानसिक विविधताओं से जुड़ा हो, समान अवसर प्रदान करना ताकि वह विद्यालयी शिक्षा में सक्रिय रूप से भाग ले सके। यह प्रक्रिया शिक्षा को सबके लिए सुलभ, न्यायसंगत और गुणवत्तापूर्ण बनाने का प्रयास करती है।

समावेशन प्रक्रिया के मुख्य चरण –

1. सचेतना एवं संवेदनशीलता (Awareness and Sensitization)- शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों एवं समुदाय को समावेशी शिक्षा के महत्व और आवश्यकता के प्रति जागरूक करना।

2. पाठ्यक्रम एवं शिक्षण-शिक्षण विधियों में परिवर्तन (Curriculum & Pedagogy)- भिन्न-भिन्न क्षमताओं और आवश्यकताओं के अनुरूप लचीला पाठ्यक्रम। समावेशी शिक्षण रणनीतियाँ जैसे सहकारी अधिगम, गतिविधि-आधारित शिक्षण, भिन्नीकृत शिक्षण।

3. भौतिक वातावरण की व्यवस्था (Physical Environment)- विद्यालय में दिव्यांग अनुकूल सुविधाएँ (राम्प, लिफ्ट, ब्रेल संकेत, शौचालय आदि)। सभी बच्चों के लिए सुरक्षित एवं सहयोगी वातावरण।

4. विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए सहयोग (Support Services)- विशेष शिक्षकों, परामर्शदाताओं और चिकित्सकीय सहयोग की व्यवस्था। सहायक उपकरणों (hearing aids, Braille books, ICT tools) की उपलब्धता।

5. मूल्यांकन प्रक्रिया (Assessment Process)- केवल अंक आधारित मूल्यांकन न होकर योग्यता और प्रगति पर आधारित सतत एवं व्यापक मूल्यांकन। लचीली परीक्षा पद्धति ताकि सभी बच्चे अपनी क्षमता अनुसार प्रदर्शन कर सकें।

6. समुदाय एवं अभिभावक सहभागिता (Community & Parent Participation)- अभिभावकों को विद्यालयी गतिविधियों में सम्मिलित करना। समुदाय के सहयोग से बच्चों के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना।

7. सकारात्मक दृष्टिकोण एवं सहयोगात्मक संस्कृति (Positive Attitude & Collaborative Culture)- विद्यालय में समानता, सहयोग और परस्पर सम्मान का वातावरण बनाना। शिक्षक, विद्यार्थी और समुदाय मिलकर शिक्षा को सबके लिए सहज व सार्थक बनाएं।

इस प्रकार, विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया न केवल शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करती है बल्कि बच्चों के सर्वांगीण विकास, सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. समावेशन (Inclusion) का शाब्दिक अर्थ क्या है?

2.. समावेशी शिक्षा कब भी संभव है?

3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE Act 2009) क्या है ?

12.6 समावेशन का मानवीय जीवन व सामाजिक परिपेक्ष में महत्व

समावेशन (Inclusion) का अर्थ है – प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, सम्मान, अधिकार एवं गरिमा प्रदान करना, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, लिंग, भाषा, शारीरिक अथवा मानसिक क्षमता, आर्थिक स्थिति या सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से संबंधित हो। यह मानवता के मूलभूत मूल्यों – समानता, सहिष्णुता, सहयोग और भाईचारे – को व्यावहारिक रूप में समाज में लागू करता है।

1. मानवीय जीवन में महत्व

स्वाभिमान और गरिमा की रक्षा – समावेशन से प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभूति होती है कि वह समाज का अभिन्न अंग है, जिससे आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ता है।

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास – जब व्यक्ति को शिक्षा, रोजगार और सामाजिक गतिविधियों में अवसर मिलते हैं, तो उसकी प्रतिभा और क्षमताओं का विकास होता है।

भेदभाव से मुक्ति – समावेशन जीवन में असमानता और भेदभाव को कम करता है तथा हर किसी को समान अधिकार सुनिश्चित करता है।

मानवीय संवेदनाओं का विकास – समावेशी दृष्टिकोण व्यक्ति को अधिक सहृदय, सहयोगी और मानवीय बनाता है।

2. सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महत्व

समानता और न्याय की स्थापना – समाज में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक असमानताओं को कम करने में समावेशन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

सामाजिक एकता और सद्भाव – जब सभी वर्गों और समूहों को साथ लेकर चला जाता है, तो समाज में भाईचारा, विश्वास और सहयोग की भावना मजबूत होती है।

लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा – लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब समाज के हर व्यक्ति को समान अवसर और भागीदारी का अधिकार मिले।

सतत् विकास – समावेशी समाज सभी नागरिकों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ता है, जिससे सामूहिक प्रगति और स्थायी विकास संभव होता है।

सांस्कृतिक विविधता का सम्मान – समावेशन विभिन्न परंपराओं, भाषाओं और संस्कृतियों को स्वीकार कर सामाजिक जीवन को और समृद्ध बनाता है।

इस प्रकार, समावेशन केवल शैक्षिक या सामाजिक नीति का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह मानवीय जीवन की गरिमा, समाज की एकजुटता और राष्ट्र की प्रगति की मूलभूत शर्त है।

3. शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में समावेशन का महत्व

सभी बच्चों को समान अवसर – समावेशी शिक्षा यह सुनिश्चित करती है कि चाहे बच्चा सामान्य हो या विशेष आवश्यकता वाला (बौद्धिक, शारीरिक, भावनात्मक), सभी को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले।

भेदभाव रहित शिक्षा – यह जाति, वर्ग, लिंग, धर्म, भाषा और विकलांगता जैसे भेदभावों को दूर कर शिक्षा को सबके लिए सुलभ और समान बनाती है।

सह-अस्तित्व की भावना – समावेशी विद्यालय बच्चों में सहयोग, सहानुभूति और विविधता को स्वीकार करने की प्रवृत्ति विकसित करते हैं।

व्यक्तित्व और प्रतिभा का विकास – जब हर बच्चे को अपनी क्षमता और गति के अनुसार सीखने का अवसर मिलता है, तो उसका आत्मविश्वास और रचनात्मकता बढ़ती है।

लोकतांत्रिक समाज के लिए तैयारी – समावेशी शिक्षा बच्चों को लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है।

सतत् विकास के लक्ष्य (SDGs) की प्राप्ति – "सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" (Quality Education for All) का लक्ष्य तभी पूरा होगा जब शिक्षा समावेशी हो।

इस प्रकार, मानवीय जीवन, सामाजिक व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था तीनों स्तरों पर समावेशन समानता, न्याय और प्रगति की आधारशिला है।

12.6 विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया एवं चुनौतियां

समावेशन (Inclusion) का तात्पर्य है – प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह सामान्य हो या विशेष आवश्यकता वाला, सामाजिक, आर्थिक, भाषाई, सांस्कृतिक या भौतिक दृष्टि से किसी भी प्रकार से भिन्न हो, समान अवसर प्रदान करना। विद्यालय वह संस्था है जहाँ सभी बच्चों को शिक्षा, समानता, सहयोग और सहभागिता का वातावरण मिलता है। समावेशी शिक्षा यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी बच्चा मुख्यधारा शिक्षा से वंचित न रहे।

विद्यालय में समावेशन की प्रक्रिया

1. समान अवसर उपलब्ध कराना – प्रत्येक छात्र को कक्षा में सीखने, खेलने और गतिविधियों में भाग लेने का समान अवसर देना।

2. लचीला पाठ्यक्रम – बच्चों की विविध आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण-पद्धति, सामग्री और मूल्यांकन में संशोधन करना।

3. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का समर्थन – विकलांग बच्चों के लिए सहायक उपकरण, विशेष शिक्षक और संसाधनों की व्यवस्था।

4. शिक्षकों का प्रशिक्षण – शिक्षकों को समावेशी शिक्षा की अवधारणा, तकनीक और बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को समझाने हेतु प्रशिक्षण।

5. सकारात्मक विद्यालयी वातावरण – ऐसा माहौल बनाना जहाँ सभी छात्र सम्मान, सुरक्षा और सहयोग महसूस करें।

6. माता-पिता और समुदाय की भागीदारी – बच्चों की शिक्षा और विकास में परिवार और समाज को जोड़ना।

7. सह-पाठयक्रम गतिविधियाँ – खेल, कला, संगीत और नाटक जैसी गतिविधियों में सभी बच्चों की सक्रिय भागीदारी।

विद्यालय में समावेशन की चुनौतियाँ

1. शिक्षकों की तैयारी का अभाव – अधिकांश शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित नहीं होते।

2. संसाधनों की कमी – विशेष उपकरण, शिक्षण सामग्री और आधारभूत संरचना का अभाव।

3. कक्षा का आकार बड़ा होना – एक ही कक्षा में अधिक बच्चों के कारण व्यक्तिगत ध्यान देना कठिन।

4. सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव – दिव्यांगता, जाति, लिंग या भाषा के आधार पर भेदभाव।

5. नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन न होना – सरकार की समावेशी शिक्षा संबंधी नीतियाँ जमीनी स्तर पर पूरी तरह लागू नहीं हो पातीं।

6. माता-पिता की जागरूकता की कमी – कई अभिभावक अपने बच्चों की विशेष आवश्यकताओं को नहीं समझते।

7. मनोवैज्ञानिक समस्याएँ – कई बच्चे आत्मविश्वास की कमी, उपेक्षा या भेदभाव के कारण पीछे रह जाते हैं।

निष्कर्ष- विद्यालय में समावेशन एक सतत प्रक्रिया है जो केवल नीतियों और योजनाओं पर नहीं, बल्कि शिक्षकों, अभिभावकों और समाज के सहयोग पर निर्भर करती है। चुनौतियों के बावजूद यदि विद्यालय में संवेदनशीलता, सहयोग और संसाधनों की उचित व्यवस्था हो, तो समावेशी शिक्षा बच्चों के सर्वांगीण विकास तथा एक न्यायपूर्ण समाज की नींव रख सकती है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

4. सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव क्या है?

5. कई बच्चे आत्मविश्वास की कमी, उपेक्षा या भेदभाव के कारण पीछे रह जाते हैं। सत्य/असत्य

6. **विद्यालय में समावेशन एक सतत प्रक्रिया है ।** सत्य/असत्य

12.7 सारांश (Summary)

समावेशन (Inclusion) का तात्पर्य प्रत्येक बच्चे को उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई, आर्थिक एवं शारीरिक भिन्नताओं के बावजूद समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने से है। यह शिक्षा के लोकतांत्रिक स्वरूप का मूल आधार है, जिसके अंतर्गत विद्यालय सभी बच्चों को साथ लेकर चलने का प्रयास करता है। समावेशन का उद्देश्य केवल दिव्यांग बच्चों को मुख्यधारा में लाना नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक छात्र/छात्रा को शिक्षा, सम्मान और भागीदारी का समान अवसर मिले।

समावेशन प्रक्रिया

1. शिक्षण वातावरण में अनुकूलन – कक्षा-कक्ष का ऐसा वातावरण तैयार करना जिसमें सभी बच्चे सहज महसूस करें।

2. पाठ्यचर्या में लचीलापन – सभी बच्चों की जरूरतों को ध्यान में रखकर बहुस्तरीय, स्थानीय और गतिविधि-आधारित पाठ्यचर्या का प्रयोग।

3. शिक्षकों की संवेदनशीलता – शिक्षकों को समावेशी शिक्षा के प्रशिक्षण द्वारा सक्षम बनाना ताकि वे विभिन्न क्षमताओं और पृष्ठभूमियों वाले बच्चों को समझकर पढ़ा सकें।

4. सहायक सेवाओं की उपलब्धता – संसाधन शिक्षक, विशेष उपकरण, सहायक तकनीक और परामर्श सेवाओं का प्रावधान।

5. अभिभावक एवं समुदाय की भागीदारी – अभिभावकों तथा स्थानीय समुदाय को विद्यालयीय गतिविधियों में जोड़ना ताकि बच्चों को सामाजिक सहयोग मिल सके।

विद्यालय में समावेशन की चुनौतियां

1. संसाधनों की कमी – पर्याप्त शिक्षण सामग्री, सहायक उपकरण और प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव।

2. शिक्षकों का दृष्टिकोण – कई बार शिक्षकों में समावेशी दृष्टिकोण का अभाव रहता है और वे विशेष जरूरत वाले बच्चों को बोझ मान लेते हैं।

3. पाठ्यचर्या एवं मूल्यांकन प्रणाली – कठोर और एकरूप पाठ्यचर्या सभी बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाती।

4. अभिभावकों की उदासीनता – ग्रामीण और आर्थिक रूप से पिछड़े अभिभावक प्रायः बच्चों की विशेष आवश्यकताओं के प्रति जागरूक नहीं होते।

5. सामाजिक भेदभाव – जाति, लिंग, भाषा, संस्कृति और दिव्यांगता के आधार पर भेदभाव बच्चों को विद्यालय में आत्मसात होने से रोकता है।

6. अवसंरचनात्मक कठिनाइयां – विद्यालय भवन, शौचालय, बैठने की व्यवस्था तथा पहुंच-योग्य परिवहन का अभाव।

7. नीतियों के क्रियान्वयन में बाधाएं – शिक्षा का अधिकार अधिनियम, समावेशी शिक्षा नीतियां तथा योजनाएं प्रायः कागजों तक ही सीमित रह जाती हैं।

निष्कर्ष- विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया शिक्षा को अधिक मानवीय, लोकतांत्रिक और सार्वभौमिक बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इसके माध्यम से समाज में समानता, सहयोग और संवेदनशीलता का विकास होता है।

यद्यपि इसके सामने अनेक चुनौतियां हैं, लेकिन शिक्षक प्रशिक्षण, संसाधनों का विकास, पाठ्यचर्या में लचीलापन और सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से इन्हें दूर किया जा सकता है। वास्तविक समावेश तभी संभव है जब विद्यालय सभी बच्चों को उनके अंतर के बावजूद समान रूप से स्वीकार कर उन्हें सीखने और आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करे।

12.9 शब्दावली (Glossary)

विद्यालय समावेशन (School Inclusion- विद्यालय समावेशन (School Inclusion) का तात्पर्य है – सभी बच्चों, चाहे वे सामाजिक, आर्थिक, भाषाई, सांस्कृतिक, भौगोलिक या शारीरिक दृष्टि से किसी भी प्रकार की विविधता रखते हों, उन्हें समान अवसर और सुविधाएँ उपलब्ध कराना, ताकि वे मुख्यधारा की शिक्षा में सम्मिलित होकर अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

समान अवसर की व्यवस्था- समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि हर बच्चे को शिक्षा पाने का अधिकार मिले, चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या शारीरिक दृष्टि से किसी भी स्थिति में क्यों न हो।

मूल्यांकन प्रक्रिया (Assessment Process)- केवल अंक आधारित मूल्यांकन न होकर योग्यता और प्रगति पर आधारित सतत एवं व्यापक मूल्यांकन। लचीली परीक्षा पद्धति ताकि सभी बच्चे अपनी क्षमता अनुसार प्रदर्शन कर सकें।

समुदाय एवं अभिभावक सहभागिता (Community & Parent Participation)- अभिभावकों को विद्यालयी गतिविधियों में सम्मिलित करना। समुदाय के सहयोग से बच्चों के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना।

सकारात्मक दृष्टिकोण एवं सहयोगात्मक संस्कृति (Positive Attitude & Collaborative Culture)- विद्यालय में समानता, सहयोग और परस्पर सम्मान का वातावरण बनाना। शिक्षक, विद्यार्थी और समुदाय मिलकर शिक्षा को सबके लिए सहज व सार्थक बनाएं।

सतत् विकास के लक्ष्य (SDGs) की प्राप्ति – "सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" (Quality Education for All) का लक्ष्य तभी पूरा होगा जब शिक्षा समावेशी हो।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-1

उत्तर 1 है – सभी को अपने साथ जोड़ना, स्वीकार करना और समान अवसर प्रदान करना।

उत्तर 2 जब विद्यालय का वातावरण ऐसा हो कि हर बच्चा सुरक्षित, स्वीकार्य और सहयोगपूर्ण महसूस करे।

उत्तर 3 यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक बच्चा बिना किसी भेदभाव के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करे।

भाग-2

उत्तर 4 – दिव्यांगता, जाति, लिंग या भाषा के आधार पर भेदभाव।

उत्तर 5 सत्य

उत्तर 6 सत्य

12.11 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

7. महावीर विश्वविधालय कोटा " पाठ्यक्रम विकास" ।

12.12 सहायक/उपयोगी पुस्तकें (Useful Books)

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

12.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. समावेशन से आप क्या समझते है? इसके महत्व का उल्लेख कीजिये।
2. विद्यालय समावेशन की आवश्यकता का वर्णन कीजिये।
3. विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया को समझाइए।

12.6 समावेशन का मानवीय जीवन व सामाजिक परिपेक्ष में महत्व का वर्णन कीजिये

12.7 विद्यालय में समावेशन प्रक्रिया एवं चुनौतियां को स्पष्ट कीजिये।

इकाई 13 विद्यालय में आन्तरिक एवं बाह्य अनुशासन की आवश्यकता और महत्व(Need and Importance of Internal and External Discipline in School)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 उद्देश्य (Objectives)

13.3 आन्तरिक अनुशासन का अर्थ

13.4 बाह्य अनुशासन का अर्थ

13.5 विद्यालय में अनुशासनहीनता की समस्या

13.6 विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारण

13.7 विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता के कारण

13.8 विद्यालय व विद्यालय से बाहर अनुशासन की आवश्यकता व महत्व

13.9 सारांश (Summary)

13.10 शब्दावली (Vocauolary)

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practices Question)

13.12 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

13.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

13.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

विद्यालय मानव जीवन के निर्माण की आधारशिला है। यहाँ केवल ज्ञान का संचार ही नहीं होता, बल्कि विद्यार्थियों के चारित्रिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों का भी विकास होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुशासन का विशेष महत्व है। अनुशासन वह साधन है जो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को व्यवस्थित एवं सार्थक बनाता है। विद्यालय में अनुशासन को दो रूपों में देखा जा सकता है – आन्तरिक अनुशासन और बाह्य अनुशासन।

आन्तरिक अनुशासन वह है जो विद्यार्थी के भीतर आत्म-नियंत्रण, आत्म-जिम्मेदारी, आत्म-प्रेरणा और नैतिकता के रूप में विकसित होता है। यह शिक्षा का सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता है क्योंकि विद्यार्थी स्वयं अपने आचरण को नियंत्रित करना सीखता है। बाह्य अनुशासन विद्यालय के नियमों, शिक्षकों की मार्गदर्शनात्मक भूमिका और प्रशासनिक व्यवस्थाओं के माध्यम से स्थापित होता है। यह विद्यार्थियों को अनुशासन की दिशा में प्रारम्भिक रूप से प्रेरित करता है और उन्हें सामाजिक जीवन के नियमों का पालन करना सिखाता है।

विद्यालय में आन्तरिक एवं बाह्य अनुशासन का संतुलित रूप विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। इनके माध्यम से न केवल शिक्षण का वातावरण अनुशासित व प्रभावी बनता है, बल्कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, उत्तरदायित्व और सामाजिक सामंजस्य का भी विकास होता है। इस प्रकार अनुशासन विद्यालयी जीवन का अनिवार्य अंग है, जिसके बिना शिक्षा की गुणवत्ता और उद्देश्य दोनों अधूरे रह जाते हैं। विद्यालय छात्र के लिए मन्दिर के समान होता है यदि वहाँ का वातावरण शान्त स्वच्छ, निर्मल व पर्यावरण के अनुकूल है। तब निश्चित ही वहाँ के अध्यापक व छात्र उन्नति की ओर अग्रसर होंगे। वहाँ पर नियमों व कानूनों को जबरदस्ती लादने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी न ही विद्यार्थियों व अध्यापकों पर कड़ा नियन्त्रण लगाना पड़ेगा। लेकिन सभी को अनुशासन में रहकर कार्य करना होगा। जब यही छात्र कक्षा से बाहर जाकर उददनता, लडाई, झगड़े व गृह कार्य नहीं करते है तब यहाँ पर अनुशासन की आवश्यकता अति आवश्यक हो जाती है। क्योकि विद्यालय के बाहर भी अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाना अति आवश्यक है क्योकि ये ही छात्र कल इस समाज व राष्ट्र को चलाने वाले बनेंगे। अतः अनुशासन का पाठ विद्यालय व विद्यालय के बाहर दोनों जगह ध्यान रखना आवश्यक ही नही बल्कि अति आवश्यक है।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद शिक्षार्थी-

1. आन्तरिक अनुशासन को समझ पाएंगे।

2- बाह्य अनुशासन का उल्लिखित कर पाएंगे।

3. विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारणों को विश्लेषण कर सकेंगे।

4. अनुशासित होने के गुणों का वर्णन कर सकेंगे।

5. अनुशासित जीवन की उपयोगिता की विवेचना कर सकेंगे।

6. विद्यालय के बाहर अनुशासित जीवन की उपयोगिता की व्याख्या कर सकेंगे।

13.3 आन्तरिक अनुशासन का अर्थ

विद्यालय में आन्तरिक (Internal) अनुशासन का अर्थ है – वह आत्मनियंत्रण और आत्मअनुशासन जो छात्र-छात्राएँ स्वयं अपने व्यवहार, विचार, कार्यों और गतिविधियों में स्वेच्छा से अपनाते हैं। इसे बाहरी दबाव, भय या दण्ड से नहीं बल्कि आत्मप्रेरणा, आत्मसंयम और नैतिक मूल्यों की समझ से विकसित किया जाता है।

मुख्य बिंदु :

1. स्वानुशासन (Self-discipline): छात्र स्वयं नियमों का पालन करें और गलत कार्यों से बचें।

2. नैतिक मूल्यों का पालन: सत्य, ईमानदारी, सहयोग, समयपालन, परिश्रम आदि को जीवन में उतारना।

3. आत्मनियंत्रण: भावनाओं और इच्छाओं पर नियंत्रण रखना।

4. कर्तव्यपरायणता: अपनी पढ़ाई, गृहकार्य और विद्यालयीन गतिविधियों में जिम्मेदारी निभाना।

5. स्वेच्छा से नियम पालन: विद्यालय के नियमों को बाध्यता से नहीं बल्कि अपनी समझ और इच्छा से मानना।

इस प्रकार, विद्यालय में आन्तरिक अनुशासन का अर्थ है विद्यार्थियों में ऐसा वातावरण बनाना जिसमें वे स्वयं अपने आचरण को नियंत्रित करें और सही दिशा में आगे बढ़ें।

13.4 बाह्य अनुशासन का अर्थ

विद्यालय में बाह्य अनुशासन का तात्पर्य उन नियमों, निर्देशों और नियंत्रणों से है, जिन्हें विद्यालय प्रशासन, शिक्षक अथवा अन्य शैक्षिक प्राधिकरण द्वारा विद्यार्थियों पर लागू किया जाता है। यह अनुशासन छात्रों को बाहरी दबाव या नियंत्रण के माध्यम से विद्यालय की व्यवस्था, समय-सारणी, नियमों और अनुशासनात्मक प्रावधानों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है। इसमें विद्यार्थियों की स्वतंत्र इच्छा से अधिक संस्थागत नियमों का पालन प्रमुख होता है।

महत्व

1. व्यवस्थित वातावरण की स्थापना – बाह्य अनुशासन विद्यालय में शांति, व्यवस्था और अनुशासित वातावरण बनाने में सहायक होता है।

2. नियमों का पालन – यह विद्यार्थियों को समय, ड्रेस कोड, कक्षा में व्यवहार, गृहकार्य आदि नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

3. शैक्षिक प्रक्रिया की सुचारुता – यदि विद्यालय में अनुशासन होगा तो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया सुचारु रूप से चल सकेगी।

4. सामाजिक व्यवहार का विकास – बाह्य अनुशासन विद्यार्थियों को सामाजिक नियमों, जिम्मेदारियों और दायित्वों को समझने तथा उनका पालन करने की आदत डालता है।

5. अवांछनीय गतिविधियों पर नियंत्रण – अनुशासनहीनता, अव्यवस्था, हिंसा या शोर-शराबे जैसी स्थितियों को रोकने के लिए यह आवश्यक है।

6. समान अवसर – जब सभी छात्र बाह्य अनुशासन का पालन करते हैं, तब विद्यालय में समानता और न्याय का वातावरण स्थापित होता है।

7. नैतिक मूल्यों की नींव – प्रारंभ में बाह्य अनुशासन छात्रों को नियंत्रित करता है, परंतु धीरे-धीरे यही उनके अंदर आत्म-अनुशासन (आन्तरिक अनुशासन) विकसित करने की नींव बन जाता है।

इस प्रकार, विद्यालय में बाह्य अनुशासन शिक्षा की गुणवत्ता और संस्थागत व्यवस्था को बनाए रखने का अनिवार्य साधन है, जो छात्रों को अनुशासित, जिम्मेदार और सामाजिक नागरिक बनाने में सहायक होता है।

आन्तरिक एवं बाह्य अनुशासन : तुलनात्मक विश्लेषण

आधार	आन्तरिक अनुशासन	बाह्य अनुशासन
अर्थ	वह अनुशासन जो विद्यार्थी अपनी अंतरात्मा, आत्म-नियंत्रण और आत्म-प्रेरणा से अपनाता है।	वह अनुशासन जो विद्यालय के नियमों, आदेशों और बाहरी नियंत्रण से विद्यार्थियों पर लागू किया जाता है।
नियंत्रण का स्रोत	विद्यार्थी की अंतरात्मा, आत्मबोध और आत्मनियंत्रण।	शिक्षक, विद्यालय प्रशासन अथवा संस्थागत नियम।
प्रेरणा	आत्म-सुधार, नैतिक मूल्यों और आत्म-जिम्मेदारी की भावना।	पुरस्कार, दंड, नियम या आदेश का पालन करने की बाध्यता।
स्थायित्व	स्थायी एवं दीर्घकालिक, क्योंकि यह व्यक्ति के स्वभाव का हिस्सा बन जाता है।	अस्थायी, बाहरी दबाव हटने पर इसका प्रभाव कम हो सकता है।
व्यवहार पर प्रभाव	सकारात्मक और आत्म-प्रेरित; विद्यार्थी सही काम इसलिए करता है क्योंकि वह सही है।	नियंत्रित व्यवहार; विद्यार्थी नियम इसलिए मानता है क्योंकि उसे ऐसा करना पड़ता है।
महत्व	वास्तविक व्यक्तित्व विकास और आत्मनिर्भर नागरिक बनाने में सहायक।	विद्यालय में व्यवस्था बनाए रखने और शिक्षा प्रक्रिया को सुचारु चलाने में सहायक।
उद्देश्य	आत्म-अनुशासन और चरित्र निर्माण।	तात्कालिक व्यवस्था और अनुशासन सुनिश्चित करना।

निष्कर्ष- आन्तरिक और बाह्य अनुशासन दोनों ही विद्यालय जीवन में आवश्यक हैं। बाह्य अनुशासन प्रारम्भिक स्तर पर विद्यार्थियों को नियमों का पालन करना सिखाता है। आन्तरिक अनुशासन आगे चलकर उन्हें आत्म-नियंत्रित, जिम्मेदार और नैतिक जीवन जीने वाला नागरिक बनाता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को केवल बाहरी नियंत्रण से नहीं बल्कि आत्म-अनुशासन की ओर अग्रसर करना होना चाहिए।

13.5 विद्यालय में अनुशासनहीनता की समस्या (Problem of Indiscipline in school)

विद्यालय वह स्थान है जहाँ बच्चों को केवल शैक्षणिक ज्ञान ही नहीं बल्कि जीवनोपयोगी मूल्य, संस्कार और आचार-विचार भी सिखाए जाते हैं। शिक्षा के सुचारू संचालन हेतु अनुशासन का होना आवश्यक है। परंतु वर्तमान समय में विद्यालयों में अनुशासन की समस्या एक गंभीर चुनौती के रूप में सामने आ रही है। आज के युवा वर्ग, विशेषकर छात्र वर्ग के मध्य अनुशासनहीनता एक सामान्य समस्या बन गई है। जो न सिर्फ छात्रों को हानि पहुचा रही है वरन् समाज को पतन के कगार पर खड़ा कर रही है। यह अनुशासनहीनता क्यो है व इसका कारण कैसे किया जा सकता है।

अनुशासनहीनता का अर्थ - ''कोई बात जो जन-जीवन के लिए हानिप्रद हो तथा किसी संस्था की सुचारू रूप से चल रही व्यवस्था में बाधा पहुचायें चाहे वह सामाजिक संस्था, आर्थिक संस्था व राजनैतिक..संस्था हो स्वैच्छिक संस्थाएँ जो दूसरों की स्वतन्त्रता का अपहरण करे , सब अनुशासनहीनता के अन्तर्गत ही आती है।'' सामान्यता अनुशासनहीनता की समस्या तब उत्पन्न होती है जब विचारों में मतभेद उत्पन्न हो जाता है और कोई एक पक्ष उस मतभेद से उद्वेलित हो उठता है व बिना सोच-समझ में वह व्यवहार प्रदर्शित कर देता है जो समाज की दृष्टि से अवांछनीय होता है। अनुशासनहीनता क्यों उत्पन्न होती है, हम विस्तापूर्वक इस पर प्रकाश डालेंगे।

प्रमुख अनुशासन समस्याएँ :

1. अनुशासनहीन व्यवहार – विद्यार्थियों का शिक्षकों एवं सहपाठियों के प्रति असम्मानजनक रवैया।

2. अनुपस्थिति और देर से आना – विद्यार्थियों का नियमित रूप से विद्यालय में उपस्थित न होना।

3. पढ़ाई में अरुचि – अध्ययन कार्य के प्रति उदासीनता और ध्यान न लगाना।

4. अनुचित संगति और नकल प्रथा – गलत मित्रों के प्रभाव तथा परीक्षा में नकल करने की प्रवृत्ति।

5. हिंसक एवं असामाजिक प्रवृत्तियाँ – झगड़ा करना, अभद्र भाषा का प्रयोग करना, दूसरों को तंग करना आदि।

6. सामाजिक और तकनीकी प्रभाव – मोबाइल, सोशल मीडिया और टीवी की लत से अनुशासन में गिरावट।

7. पारिवारिक वातावरण की भूमिका – घर पर माता-पिता का मार्गदर्शन न मिलना या पारिवारिक कलह का प्रभाव।

परिणाम :

शिक्षण-प्रक्रिया बाधित होती है।

विद्यालय का वातावरण अव्यवस्थित हो जाता है।

विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि घटती है।

शिक्षक-छात्र संबंध प्रभावित होते हैं।

सामाजिक जीवन में अव्यवस्था और असंतुलन उत्पन्न होता है।

अनुशासन की समस्या का समाधान केवल कठोर दंड से नहीं, बल्कि प्रेरणा, परामर्श, मूल्य-शिक्षा, और शिक्षक–अभिभावक के संयुक्त प्रयास से संभव है।

13.6 विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारण (Causes of Indiscipline)

विद्यालय में अनुशासनहीनता (Indiscipline) एक गंभीर समस्या है, जो विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास, शिक्षण प्रक्रिया और संपूर्ण विद्यालयी वातावरण को प्रभावित करती है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जिन्हें मुख्यतः निम्नलिखित श्रेणियों में समझा जा सकता है—

1. परिवार से संबंधित कारण

परिवार में अनुशासन और संस्कारों की कमी।

माता-पिता का बच्चों पर अत्यधिक दवाब या उपेक्षा।

पारिवारिक कलह, आर्थिक असमानता या असुरक्षा की भावना।

अभिभावकों द्वारा बच्चों के आचरण पर ध्यान न देना।

2. विद्यालय से संबंधित कारण

शिक्षक-विद्यार्थी के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों का अभाव।

शिक्षण विधियों में नीरसता और कठोरता।

विद्यालय में खेल, सांस्कृतिक और रचनात्मक गतिविधियों की कमी।

अनुशासन बनाए रखने हेतु स्पष्ट नियमों का अभाव।

भीड़-भाड़ वाले कक्षाएं और अपर्याप्त संसाधन।

3. सामाजिक और परिवेशगत कारण

मीडिया, इंटरनेट और सोशल मीडिया का दुरुपयोग।

समाज में बढ़ती भौतिकवादी प्रवृत्तियाँ।

नशाखोरी, हिंसा और असामाजिक गतिविधियों का प्रभाव।

साथी समूह (Peer group) का अनुचित दबाव।

4. व्यक्तिगत कारण

किशोरावस्था के कारण उत्पन्न शारीरिक और मानसिक परिवर्तन।

आत्म-नियंत्रण, आत्म-अनुशासन और लक्ष्यहीनता की कमी।

ध्यान आकर्षित करने की प्रवृत्ति।

पढ़ाई में रुचि न होना या असफलता का भय।

संक्षेप में, विद्यालय में अनुशासनहीनता केवल छात्र का दोष नहीं है, बल्कि यह परिवार, विद्यालय, समाज और व्यक्तिगत कारणों का संयुक्त परिणाम है।

प्रो0 हुमाँयू कबीर के अनुसार, ‘‘अनुशासनहीनता किस कारण से है, इस सम्बन्ध में प्रो0 कबीर का विचार यह है कि कभी यह अनुशासनहीनता बालक के व्यक्तिगत कारण से हो सकती है तो कभी हमारी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था भी अनुशासनहीनता की परिस्थिति को उत्पन्न कर सकती है। मुख्य रूप से अनुशासनहीनता के निम्न कारण हैं -

1. अध्यापाकों में नेतृत्व की कमी,

2. आर्थिक कठिनाइयों में वृद्धि

3. आधुनिक शिक्षा प्रणाली में दोष,

4. आदर्शों की कमी।

1. यदि आज हम अध्यापक के व्यवहार का वास्तव में मूल्यांकन करें तो हमें ऐसा प्रतीत होगा कि शिक्षा के स्तर में आ रही गिरावट व विद्याथियों के व्यवहार में उत्पन्न अवांछनीयता के दोषी अध्यापक हैं। प्रश्न उठता है- प्राचीनकाल के आदर्शों से परिपूर्ण 'गुरू' आज कहाँ लुप्त हो गये हैं। आज क्या कोई ऐसा अध्यापक है जो विद्यार्थियों को सही मार्ग की और प्रशस्त करे, क्या कोई ऐसा अध्यापक है जो नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में सँभाल सके। आज का अध्यापक दिशा-बोधक न होकर दिशाभ्रमित करने वाला हो गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रारम्भिक स्तर पर बालक के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव अध्यापक का पड़ता है। यदि अध्यापक अनुशासनपूर्ण है व उसमें नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता है तो इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि उसका अनुकरण करने वाले छात्र अनुशासनहीनता होगा।

2. अनुशासनहीनता का भारत में दूसरा कारण है जनसाधारण के समक्ष विद्यमान आर्थिक कठिनाइयाँ। आज का छात्र आकांक्षाओं से युक्त है परन्तु उनको पूरा करने हेतु उनके पास साधन नहीं हैं तो वह कुंठित हो उठता है और उसकी कण्ठा का परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में व्यक्त होता है। आज की सबसे विषम परिस्थिति यह है कि शिक्षा का भी धनिक लोगों ने खरीद लिया है। जिसके पास पैसा है पर क्षमता नहीं, वह कुछ भी प्राप्त कर सकता है तथा जिसके पास क्षमता है, पैसा नहीं, वह सदैव दयनीय व लाचारी की स्थिति में रहता है।

3. वर्तमान दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली भी अनुशासनहीनता का एक प्रमुख कारण है। आज को शिक्षा उद्देश्यविहीन हो चुकी है ओर इसी कारण शिक्षित बेरोजागारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वह शिक्षा किस काम की जो भविष्य की सुरक्षा को आश्वस्त न कर सके। हर विद्यार्थी के समक्ष एक प्रश्न सूचन चिन्ह है कि पढ़ाई समाप्त करने के बाद वह क्या करेगा ? जब उसे अपनी सामर्थ्य व योग्यता के अनुकूल कार्य नहीं मिल पाता है तो वह निराश हो जाता है यह निराशा ही अनुशासनहीनता को जन्म देती है। शिक्षा प्रणाली का एक प्रमुख दोष मूल्यांकन में विद्यमान अविश्वसनीयता व अवैधता भी है। आज के अध्यापक व छात्र दोनों ही भ्रष्ट हैं। छात्र नकल करके व गैर-कानूनी तरीके अपनाकर पास होना चाहता है व अध्यापक पैसे के समक्ष अपनी नैतिकता को बेच देते हैं। परिणाम यह होता

है कि जो योग्य व्यक्ति है, उसे अपनी योग्यता के अनुरूप परिणाम प्राप्त नहीं होता निराश होकर गलत कार्यों की ओर उन्मुख हो जाता है।

4. चाहे हम परिवार को ले या समाज को या विद्यालय को वर्तमान युग में सभी जगह जो अभाव दिख रहा है, वह है मूल्यों व आदर्शों का अभाव। दिन-प्रतिदिन हम मूल्यविहीन होते जा रहे हैं व जिसका परिणाम है हमारा नैतिक व चारित्रिक पतन। आज का समाज छात्रों के समक्ष कोई ठोस आदर्श प्रस्तुत कर सकने में असमर्थ है। आज के भौतिकवादी युग में आदर्शवादी व्यक्ति का परिहास उड़ाया जाता है और मनुष्य ने अपने आपको भौतिकता की दौड़ में खड़ा कर दिया है जिसका परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में दृष्टिगोचर होता है। भारतवर्ष के अन्दर अनुशासनहीनता के कारणों पर डॉ0 जसवन्तसिंह का क्या विचार है, हम अब इसकी चर्चा करेंगे।

निष्कर्ष- आज का विद्यार्थी विद्यालय वातावरण में अपने आपको सुरक्षित अनुभव करता है चूँकि अध्यापक का बालकों के प्रति व्यवहार स्नेह व सहानुभूतियुक्त नहीं है वरन् ईर्ष्या व बदले से परिपूर्ण है। अध्यापक जो चाहता है यदि छात्र व नहीं कर पाते तो परिणाम होता है उनके परीक्षाफल को बिगाड़ना। इस भय से भयभीत छात्र आक्रोश में संगठित हो जाते हैं व असामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं जो अनुशासनहीनता को जन्म देता है। बालक के अन्दर संवेगों को उचित रूप से विकास हो, इसकी जिम्मेदारी परिवार के सदस्यों एवं विद्यालय दोनों पर ही है परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि न तो परिवार और न ही विद्यालय बालक के संवेगों को उचित प्रशिक्षण देने में सहायक है। संवेगों का दोषपूर्ण विकास बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और जिसका परिणाम होता है छात्रों द्वारा किया गया अभद्र व्यवहार। परिवार के वातावरण में आज तनाव चरम सीमा पर विद्यमान है। यह तनाव माँ-बाप के सम्बन्धों को लेकर हो सकता है या फिर परिवार में विद्यमान आर्थिक परिस्थितियों के कारण अथवा बदलते हुए मूल्यों के कारण। तनाव किसी भी कारण से हो, इन तनावों का बालक के व्यक्तित्व के समायोजन पर बहुत ही खराब प्रभाव पड़ता है और उचित दिशा-निर्देशन के अभाव में बालक दिशाविहीन हो जाता है। आज के प्रशासन का सबसे बड़ा दोष है कि प्रशासन द्वारा बनाई गई नीतियों को बालक के ऊपर लादा जाता है और इसका परिणाम कई बार यह होता है कि बालक की इच्छाओं व अभिलाषाओं का दमन हो जाता है। बालक ऐसी परिस्थिति में कुछ कर नहीं पाता व उसकी हालत होती है ''खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे'' जैसे अर्थात् वह आक्रोश की अभिव्यक्ति अनुशासनहीनता के रूप में करता है। प्रभावहीन शिक्षण एवं विद्यालय में विद्यमान अस्वास्थ एवं शिथिल वातावरण अनुशासनहीनता का एक प्रबल कारण है। आज का अध्यापक कक्षा में पूर्ण तैयारी के साथ नहीं आता है। वह दलगत राजनीति में व्यस्त रहता है और परिणाम होता है छात्रों द्वारा उस अध्यापक का विद्रोह करने हेतु अनुचित मार्ग अपनाना। जो अध्यापक कक्षा में पढ़ाते भी हैं, वह अपने ज्ञान प्रदान करने के तरीके को

इतना नीरस रूप दे देते हैं कि छात्र कक्षा में ही ऊबने लगता है। बालक ऐसी परिस्थिति में अवांछनीय व्यवहार प्रदर्शित करने लगाता है।

13.7 विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता के कारण

विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता के कई कारण हो सकते हैं। ये कारण सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत और तकनीकी स्तर पर देखने को मिलते हैं। प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. पारिवारिक वातावरण –घर का असामंजस्यपूर्ण माहौल, माता-पिता के बीच झगड़े, बच्चों पर उचित नियंत्रण या मार्गदर्शन की कमी से बच्चे अनुशासनहीन बन जाते हैं।

2. सामाजिक परिवेश –समाज में व्याप्त असमानता, अपराध, भ्रष्टाचार और असंवेदनशीलता का प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है। वे समाज में देखे गए व्यवहार की नकल करने लगते हैं।

3. साथियों का दबाव (Peer Pressure) –बच्चों का मित्र समूह अक्सर उनके व्यवहार को प्रभावित करता है। अनुशासनहीन मित्रों की संगति में आकर बच्चा भी गलत आदतें सीख लेता है।

4. मीडिया और तकनीकी प्रभाव –इंटरनेट, टीवी, मोबाइल, वीडियो गेम और सोशल मीडिया पर हिंसक, अश्लील या अनुचित सामग्री तक आसानी से पहुंच बच्चों को अनुशासनहीन बना देती है।

5. अवकाश का दुरुपयोग –बच्चों के पास जब रचनात्मक कार्यों की कमी होती है, तो वे खाली समय में गलत गतिविधियों में शामिल हो जाते हैं।

6. आर्थिक असमानता और गरीबी –गरीब परिवारों के बच्चों में संसाधनों की कमी और अमीर बच्चों की भौतिकवादी प्रवृत्ति, दोनों ही अनुशासनहीनता को जन्म देते हैं।

7. व्यक्तिगत कारण –बच्चों का अधीर स्वभाव, भावनात्मक असंतुलन, आत्म-नियंत्रण की कमी और गलत आदतें (जैसे धूम्रपान, नशा आदि) भी अनुशासनहीनता का कारण बनते हैं।

8. नैतिक शिक्षा का अभाव –जब बच्चों को परिवार और समाज में नैतिक मूल्यों, संस्कारों और जीवन के उद्देश्य की शिक्षा नहीं मिलती, तो वे अनुशासनहीन हो जाते हैं।

विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता के निम्नलिखित कारण हो सकते है:-

1. परिवार का प्रभाव,
2. विद्यालय की भौतिक स्थिति,
3. विद्यालय में पर्याप्त साधनों का अभाव,
4. अध्यापकों की स्थिति,
5. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभाव,
6. नैतिक शिक्षा का अभाव
7. राजनैतिक प्रभाव
8. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली,
9. विद्यार्थी संघों की स्थापना,
10. विद्यालय में अध्यापकों के दोषपूर्ण सम्बन्ध।

परिवार की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति भी अनुशासनहीनता को जन्म देती है। यदि माता-पिता में सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं या उनका बच्चों के प्रति व्यवहार खराब है अथवा परिवार की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं है तो यह सब परिस्थितियाँ बालक को अनुशासनहीनता बना देती है। वह उग्र रूप धारण कर लेता है व नियमों का उल्लंघन करने में संतोष का अनुभव करता है। आज तो विद्यालय ज्ञान के विक्रय की दुकान बन गये हैं। इस कारण जो विद्यालय स्थापना का प्राचीन सम्बन्ध था, वह भी सम्बोध होता जा रहा है। पहले विद्यालय खुले वातावरण में स्थापित किये जाते थे जहाँ विद्यार्थी का मन आवश्यक बातों में न उलझे, पर आज विद्यालय शहर की घनी व गन्दी बस्तियों में जहाँ तरह-तरह की चीजे उपलब्ध रहती हैं जिसमें विद्यार्थी का मन विचलित हो सकता है। विद्यार्थी को यदि विद्यालय में उचित सुविधाएँ प्रदान नहीं की जायेंगी, यथा-पानी, शौचालय आदि तो भी छात्र अनुशासनहीनता हो सकता है। चौथा कारण है अध्यापकों की स्थिति। आज अध्यापकों की स्थिति में सुधार अवश्य आया है परन्तु अमीर वर्ग के लिए वह अभी भी ''बेचारा मास्टर'' ही है। उनकी दृष्टि में अध्यापक की वह इज्जत नहीं जो अन्य व्यवसाय वालों की है। अतः इस इज्जत को प्राप्त करने हेतु अध्यापक ट्यूशन करता है जिसका प्रभाव छात्र वर्ग पर नकारात्मक पड़ता है। छात्रों के मध्य अनुशासनहीनता को जन्म देने का पाँचवाँ कारण है विद्यालय के पाठ्यक्रम

सहगामी क्रियाओं का आयोजित न होना। यह क्रियाएँ दो दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं- एक तो यह बालक के संवेगों व मनोभावों को सन्तुष्ट करती हैं, दूसरे, बालक सैद्धान्तिक क्रियाओं से थोड़ी देर के लिए व्यवहारिक व मनोरंजन क्रियाओं में संलग्न होकर अपना समय व्यतीत करता है। आज अनुशासनहीनता छठवाँ प्रमुख कारण है बालक को नैतिक शिक्षा के ज्ञान से दूर रखना। बालक को प्रारम्भ से ही बात से अनभिज्ञ व्यवहार रखा जाता है कि उसके लिए उचित-अनुचित क्या और इसके अभाव में वह अवांछनीय व्यवहार का प्रदर्शन कर देता है। अनुशासनहीनता का सातवाँ और प्रमुख कारण है विद्यालय में राजनैतिक प्रभाव। आज का चाहे छात्र हो या अभिभावक या अध्यापक, सभी अपनी दलगत राजनीति को विद्यालय में प्रवेश देते हैं और इसका भयंकर परिणाम हमें अनुशासनहीनता के रूप में भुगतान पड़ता है। दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली भी अनुशासनहीनता को जन्म देती है। पूरे वर्ष छात्र पढ़ता नहीं है, उपद्रवों से संलग्न रहता है परन्तु अध्यापक उसको कुछ दण्ड नहीं दे सकते। वह जोर-जबरदस्ती नम्बर बढ़वा लेता है। छात्र संघ बनाना भी अनुशासनहीनता को जन्म देते हैं। जितने भी छात्र नेता हैं, वह उपद्रव करना व करवाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। इसमें दसवाँ और अन्तिम कारण है। विद्यालय में अध्यापकों के मध्य दोषपूर्ण सम्बन्ध होना। कभी-कभी अध्यापक आपसी दुश्मनी से ग्रसित होकर बदला लेना चाहते हैं व उसमें वह छात्रों की मदद लेते हैं। यह छात्र अध्यापकों का अपने ऊपर वरदहस्त देखते हैं व कोई भी गलत कार्य करने से डरते नहीं है।

13.8 विद्यालय व विद्यालय से बाहर अनुशासन की आवश्यकता व महत्व (Need and Importance of Discipline in and out of School)

विद्यालय तथा विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता की आवश्यकता के लिए यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुशासन (Discipline) जीवन और शिक्षा के लिए आवश्यक है, जबकि अनुशासनहीनता (Indiscipline) समाज और विद्यालय दोनों में अवांछनीय स्थिति है।

1. विद्यालय में अनुशासन की आवश्यकता व महत्व-

सकारात्मक शिक्षण वातावरण – अनुशासन से कक्षा का वातावरण शांतिपूर्ण और अध्ययन-अनुकूल बनता है।

चरित्र निर्माण – विद्यार्थियों में आज्ञाकारिता, समयपालन, सहयोग, सत्यनिष्ठा और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है।

सीखने की दक्षता – अनुशासित विद्यार्थी एकाग्रचित होकर पठन-पाठन में सफलता प्राप्त करते हैं।

समान अवसर – अनुशासन से सभी बच्चों को समान रूप से सीखने और आगे बढ़ने का अवसर मिलता है।

व्यक्तित्व विकास – अनुशासन विद्यार्थियों के आत्मनियंत्रण, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक व्यवहार को मजबूत करता है।

2. विद्यालय से बाहर (परिवार व समाज में) अनुशासन की आवश्यकता व महत्व

सामाजिक जीवन में संतुलन – अनुशासन से व्यक्ति कानून, नियम और सामाजिक मूल्यों का पालन करता है।

नैतिक व सांस्कृतिक विकास – परिवार व समाज में अनुशासन व्यक्ति को नैतिक, जिम्मेदार और संवेदनशील नागरिक बनाता है।

रोज़गार व कार्यक्षेत्र में सफलता – समय पर काम करना, नियमों का पालन करना और सहयोग की भावना कार्यक्षेत्र में सफलता लाती है।

राष्ट्र निर्माण में योगदान – अनुशासित नागरिक समाज में शांति, भाईचारा और प्रगति को बढ़ावा देते हैं।

स्वनियंत्रण और आत्मविकास – अनुशासन व्यक्ति को अनुचित प्रलोभनों से बचाता है और आत्मसंयम सिखाता है।

निष्कर्ष- विद्यालय और विद्यालय से बाहर अनुशासन का महत्व अत्यधिक है। यह केवल नियमों का पालन करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व निर्माण, सामाजिक जीवन, शिक्षा और राष्ट्र के विकास का आधार है। बिना अनुशासन के जीवन में अव्यवस्था, असफलता और सामाजिक असंतुलन उत्पन्न हो सकता है। विद्यालय के अन्दर छात्रों व अध्यापकों में आपसी सहयोग, सम्मान व त्याग की भावना का होना अति आवश्यक है। यदि सम्मान की भावना में गिरावट आती है तो वहाँ पर अनुशासन की भावना समाप्त हो जाती है। जिसका परिणाम कक्षा से पलापन या कक्षा में देर से आना, आध्यापक के पढ़ाते समय आपस में बात करना, गृह कार्य या कार्य न करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कहना न मानना, धोखा देना, ध्यान न देना, अनुउत्तरदायित्व की भावना से कार्य करना, अध्यापका का अपमान करना, उन्हें अपशब्द कहना, दीवारों पर गन्दी बातें लिखना आदि। बातें विद्यालय के अन्दर अनुशासनहीनता के कारण है विद्यालय से बाहर हड़ताल करना, घिराव करना, काम बन्द करना, आक्रमण करना या लड़ाई-झगड़ा करना, तोड़-फोड़ या आगजनी की घटनाएं आदि अनुशासनहीनता कहलाती है। आज आवश्यकता है ऐसी शिक्षा की जो छात्रों का सही मार्ग की ओर अग्रसर कर सके। क्योंकि यदि अनुशासन नहीं रहेगा

तो समाज में अव्यवस्था का वातावरण पैदा हो जायेगा। अतः इसके महत्व को समझकर इस पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है अन्यथा समाज अव्यवस्था के गम में चला जायगा।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए।

प्रश्न 1 प्रारम्भिक स्तर पर बालक के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव अद्यापक का पड़ता है। सत्य/ असत्य

प्रश्न 2 यदि अध्यापक अनुशासनपूर्ण है व उसमें नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता है तो इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि उसका अनुकरण करने वाले छात्र .... होगा।

प्रश्न 3 दिन-प्रतिदिन हम मूल्यविहीन होते जा रहे हैं व जिसका परिणाम है हमारा नैतिक व .... पतन।

प्रश्न 4 अनुशासित नागरिक समाज में शांति, भाईचारा और प्रगति को बढ़ावा देते हैं। सत्य/ असत्य

प्रश्न 5 विद्यालय में अनुशासनहीनता (Indiscipline) एक गंभीर समस्या है। सत्य/ असत्य

13.9 सारांश (Summary)

विद्यालय शिक्षा का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करना है। इस विकास में अनुशासन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। अनुशासन मुख्यतः दो रूपों में देखा जाता है—आन्तरिक अनुशासन और बाह्य अनुशासन।

आन्तरिक अनुशासन वह स्थिति है जब छात्र अपने विचारों, भावनाओं और व्यवहार पर आत्मनियंत्रण रखते हैं। यह आत्मसंयम, जिम्मेदारी, आत्मनिर्देशन और नैतिक मूल्यों पर आधारित होता है। इसके माध्यम से विद्यार्थी स्वप्रेरणा से नियमों का पालन करते हैं और जीवन में आत्मनिर्भरता, चरित्र-निर्माण तथा आत्मविश्वास का विकास करते हैं।

बाह्य अनुशासन बाहरी नियमों, आदेशों और दंड-पुरस्कार की व्यवस्था पर आधारित होता है। विद्यालय में शिक्षक, प्रधानाचार्य तथा प्रशासनिक ढाँचा विद्यार्थियों को अनुशासित करने के लिए नियम बनाता है। यह विद्यार्थियों को सामाजिक जीवन के नियम, सहयोग, आज्ञापालन और सामूहिक उत्तरदायित्व का अनुभव कराता है।

दोनों प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता इस कारण है कि बाह्य अनुशासन विद्यार्थियों को व्यवहारिक सीमाओं से परिचित कराता है और आन्तरिक अनुशासन उन्हें आत्मचेतना व आत्मसंयम से सज्जित करता है। इनका संयुक्त महत्व यह है कि विद्यार्थी केवल नियमों का पालन करने वाले ही नहीं, बल्कि अपने जीवन में स्वेच्छा से अनुशासन अपनाने वाले जिम्मेदार नागरिक भी बन सकें।

विद्यालय में छात्र अपने को असुरक्षित महसूस करता है चूँकि अध्यापक बालकों के प्रति व्यवहार स्नेह व सहानुभवियुक्त नही है। अध्यापक जो चाहता है यदि छात्र व नही कर पाते तो परिश्रम छात्र को अनेक स्तर पर भुगतना पड़ता है। यदि ये छात्र में विद्रोह की भावना झलकने लगती है और वह विद्यालय व विद्यालय के बाहर अनुशासन को तोड़ने लगता है। परिवार भी इस अनुशासन के लिए जिम्मेदार है क्योकि जहाँ पर पारिवारिक वातावरण सौहादपूर्ण नहीं होता है। वह बालक अनुशासित नहीं होता है। उसे परिवार का सहयोग प्यार, दुलार नहीं मिला होता है। जिसके कारण वा विद्रोही बन जाता हे। अतः शिक्षा के माध्यम से बालक ने अनुशासन की भावना कुट-कुट कर भरनी चाहिए तभी वह समाज में अनुशासित जीवन व्यतीत करेगा।

निष्कर्षतः, विद्यालय में आन्तरिक और बाह्य अनुशासन शिक्षा की गुणवत्ता, विद्यार्थियों के नैतिक विकास और समाजोपयोगी जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए अनिवार्य है।

13.10 शब्दावली (Glossary)

आन्तरिक (Internal) अनुशासन - विद्यालय में आन्तरिक (Internal) अनुशासन का अर्थ है – वह आत्मनियंत्रण और आत्मअनुशासन जो छात्र-छात्राएँ स्वयं अपने व्यवहार, विचार, कार्यों और गतिविधियों में स्वेच्छा से अपनाते हैं। इसे बाहरी दबाव, भय या दण्ड से नहीं बल्कि आत्मप्रेरणा, आत्मसंयम और नैतिक मूल्यों की समझ से विकसित किया जाता है।

बाह्य अनुशासन- विद्यालय में बाह्य अनुशासन का तात्पर्य उन नियमों, निर्देशों और नियंत्रणों से है, जिन्हें विद्यालय प्रशासन, शिक्षक अथवा अन्य शैक्षिक प्राधिकरण द्वारा विद्यार्थियों पर लागू किया जाता है। यह अनुशासन छात्रों को बाहरी दबाव या नियंत्रण के माध्यम से विद्यालय की व्यवस्था, समय-सारणी, नियमों और अनुशासनात्मक

प्रावधानों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है। इसमें विद्यार्थियों की स्वतंत्र इच्छा से अधिक संस्थागत नियमों का पालन प्रमुख होता है।

सकारात्मक शिक्षण वातावरण – अनुशासन से कक्षा का वातावरण शांतिपूर्ण और अध्ययन-अनुकूल बनता है।

चरित्र निर्माण – विद्यार्थियों में आज्ञाकारिता, समयपालन, सहयोग, सत्यनिष्ठा और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है।

सीखने की दक्षता – अनुशासित विद्यार्थी एकाग्रचित होकर पठन-पाठन में सफलता प्राप्त करते हैं।

समान अवसर – अनुशासन से सभी बच्चों को समान रूप से सीखने और आगे बढ़ने का अवसर मिलता है।

व्यक्तित्व विकास – अनुशासन विद्यार्थियों के आत्मनियंत्रण, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक व्यवहार को मजबूत करता है।

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practices Question)

उत्तर 1 सत्य

उत्तर 2 यदि अध्यापक अनुशासनपूर्ण है व उसमें नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता है तो इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि उसका अनुकरण करने वाले छात्र अनुशासनहीन होगा।

उत्तर 3 दिन-प्रतिदिन हम मूल्यविहीन होते जा रहे हैं व जिसका परिणाम है हमारा नैतिक व चारित्रिक पतन।

उत्तर 4 सत्य

उत्तर 5 सत्य

13.12 संदर्भ पुस्तकें (Reference Book)

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

7. महावीर विश्वविधालय कोटा " पाठ्यक्रम विकास" ।

13.13 सहायक/उपयोगी पुस्तकें (Useful Books)

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेंरठ।

4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

13.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. विद्यालय के बाहर अनुशासनहीनता के कारणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. अनुशासनहीनता के प्रमुख कारणों की व्याख्या कीजिएं
4. अनुशासन को बनाये रखने के लिए विद्यालय में क्या-क्या प्रयास किये जाने चाहिए ?
5. आन्तरिक अनुशासन का वर्णन कीजिए।

6. नैतिक व सांस्कृतिक विकास में अनुशासन की भूमिका का वर्णन कीजिए।